द्वारावति

(उपन्यास)

व्रजेश दवे

उस प्रत्येक क्षण को

जिस क्षण
कृष्ण के अधरों पर
भुवन मोहिनी स्मित होता है ।

'इस प्रसंग के साक्षी बनने इतने सारे पत्रकार भी आए हैं। वह बड़े बड़े लेख लिखेंगे। कुछ दीवस तक इनकी चर्चा होती रहेगी। पश्चात उसके सब कुछ भुला दिया जाएगा। कोई ज्ञान की बात नहीं करेगा। देस के इन महान ग्रन्थों पर कोई नहीं लिखेगा, कोई नहीं बोलेगा। संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार पर कोई निर्णयात्मक कार्य नहीं होगा। यह सारा श्रम-परिश्रम व्यर्थ है। इस उपक्रम से किसी का लाभ नहीं होगा। ना देस का, ना ग्रन्थों का, ना गुरुकुल का, ना ज्ञान का, ना संस्कृत भाषा का, ना किसी छात्र का तथा ना ही किसी आचार्य का। व्यर्थ है, सब कुछ व्यर्थ है।' केशव मन ही मन बोलता रहा।

#*#*#*#

"जिसका जन्म समुद्र के तट पर हुआ हो, जिसका बालपन इसी तट पर बिता हो, जिसका तारुण्य समुद्र की तरंगों के साथ व्यतीत हो रहा हो, जिसके यौवन की प्रतीक्षा स्वयं यह सागर कर रहा हो, उसे समुद्र की बेटी ही कहना उचित होगा ना?"

- इस उपन्यास से।
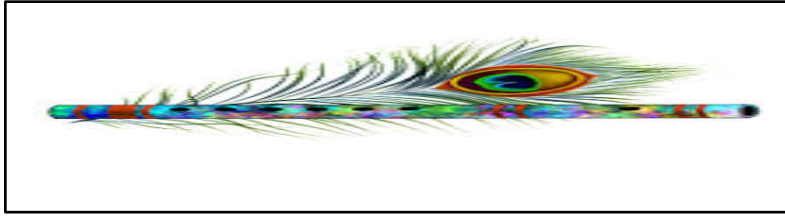
1

उस क्षण जो उद्विग्न मन से भरे थे उस में एक था अरबी समुद्र, दूसरा था पिछली रात्रि का चन्द्र और तीसरा था एक युवक। समुद्र इतना अशांत था कि वह अपने अस्तित्व को समाप्त कर देना चाहता हो ऐसे तट की तरफ भाग रहा था। वह चाहता था कि वह रिक्त हो जाय। अपने भीतर का सारा खारापन नष्ट कर दें। अत: समुद्र की तरंगें अविरत रूप से तट पर आती रहती थी। कुछ तरंगें तट को छूकर लौट जाती थी, कुछ तरंगें वहीं स्वयं को समर्पित कर देती थी। समुद्र अशांत था किन्तु उसकी ध्वनि से वह लयबध्ध मधुर संगीत उत्पन्न कर रहा था।

पिछली रात्रि का चंद्रमा ! अपने भीतर कुछ लेकर चल रहा था। वह उतावला था, बावरा था। उसे शीघ्रता थी अस्त हो जाने

की, गगन को त्यागने की। जाने उनके मन में क्या था?
चन्द्र के मन को छोड़ो, मनुष्य स्वयं अपने मन को भी नहीं जान सका। अपने मन में कोई पीड़ा, कोई जिज्ञासा, कोई उत्कंठा लिए एक युवक अरबी समुद्र के सम्मुख बैठा था। उसे ज्ञात नहीं था कि वह यहाँ तक जिस कारण से आ चुका था उस कारण का कोई अर्थ भी था अथवा नहीं।
श्वेत चाँदनी में समुद्र की तरंगे अधिक श्वेत लग रही थी। जैसे वह पानी चन्द्र के लिए कोई दर्पण हो और उस में चन्द्र अपना प्रतिबिंब देख रहा हो।
उस युवक उन तरंगों को देख तो रहा था किन्तु उनका अनुभव नहीं कर रहा था। उसका मन किसी अन्य बात पर स्थिर हो गया था। वह एक लंबे समय से वहीं बैठा था। बस बैठा ही था। ना सोया था ना चला था एवं ना ही कुछ खाया-पिया था। शरीर की भूख-प्यास से अब वह विचलित नहीं होता था। वह कुछ प्रश्नों से विचलित था। इन्हीं प्रश्नों ने उसे कृष्ण की नगरी द्वारिका के समुद्र तट पर पहुंचा दिया था।
वह विचार यात्रा करता रहा, समय व्यतीत होता रहा।
प्रभात का प्रथम प्रहर प्रारम्भ हो गया। ज्ञानी जिसे ब्राह्म मुहूर्त कहते है, समय की वह वेला आ गई। अविरत रूप से एक ही ताल में संगीत सुना रहे समुद्र की तरंगों ने सुर बदला। सहसा समुद्र की ध्वनि थोड़ी सी कर्कश हो गई। उस युवक की तंद्रा टूटी। विचार यात्रा अटक गई। पानी के भीतर कुछ भिन्न सी ध्वनि उठी। उसने उस दिशा में द्रष्टि की।
पानी के भीतर कोई आकृति दिखाई दी। वह स्पष्ट रूप से उसे देख नहीं पा रहा था। वह आकृति धीरे धीरे समुद्र के भीतर गहराई तक जाने लगी।
‘इस समय कौन हो सकता है इस समुद्र में? क्या कोई मछुआरा होगा?’
‘कोई जलचर प्राणी भी तो हो सकता है।’
‘हो सकता है।’
उसने उस आकृति को वहीं छोड़ दिया। वह पुन: अपने विचार में मग्न होने का प्रयास करने लगा। किन्तु वह आकृति ने उसका ध्यान पुन: भंग कर दिया। वह उस आकृति को ही देखने लगा।
अर्ध खिली श्वेत चाँदनी में उसे उस आकृति ने आकृष्ट किया। वह उठा, समुद्र की तरफ जाने लगा। उसके तथा समुद्र के बीच का अंतर घटने लगा। वह समुद्र के अत्यंत समीप आ गया। उसे लगा कि अब वह उस आकृति को स्पष्ट रूप से देख सकेगा।
वह देखने लगा। किन्तु आकृति समुद्र में अधिक भीतर चली गई। युवक ने समुद्र के भीतर प्रवेश कर लिया। वह आकृति की तरफ बढ़ने लगा। जैसे वह आकृति कोई चुंबक हो और वह उसे अपनी तरफ खींच रही हो, युवक चला जा रहा था।
कुछ अंतर पर आकृति स्थिर हो गई। युवक भी रुक गया। वह उस आकृति की क्रिया की प्रतीक्षा करने लगा।
आकृति पानी के भीतर चली गई, कुछ पल के पश्चात पुन: बाहर आ गई। उसने ऐसा अनेकों बार किया। युवक उसे देखता रहा। आकृति ने अपने ऊपर ढंके काले आवरण को हटाया। उसे देखकर युवक अचंभित हो गया।
वह किसी मनुष्य की आकृति थी। उस काले आवरण के पीछे एक युवती थी जो अब धुंधली सी दिख रही थी।
‘इस समुद्र के भीतर इस समय एक युवती स्नान कर रही है ! यह तो आश्चर्य की बात है। क्या वह कोई तैराक होगी जो तैरने का अभ्यास करने के लिए आई होगी?’
‘किन्तु तैराक तो दिवस के प्रकाश में अभ्यास करते हैं। अभी तो ब्राह्म मुहूर्त ही है। यह युवती का इस समय समुद्र में होना कोई रहस्य से भरा हो सकता है।’
‘हो सकता है। यह कोई गुप्तचर भी तो हो सकती है। देश की समुद्र सीमा यहाँ से कुछ अंतर पर सम्पन्न हो जाती है। उस पार पाकिस्तान है।’
‘तो क्या यह युवती शत्रु देश की गुप्तचर है? यदि ऐसा है तो मुझे उस पर ध्यान रखना होगा, सतर्क रहना होगा।’
वह उस युवती पर ध्यान केन्द्रित करने लगा। युवती ने उस काले आवरण को अपने कटी प्रदेश पर कस कर बांध लिया। ऊपर का भाग अर्ध खुल्ला था। नीचे का भाग पानी के भीतर था।
उसने अनेक बार पानी में डुबकी लगाई। स्थिर हो गई, कुछ क्षण के लिए। केश को झटका, कंधे के पीछे रख दिया। पूर्वा दिशा की तरफ मुड़ी, थोड़ी झुकी, हथेलियों में पानी भरा और अंजलि भरा पानी समुद्र कों समर्पित कर दिया। उसने पुन: हथेली में पानी भरा, पुन: समर्पित कर दिया। उस प्रक्रिया में वह कुछ बोल भी रही थी। किन्तु समुद्र की ध्वनि में युवक को कुछ भी स्पष्ट सुनाई नहीं दे रहा था। वह बस उसे देखता रहा।
‘लगता है यह युवती सूर्य को अर्घ्य दे रही है।’
‘किन्तु सूर्य तो अभी उदय ही नहीं हुआ है।’
‘उत्सव, साधू-संत ब्राहम मुहूर्त में जाग जाते हैं। स्नानादिक कर्म सम्पन्न कर लेते हैं और जप, तप, ध्यान, योग में मग्न हो

जाते हैं।'
'यह उत्सव कौन है? कहाँ है?'
'तुम ही तो हो उत्सव। क्या तुम स्वयं को भी भूल गए?'
अपने ही भीतर से अपने ही नाम को सुनकर उत्सव चौंक गया। हाँ, उस युवक का नाम उत्सव है।
'उस बात को यही छोड़ दो। हम ऋषि मुनियों तथा साधू संतों की बात कर रहे थे।'
'वह प्रभात के इसी प्रहार में स्नान करते हैं।'
'हाँ सुना भी है और देखा भी है। किन्तु, यह युवती है। कोई साधू संत नहीं। दूसरा, यह कोई पवित्र नदी नहीं है, खारा समुद्र है।'
'तुम्हारे यह प्रश्न भी उचित है। उनके भी उत्तर मिलेंगे। बस, उचित समय की प्रतीक्षा करो।'
उत्सव की परछाई समुद्र के भीतर कहीं विलीन हो गई। कुछ अंतर पर वह युवती थी। उत्सव उसे देखने लगा।
उसने केश बांध लिए, कटी पर बंधा काला कपड़ा खोल दिया, तन पर ओढ़ लिया और किनारे की तरफ चलने लगी।
उत्सव स्थिर सा खड़ा रहा, उसे जाते हुए देखता रहा। उसका पूरा तन उस आवरण से ढंका था। एक काली आकृति समुद्र को छोड़ कर रेत पर चलने लगी।
'मुझे इस के पीछे जाना चाहिए। इस युवती के रहस्य को अनावृत करना चाहिए।'
'रुक जाओ उत्सव। स्त्रियाँ मनुष्य को भटका देती है। क्या तुम अपने उद्देश्य से भटकना चाहते हो? इतनी कठोर तपस्या और धैर्य को किसी एक अज्ञात स्त्री के कारण नष्ट कर देना चाहते हो? यदि तुम ऐसा करना चाहते हो तो मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा। जाओ, उस युवती का पीछा करो।'
"नहीं....... नहीं....."
उत्सव पूरी शक्ति से चीखा। उस की चीख समुद्र की ध्वनि से अधिक तीव्र थी। वह उस वातावरण में व्याप्त हो गई। उस युवती ने भी उस ध्वनि को सुना। वह क्षण भर पीछे मुड़ी, पुन: चलने लगी। उस ध्वनि से वह अल्प मात्रा में भी विचलित नहीं हुई। अपनी सहज गति से वह चलने लगी।
उत्सव उसे देखता रहा। वह किसी भवन की तरफ गति कर रही थी जो दूर था।
'क्या वह उस भवन के भीतर जाएगी?'
'जाने दो।'
उत्सव ने स्वयं को संभाला। समुद्र से बाहर आ गया। किनारे पर बैठ गया।

2

समुद्र की शीतल वायु ने थके यात्रिक को गहन निंद्रा में डाल दिया, उत्सव सो गया। समय की कुछ ही तरंगे बही होगी तब दूर किसी मन्दिर से घन्टनाद हुआ। उत्सव उस नाद से जाग गया। सूरज अभी भी निकला नहीं था। अन्धकार अपने अस्तित्व के अन्त को देख रहा था किन्तु विवश था। प्रकाश के हाथों उसे परास्त होना था।
घन्टनाद पुन: सुनाई दिया। धुंधले से प्रकाश मे उत्सव ने दूर समुद्र के भीतर किसी मन्दिर की आकृति का अनुभव किया।
'मुझे किसी मन्दिर में नहीं जाना है। मुझे इन मंदिरों से अत्यंत दूर रहना होगा।'
वह मन्दिर से दूर जाते समुद्रमार्ग पर दक्षिण दिशा में चलने लगा।
घंटनाद कुछ समय तक चलता रहा। उत्सव भी चलता रहा। अब मंदिर पीछे छूटने लगा। घंटनाद बंध हो गया। पुन: समुद्र की ध्वनि अपना संगीत सुनाने लगी। उत्सव को यह ध्वनि कर्णप्रिय लगी। वह चलता रहा, संगीत सुनता रहा।
कुछ अन्य ध्वनि भी उत्सव के कानों पर पड़ने लगे। उसने प्रथम तो ध्यान ही नहीं दिया उन ध्वनि पर, वह तो बस समुद्र की मधुर ध्वनि को सुनता रहा। किन्तु धीरे धीरे वह अन्य ध्वनि की तीव्रता बढ़ने लगी। वह ध्वनि पर उत्सव को ध्यान देना पड़ा। उसने उन पर कान लगाये।
ध्वनि स्पष्ट होती गई।
ओहम सूर्याय नाम:,
ओहम मित्राय नम:
ओहम वरुणाय नम:
ओहम भार्गवाय नम: ...

समूह गान में यह स्वर उत्सव का ध्यान आकृष्ट कर रहे थे।
'यह तो मंत्रोच्चार हो रहा है। अनेक ध्वनि एक साथ आ रहे हैं अर्थात अवश्य ही कोई बड़ी पुजा अर्चना हो रही होगी। मुझे उस पुजा में सम्मिलित होना चाहिए।'
'नहीं, उत्सव। तुम मंदिरों तथा पुजाओं में तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर खोज चुके। कुछ भी तो हाथ नहीं लगा अब तक।'
'किन्तु....।'
'यदि तुम पुन: भटकना चाहो तो तुम्हारी इच्छा। किन्तु मुझे तुम्हारे इस भटकने में कोई रुचि नहीं है। तुम जाओ वहाँ। मैं तो चला...।'
उत्सव की परछाई चली गई। विवश होकर उत्सव भी समुद्र किनारे चलता रहा।
उसका मन अशांत था। चरण भी अशांत थे। वह समुद्र के किनारे पर चल रहा था। उसका मन भी चल रहा था। वह कुछ खोज रहा था। किसी बात पर वह व्याकुल था, व्यग्र था, चिंतित था, विचलित था।
वह चलता रहा। चलता ही गया। समय के एक बिन्दु पर वह अटका। किनारे से दूर जाकर वह बैठ गया। वह थक गया था, वह तृषातुर था। वह भूखा था। उसके शरीर को तृषा थी, भूख थी तो मन भी तृषा से पीड़ित था।
समुद्र की तरंगों की भांति उस के मन के भीतर उठ रही तरंगें भी शांत होने का नाम नहीं ले रही थी। समुद्र की तरंगें तो सुमधुर ध्वनि सुना रही थी किन्तु उत्सव के मन में उठ रही ध्वनि कर्कश थी। वह उसे शांत करने का पूरा प्रयास कर रहा था किन्तु वह भी समुद्र की तरंगों की भांति निश्चय कर चुकी थी की वह अविरत चलती रहेगी।
वह समुद्र को अनिमेष द्रष्टि से देख रहा था। देखते देखते वह थक गया। उसने समुद्र से द्रष्टि हटा ली। वह तट पर देखने लगा।
तट पर का द्रश्य भिन्न था। थोड़े ही अंतर पर कुछ कच्चे मकान थे। अनेक वस्तुएं मकान के आसपास बिखरी हुई पड़ी थी। समुद्र पवन उन वस्तुओं को अपने साथ उड़ा ले जाने का प्रयास कर रही थी। कुछ तो उड भी जाती थी। तट के समीप दो खंभों पर बंधी दोर थी। उस पर कुछ टंगा हुआ था, जैसे कुछ सुख रहा हो।
'यह तो किसी मछुआरों का नगर सा लग रहा है। यहाँ तो मानव वस्ती हो सकती है।'
'किन्तु कहीं कोई हलन चलन सा नहीं दिख रहा। सब कुछ पूर्णत: स्थिर सा दिख रहा है। कहीं यह नगर उजड़ तो नहीं गया?'
'भरे से नगर भी वीरान हो जाते हैं।'
'द्वारिका भी ऐसे ही नष्ट हो चुकी है, एक बार नहीं अनेकों बार। किन्तु पुन: बसी भी है। कोई तो बात है इस नगरी में। बार

बार नष्ट होती रही, बार बार बसती रही है।'
'ऐसी इस धरती को मेरा वंदन।'
उत्सव को अपने ही शब्दों से कुछ सांत्वना मिली। मन के अवसाद को उसने दूर करने का प्रयास किया। मन कुछ शांत भी हुआ। उसे यह शांति मनभावन लगी। एक लंबे अंतराल के पश्चात ऐसी शांति का अनुभव किया था उत्सव ने।
वह शांत बैठा रहा, समय की तरंगों को बहने दिया। प्रसन्न चित्त से वह समुद्र की तरंगों को देखता रहा। किन्तु यह प्रसन्नता अधिक समय तक नहीं टिकी। मन पुन: अनेक प्रश्नों से भर गया। वह पुन: व्यग्र हो गया।
वह खड़ा हुआ और कहीं जाने के लिए चलने ही वाला था कि उसके सामने एक व्यक्ति आ खड़ा हुआ।
'कौन है यह? प्रथम द्रष्टि से तो यह कोई साधू-संत लग रहा है।'
उसने उसे अनदेखा कर दिया। वह चलने लगा।
"वत्स, क्षण भर रूक जाओ।" उस संत ने कहा।
उसके शब्दों में इतना माधुर्य था कि उत्सव उसे टाल नहीं सका। वह रुक गया। उसकी मुख प्रतिभा को देखता रहा। कोई आभा उस मुख पर चमक रही थी।
"आप कौन हो, बाबा?" उत्सव ने अनायास ही दो हाथ जोड़ दिये।
"तुम्हारा कल्याण हो, उत्सव।" बाबा ने कहा।
अपना नाम सुनकर उत्सव चौंक गया।
'इसे मेरा नाम कैसे ज्ञात हुआ? मेरे इस नाम को तो मैं भी भूल चुका हूँ। मैंने किसी को बताया तक नहीं। तो इसे कैसे ...?'
"वत्स, तुम्हारे नाम के उपरांत तुम्हारे विषय में मुझे सब कुछ ज्ञात है।"
"वह कैसे? यह तो .... ।"
"इन सभी प्रश्नों के उत्तर से अधिक महत्वपूर्ण तुम्हारे प्रश्नों का समाधान है। तुम्हें उन पर ध्यान देना होगा।"

"किन्तु ..।"

"इसमें इतना विचलित होने वाली कोई बात नहीं है।" बाबा ने कहा।

"किन्तु बाबा.....।"
"वत्स तुम छोटी छोटी बातों पर विचलित हो जाते हो। यदि तुम्हें अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है तो धैर्य रखना होगा। विचलित होने से तो वह आज तक तुम्हारे हाथ नहीं आया।"
"तो आप जानते हो मेरे लक्ष्य के विषय में?"
"मुझे सब कुछ ज्ञात है, वत्स। तुम यहाँ किस प्रयोजन से आए हो? तुम्हारा लक्ष्य क्या है? तुम्हारे भीतर क्या प्रश्न चल रहे हैं? उन प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए तुम कहाँ कहाँ भटके हो। अभी तक तुम्हें कोई समाधान नहीं मिला है। इन सभी बातों का मुझे ज्ञान है।"
"यदि आप सब कुछ जानते ही हो तो आपको यह भी ज्ञात ही होगा कि मेरे प्रश्नों के उत्तर कहाँ मिलेंगे, कब मिलेंगे? मीलेंगे भी अथवा नहीं? क्या मेरा यहाँ आना सार्थक होगा? अथवा मैं पुन: भटक जाऊंगा?"
"वत्स,शांत हो जाओ। तुम जिसे खोज रहे हो वह भी तो तुम्हें खोज रहा है। अब तुम्हारे मिलन का समय आ गया है। तुम अपने लक्ष्य के अत्यंत समीप हो।"
"तो बताओ मुझे कि मुझे अब क्या करना होगा? मेरा मार्गदर्शन करो।"
"तेरी नियति का उदेश्य भी यही है कि मैं तुम्हें उस मार्ग को दिखाऊँ।"
"ऐसा नहीं हो सकता कि आप ही मेरी जिज्ञासा शांत कर दें, मेरे भीतर के सभी प्रश्नों के उत्तर देकर मुझे ज्ञान प्रदान करें।"
"ऐसा नहीं हो सकता, वत्स।"
"क्यूँ प्रभु?"
"दो बातें हैं – एक तो अभी भी उस कर्मफल के पकने का समय थोड़ा दूर है। अभी भी तुम्हें समय के कुछ प्रवाहों को व्यतीत हो जाने देना है। तब तक प्रतीक्षा करनी है।"
"और दूसरा?"
"तुम जिस ज्ञान के मार्ग पर चलना चाहते हो उस मार्ग पर तुम्हें स्वयं ही चलना होगा। मैं तुम्हारा मार्गदर्शन कर सकता हूँ, तुम्हारे लिए चल नहीं सकता।"
"किन्तु, बाबा। अभी तक मैं जितना चल चुका हूँ क्या वह पर्याप्त नहीं? क्या मेरा वह चलना निरर्थक है?"

“नहीं वत्स। कोई भी कर्म निरर्थक नहीं होता। ऐसे सभी कर्म मनुष्य को लक्ष्य के समीप ले जाते हैं। यदि ऐसे कर्म नहीं किए जाएँगे तो लक्ष्य की तरफ जाते मार्ग तक तथा लक्ष्य तक कैसे जा पाएंगे।”
“प्रभु, मैं अनेक संतों से मिला हूँ, अनेक बातें सुनी है, जानी है।”
“वही तो गति दे रहें हैं तुम्हें तुम्हारे लक्ष्य के प्रति ।”
“किन्तु आपसे मिलकर मुझे जो शांति का अनुभव हो रहा है वह विश्वास दिलाता है कि ...।”
उत्सव क्षणभर के लिए रुका। उस बाबा के मुख पर उभरे भावों को देखने लगा। वहाँ अतल समुद्र की गहन शांति थी, प्रसन्नता थी, एक आभा थी।
‘यह सत्पुरुष पर मुझे श्रद्धधा जन्मी है। मुझे इससे मार्ग पूछ लेना होगा।’
“आप कोई गहन विचार में खोये लगते हो। मैं कुछ क्षण के लिए आप के विचारों में विघ्न न आए इस हेतु मौन हो जाता हूँ।”
“नहीं, तुम कहो जो कह रहे थे।”
“तो क्या मैं जो चाहता हु वह मुझे मिलेगा?”
“अवश्य मिलेगा। यहीं मिलेगा। इसी द्वारिका नागरी में।”
“कौन देगा उत्तर? कहाँ मिलेगा वह मुझे?”
“शांत हो जाओ वत्स। तुम आज ही तो आए हो इस नगर में। कुछ धैर्य रखो।”
“किन्तु मैं वर्षों से भटक रहा हूँ। पूरे भारत वर्ष में सबसे मिल चुका हूँ किन्तु ...।”
“यह द्वारिका है। यहाँ सब कुछ संभव है।”
“मैं उस मार्ग पर चलने के लिए उत्सुक हूँ जिस पर मुझे चलना है।”
“तो सुनो। प्रात: काल तुम समुद्र के जिस तट पर बैठे थे उस तट पर लौटना होगा। वहाँ पंडित गुल है। उसे मिलो।”
“जैसी आज्ञा, प्रभु।”
उत्सव ने दो हाथ जोड़े, आँखें बांध कर ली तथा शीश झुकाकर वंदन किया। संत का अभिवादन किया। शीश उठाया, आँखें खोली। उत्सव अचंभित रह गया। सामने कोई नहीं था।
‘अभी तो यहीं थे, कहाँ चले गए?’
उसने समुद्र तट पर द्रष्टि दौड़ाई। सभी दिशा में खोजा किन्तु कहीं कोई नहीं था।
“वत्स, मुझे ढूंढो नहीं। जब भी तुम विचलित हो जाओ, व्याकुल हो जाओ तब तुम इसी तट पर आ जाना। मैं तुम्हें मिलने आ जाऊंगा। अभी तो तुम अपने मार्ग पर चलने लगो। कोई तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।”
उत्सव के कानों में वही मधुर स्वर गुंजा। उसने चारों दिशाओं में देखा। वह कोई नहीं था। उसने सभी दिशाओं में प्रणाम किया और चल पड़ा उस तट के प्रति।
उत्सव के चरणों में उत्साह था जो उसे गति दे रहा था। मुख पर प्रसन्नता थी। मन में विश्वास, श्रद्धा तथा शांति थी।

3

“7 सितंबर 1965 की रात्री। द्वारिका के मंदिर को देख रहे हो? वहाँ दूर जो मंदिर दिख रहा है वही।” भीड़ के भीतर से यह ध्वनि आ रही थी। उत्सव ने उसे सुना। वह उस भीड़ की चेष्टा को देखने लगा, उस ध्वनि को सुनने लगा। भीड़ के बिखर जाने की प्रतीक्षा करने लगा। भीड़ ने उस मंदिर की तरफ देखा। वह ध्वनि आगे कह रही थी -
“हाँ, उसी मंदिर पर पाकिस्तान की सेना ने अविरत गोलाबारी की थी उस रात्री को। उसका आक्रमण अत्यंत भारी था। क्षण प्रतिक्षण गोलाबारी हो रही थी। उसका लक्ष्य था मंदिर को पूर्ण रूप से नष्ट करने का। द्वारिका नगरी जो अनेकों बार नष्ट हो चुकी है उसे पुन: एक बार नष्ट कर देने का।”
“तो क्या वह ऐसा कर सके?” भीड़ में से किसी ने पूछा।
“नहीं वह ऐसा करने में विफल रहे।”
“द्वारिका की नियति तो नष्ट होने की ही रही है। तो वह बच कैसे गई?” किसी जिज्ञासु ने प्रश्न किया।
“सीधी सी बात है। जब जब द्वारिका नगरी नष्ट हुई है तब तब उसे समुद्र ने ही नष्ट किया है। किसी मानवीय शक्ति उसे

कभी नष्ट नहीं कर सकी। पाकिस्तान तथा उसकी सेना भी तो मानवीय ही है। उस में इतनी क्षमता कहाँ? जब जब समुद्र ने इसे नष्ट किया है तब तब स्वयं कृष्ण ने ही इसकी योजना बनाई है। कृष्ण की योजना से परे द्वारिका नगरी को कोई नष्ट नहीं कर सकता।"
"तो उस रात क्या हुआ?"
"मंदिर को लक्ष्य बना कर फेंके गए सभी गोले अपने लक्ष्य से भटक गए। एक भी गोला मंदिर पर नहीं लगा, ना ही नगर के किसी भवन पर गिरा। इसी अरबी समुद्र के भीतर जाकर शांत हो गए सभी गोले। यह अरबी समुद्र को देखो।"
भीड़ समुद्र की तरफ देखने लगी। भीड़ को समुद्र की ध्वनि सुनाई देने लगी।
"तूने सुनी, बांसुरी की मधुर ध्वनि?" भीड़ में से कोई बोला।
"जैसे श्री कृष्ण स्वयं बांसुरी बजा रहे हो ऐसा प्रतित होता है।"
"किन्तु कृष्ण है कहाँ? उसके सिवा ऐसी धुन कोई नहीं छेड़ सकता।"
"कृष्ण ने गोकुल छोडने के पश्चात फिर कभी बंसी नहीं बजाई।"
"कृष्ण बजाए ना बजाए, किन्तुजहां कृष्ण होते हैं वहाँ बांसुरी के सुर बहते रहते हैं।"
"किन्तु यह तो द्वारिका है। प्रेम की नहीं, राजनीति कीनगरी है।"
"अदम्य इच्छा होते हुए भी कृष्ण कभी बांसुरी बजा नहीं पाये।"
"उसे अत्यंत मन होता होगा कि इन सब कूटनीतियों को छोड़ कर किसी अज्ञात स्थान पर जाकर बांसुरी बजाऊँ।"
"किन्तु जगत कभी किसी को इतना अवसर कहाँ देता है? स्वयं कृष्ण को भी नहीं।"
"तो यह सुनाई देता है वह स्वर कौन जगा रहा है?" भीड़ चर्चा मे लगी रही। कोई उत्तर नहीं मिला।
"हम इसे ही पूछते हैं कि यह मुरली की ध्वनि कौन सुना रहा है?"
"हाँ, हाँ, इसे तो ज्ञात ही होगा। " भीड़ ने उसे पुछ लिया।
"अरब सागर की लहरों से उठती ध्वनि ही है जो द्वारिका में बांसुरी की धुन बन जाती है। ध्यान से सुनते रहें। समुद्र के जीतने समीप जाओगे, ध्वनि के सुर उतने हीमधुर होते जाएंगे। जाओसमीप जाकर उसका आनंद उठाओ।
भीड़ समुद्र की तरफ बढ़ गई। भीड़ का आवरण हट गया। उत्सव के सम्मुख एक मानवीय आकृति आ गई। वह उसे देखता ही रहा।
उत्सव के सम्मुख एक युवती थी। उसने श्वेत कपड़े पहने हुए थे। उसके केश खुले हुए थे जों कन्धो पर बिखर कर पीठ पर स्थिर हो गए थे। कुछ लटें समुद्र की हवा से मंद मंद लहरा रही थी। उसकेललाट पर ऋषि मुनियों के भाल पर दिखने वाला त्रिपुंड था। आँखें करुणा से भरी। अधरों पर एक दिव्य स्मित था जो मोहक था।
'ऐसा स्मित तो स्वयं कृष्ण के अधरों पर होता था। उसे सब भुवन मोहिनी स्मित कहते थे। यह युवती भी वही स्मित ओढ़े खड़ी है। क्या वह स्वयं कृष्ण है? अथवा कृष्ण इस युवती के माध्यम से मेरा स्वागत कर रहे हैं?'
उत्सव विचारों में खो गया। उस युवती को अनिमेष देखता रहा।
उस युवती ने भी उत्सव को देखा। उसके सामने एक युवक खड़ा था।
वह किसी प्रवासी जैसा नहीं लग रहा था। उसके मुख पर उगी असीमित दाढ़ी थी। आँखों में अनेक भाव थे जो प्रश्नों का रुप लिए खड़े थे।उसमें विस्मय भी था। वह उस युवती को देखे ही जा रहा था। उसकी द्रष्टि तो युवती पर ही थी किन्तु वह कहीं कोई गहन विचारों में था। वह वहाँ होते हुए भी वहाँ नहीं था। युवती को देखते हुए भी वह उसे देख नहीं रहा था।
युवती ने कुछ क्षण प्रतीक्षा की कि युवक कुछ बोले। किन्तु समय व्यतीत होता रहा, वह युवक स्थिर सा खड़ा रहा।
"श्रीमान, यदि तुम किसी आभा के प्रभाव से मुक्त हो गए हो तो कुछ बोलो।" युवती ने अंतत: मौन तोड़ा।
उत्सव ने युवती के शब्द सुने। विचारों की यात्रा भंग हो गई। उसने स्मित किया, युवती ने प्रत्युत्तर में स्मित दिया।
"हे यात्रिक, तुम कौन हो?" युवती ने कहा।
उत्सव ने अनायास ही दोनोंहाथ जोड़ दिये,"मेरा प्रणाम स्वीकार करें।"
"कल्याण हो। कहो, जो कहना हो उसे निश्चिंत होकर कहो।"
"मुझे पंडीत गुल से मिलना है। वह कहाँ मिलेंगे?"
"ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम लंबी यात्रा करते हुए यहाँ तक आए हो। तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है। थोड़ा विश्राम कर लो।"
"यह सत्य है कि मैं लंबी यात्रा से आया हूँ किन्तु मुझे विश्राम नहीं करना। यदि आप मेरी भेंट पंडित गुल से करवा दें तो ....।"
"क्या आप अपना धैर्य खो चुके हो ?"

“यह भी सत्य है।” उत्सव ने पुन: हाथ जोड़ दिये। उसके मुख पर विनंती के भाव थे।
“आओ, यहाँ बैठो।” उत्सव एक पत्थर पर बैठ गया। उसके सामने अरबी समुद्र लहरा रहा था। पीठ पीछे पूर्व से उगा सूरज अपनी किरणों से रात्रिभर से ठंडे पड़े समुद्र को उष्ण करने का प्रयास कर रहा था। समुद्र भी उत्साह से भरा था, तीव्र लहरों से सूर्य की किरणों का अभिवादन कर रहा था।
यह युवती भी समुद्र की भांति उत्साह से भरी है। इसके शब्दों में उष्णता थी, ऊर्जा थी।
“लो, यह जल ग्रहण करो।” युवती के शब्दों ने उत्सव का ध्यान समुद्र से हटा दिया। वह युवती एक पात्र हाथ में लिए सामने खड़ी थी। वही भुवन मोहिनी स्मित, वही त्रिपुंड से भरा ओजस्वी ललाट। केवल एक ही अंतर था, खुले केश अब बध्ध थे।
“क्या नाम है तुम्हारा? कहाँ से आए हो?”
“मेरा नाम .... ?”
“हाँ, तुम्हारा नाम। कहो क्या है?”
“मुझे स्मरण नहीं रहा मेरा नाम।”
“जब तक तुम अपना नाम याद कर लो तब तक तुम्हें मैं प्रवासी कहूँ?”
“यह नाम सुंदर है।”
“हे प्रवासी, यह शीतल जल ग्रहण करो।” युवती ने जल से भरा पात्र उत्सव के तरफ बढ़ा दिया। उत्सव ने उसे लिया तथा एक ही घूंट में सारा जल पी गया। जैसे युग युग से तृषातुर हो।
“मैं अधिक जल ले आती हूँ।” वह चली गई। उत्सव उसे देखता रहा।
वह लौटी। उत्सव ने पुन: जल पिया। उसकी तृषा शांत हो गई। उसने युवती की तरफ देखा।
उसकी आँखों में प्रश्न था कि – कहाँ है पंडित गुल? मेरी उससे भेंट करवा दो?
उत्सव के सामने पड़ी दूसरी शीला पर युवती बैठ गई।
“जी, मैं ही हूँ पंडित गुल। कहो क्या कहना है?”
“आप? क्या आप ही पंडित गुल हैं?” आश्चर्य तथा अविश्वास से उत्सव खड़ा हो गया।
“मैं ही हूँ पंडित गुल। बैठ जाओ।”
“नहीं, नहीं। नहीं....।” उत्सव बोलता रहा और दौड़ता हुआ भाग गया।
उत्सव समुद्र के तट पर दौड़ रहा था। गुल उसे जाते हुए देखती रही। कुछ ही क्षणों में वह गुल की द्रष्टि से दूर चला गया। गुल अभी भी उसी मार्ग पर द्रष्टि डाले खड़ी थी। विचारों में खो गई थी।
‘कौन था यह प्रवासी? क्यूँ आया था? मिलना तो उसे मुझे ही था तो मेरा नाम सुनकर वह भाग क्यों गया? किसने भेजा होगा उसे मेरे पास?’
‘छोड़ो उसे, गुल। कोई भटका हुआ प्रवासी था। चला गया।’
‘किंतु वह मेरा नाम लेकर आया था। मुझ से ही उसे मिलना था और मुझ से मिलते ही भाग गया। ऐसे भागा है जैसे किसी शत्रु को देख लिया हो। ऐसा उसने क्यों किया होगा?’
‘कहीं वह ‘वोह’ तो नहीं था?’
‘वोह?’
‘हाँ,‘वोह’। इस प्रवासी की आँखें भी उनकी आँखों जैसी ही थी। वही कद, वही यौवन। वही आयु होगी उसकी।’
‘किन्तु यह प्रवासी ‘वोह’ नहीं हो सकता।’
‘क्यों नहीं हो सकता?’
‘क्यों कि ‘वोह’ मुझे जानता है। मुझे देखकर वह इस प्रकार भाग नहीं जाता।’
‘तो क्या करता?’
‘कुछ प्रश्न करता, कुछ कहता, कुछ सुनता, रुकता।’
‘किन्तु सत्य तो यह है कि प्रवासी भाग चुका है।’
‘तो तुम अपने मन से उसके पीछे क्यों भागती हो। लौट आओ।’
गुल लौट आई।

4

उत्सव भागता रहा, भागता रहा। वह उसी दिशा में दौड़ रहा था जिस दिशा से वह आया था।
वह भागता रहा। सोचता रहा –
'क्यों भाग रहा हूँ मैं?'
किन्तु उसे कोई उत्तर नहीं मिला। बस वह भागता रहा। वह उसी स्थान पर आ गया जहां उसे बाबा मिले थे। वह किनारे कि रेत पर बैठ गया। कुछ क्षण के पश्चात वह रेत पर ही सो गया। शीतल हवा ने उसे निंद्राधिन कर दिया।
सूरज खूब चढ़ गया। उसकी तीव्र किरणों से उत्सव जाग गया। तीव्र धूप से बचने के लिए कोई स्थान ढूँढने लगा। उसने दूर किसी टूटे हुए मकान को देखा। वहाँ जाने के लिए वह उठा किन्तु चल न सका।
सन्मुख उसके वही बाबा थे। कह रहे थे,"वत्स, तुम भाग क्यों आए?"
उत्सव क्रोधित हो गया, 'यही वह व्यक्ति है जिसने मुझे भटका दिया।'
"बाबा, आपने मेरे साथ ऐसा क्यूँ किया?"
"क्या किया? कुछ कहो तो... ।"

“आपने मुझे पंडित गुल के पास भेजा था किन्तु वह.... ।”
“किन्तु वहाँ एक युवती मिली जो अपने आप को पंडित गुल कह रही थी। यही न?”
“जी, यही तो... ।”
“वोह सत्य कह रही थी। वही पंडित गुल है।”
“यह कैसे हो सकता है बाबा?”
“क्यों नहीं हो सकता?”
“एक युवती पंडित कैसे हो सकती है?”
“वत्स, तुम्हारी समस्या क्या है, पंडित का युवती होना अथवा युवती का पंडित होना?”
“दोनों स्थिति मेरे लिए विस्मय से भरी है।”
“तो तुम विस्मय से भयभीत हो। विस्मय का सामना करने का साहस रखना होगा, अन्यथा पूरा जीवन व्यतीत हो जाएगा किन्तु तुम अपने प्रश्नों के उत्तर नहीं पा सकोगे।”
“किन्तु एक युवती, एक स्त्री पंडित कैसे हो सकती है?”
“क्यों नहीं हो सकती?क्या ज्ञान पर किसी जाती विशेष का एकाधिकार है?”
“किन्तु... ।”
“वत्स, अनेक विद्वान स्त्री का उल्लेख हमारे शास्त्रों में उपलब्ध है। स्त्री का पंडित होना कोई नयी बात तो नहीं।”
“किन्तु वह तो तब की बात थी। आज के युग में... ।”
“वत्स, तुम बात बात पर भटक जाते हो। क्या यह तुम्हारा स्वभाव है?”
“मैं नहीं जानता।”
“यही कारण है कि तुम अपने प्रश्नों के उत्तर नहीं पा सके हो। ज्ञान, पंडिताई यह सब किसी समय विशेष अथवा जाती विशेष के बंधनों से मुक्त होते हैं। प्रत्येक युग में प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार रखती है। प्रत्येक युग में स्त्रीयों ने भी ज्ञान को प्राप्त किया है। इस युग में यह सौभाग्य गुल को प्राप्त हुआ है। ज्ञान कभी लिंगभेद नहीं देखता।”
“तो उसे पंडित के बदले ... ।”
“हमें पंडिता कहना चाहिए। क्या यही तुम्हारे विस्मय का समाधान है?”
बाबा के शब्दों ने उत्सव को मौन कर दिया।
“जाओ, वत्स। पुन: जाओ। पंडित गुल से मिलो। वही तुम्हें तुम्हारे लक्ष्य तक मार्गदर्शन करेगी।”
“जैसी आपकी आज्ञा।” उत्सव ने हाथ जोड़ दिये। किन्तु आंख बंद नहीं की तथा द्रष्टि झुकाई भी नहीं। वह बाबा को देखता रहा।
“कल्याण हो तुम्हारा, वत्स।” कहते हुए बाबा समुद्र की तरफ चलने लगे। पानी के भीतर उतरने लगे। देखते ही देखते समुद्र के भीतर ओझल हो गए।
एक नये विस्मय ने उत्सव की आँखों में जन्म ले लिया।
‘कोई ऐसे कैसे समुद्र के भीतर अद्रश्य हो सकता है?’
‘यह बाबा मायावी लगते हैं।’
‘ऐसा ही लगता है। मेरी प्रत्येक बात से वह परिचित हैं। मैं जो करता हूँ वह सब उसे ज्ञात हो जाता है। मेरी प्रत्येक चेष्टा पर उसकी द्रष्टि हो जैसे। मेरे मन के भावों को पढ़ लेते हैं। मेरी जिज्ञासा जान लेते हैं। मेरी दुविधा को समज लेते हैं। मुझे कोई ना कोई मार्ग प्रदर्शित कर देते हैं। क्या यह बाबा मेरे भीतर उतर जाते हैं? या मेरे भीतर ही तो नहीं बसे?’
‘नहीं,भीतर नहीं बसे हैं वह मेरे। यदि ऐसा होता तो वह मेरे सन्मुख कैसे आते? मुझसे बात कैसे करते?’
‘बात कहते ही अद्रश्य हो जाते हैं। अभी अभी तो समुद्र के भीतर चले गए!’
‘बड़े मायावी हैं यह बाबा।’
‘किन्तु कौन है यह बाबा?’
‘कोई तो है जो रूप बदलकर मेरे सन्मुख आ जाता है, मुझे शांत कर जाता है। मार्ग दिखलाता है।’
‘मार्ग? उसने जो मार्ग दिखाया है उस पर चलना है तुम्हें, उत्सव।’
‘उत्सव? मुझे स्मरण हो गया। मेरा नाम उत्सव है। मुझे चलना होगा पंडित गुल के पास।’
उत्सव चलने लगा। पंडित गुल के पास आ गया।

5

सूरज अभी मध्य आकाश से दूर था। सूरज की किरनें अधिक तीव्र हो चुकी थी। किन्तु समुद्र से आती हवा की शीतल लहरें धूप को भी शीतल कर रही थी। उत्सव गुल के घर के सन्मुख आ गया। भीतर प्रवेश करने से पहले वह रुक गया। घर को देखने लगा।
एक छोटा सा भवन, एक ही कक्ष का। सामने खुल्ला सा विशाल आँगन। समीप ही अरबी समुद्र। दो चार शिलाएँ जो समुद्र की तरफ मुख कर खड़ी थी। आँगन में कोई नहीं था।
पहेली बार आया था तब तो भीड़ थी। अभी यहाँ कोई नहीं है।
'पंडित गुल तो होगी न?'
दुविधा को लिए वह घर की तरफ बढ़ा। वहाँ कोई नहीं था। उसने सभी दिशाओं में तथा कोनों में
खोजा। वहाँ कोई नहीं मिला।
'कहीं गई होगी, कुछ ही समय में वह आ जाएगी। मुझे प्रतीक्षा करनी होगी। मैं इस शीला पर बैठ जाता हूँ।'
'किन्तु वह नहीं आई तो?'
'ऐसा नहीं हो सकता। वह आएगी, अवश्य ही आएगी।'
उत्सव एक शीला पर बैठ गया। सामने लहराते समुद्र को देखता रहा। विचारों में विचरता रहा।
समय धीरे धीरे प्रवाहित होता रहा।
दूर कहीं कोई घंटनाद हुआ। उत्सव का ध्यान भंग हुआ। उसने उस दिशा में देखा। समुद्र के भीतर एक ऊंची विशाल शीला पर एक छोटा सा मंदिर तथा उसकी लहराती धजा द्रष्टिगोचर हुई। घंटनाद उसी मंदिर से आ रहा था।
घंटनाद मधुर था। आँखें बंध कर उत्सव उसे सुनता रहा। जैसे जैसे वह घंटनाद उत्सव के कानों में पड़ता रहा, उसका मन प्रसन्न होता गया। मन शांत हो गया।
घंटनाद बंध हो गया किन्तु उत्सव ने आँखें नहीं खोली। उस नाद के प्रतिनाद को वह अनुभव करता रहा।
'मन करता है कि इस नाद को सुनता रहूँ, सदा के लिए। मैं आँखें बंध ही रखूँ, इसे कभी ना खोलुं।'
"आँखें खोलो प्रवासी। भगवान शिव का प्रसाद ग्रहण करो।" एक मधुर सी, परिचित सी ध्वनि उत्सव के कानों में पड़ी।
उत्सव ने उस ध्वनि को भ्रम माना। आँखें नहीं खोली।
"हे प्रवासी, समाधी से जागो। आँखें खोलो।" वही परिचित ध्वनि सुनाई दी।
इस बार उत्सव उस ध्वनि को टाल ना सका। उसने आँखें खोल दी।
सन्मुख उसके पंडीत गुल खड़ी थी, हाथ में कोई पात्र लिए। मुख पर दिव्य शांति थी। अधरों पर वही स्मित था तो आँखों में थी करुणा।
इस बार गुल को देख उत्सव विचलित नहीं हुआ। उत्सव ने स्मित दिया। उस स्मित में सौम्यता थी। गुल ने हाथ के पात्र में से एक पुष्प निकाला, उसे उत्सव की तरफ बढ़ा दिया। उत्सव ने उसे स्वीकार किया। अपनी आँखों से लगाया। पुष्प पानी से भीगा हुआ था, उत्सव की आँखें भी पानी के स्पर्श से भीग गई।
एक अवधि के पश्चात उत्सव की आँखों ने पानी का स्पर्श अनुभव किया था। वह स्पर्श उसे मनभावन लगा। उसने दूसरी बार पुष्प को आँखों से लगाया। वह प्रसन्न हो गया।
"अब यह प्रसाद ग्रहण करो।" गुल ने उत्सव की तरफ प्रसाद धर दिया। उत्सव उसे देखता रहा।
"इसे ग्रहण करो।"
उत्सव ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी, बस देखता रहा।
"तुम कोई दुविधा में हो ऐसा लगता है।"
"हाँ।" वह इतना ही बोल सका।
"कहो, क्या दुविधा है?"

"सुना है कि महादेव का प्रसाद ...।"
"नहीं लेना चाहिए, यही ना?"
"हाँ। यही तो सुनते आए हैं हम।"
"तुम सुनी सुनाई बातों पर अटक जाते हो और फिर भटक जाते हो। उसे ही तुम सत्य मान बैठते हो।" "तो क्या करता मैं?"
"सत्य क्या होता है? अन्यों से सुना होता है वह अथवा जिसे हमने स्वयं अपनी ही कसोटी पर परखा हो वह? यदि सत्य को जानना हो, समझना हो तथा उसे पकड़ना हो तो उसे अपने ही मापदण्डों से परखो। यदि तुम ऐसा नहीं करते हो तो तुम किसी और की बातों को ही सत्य समझ लेते हो और भटक जाते हो।" गुल ने अभी भी प्रसाद से भरा हाथ उत्सव की तरफ बढ़ाए रखा था।
उत्सव उस हाथ को देखता रहा, गुल की बातों को सुनता रहा।
"यदि तुम्हारे पास तुम्हारा अपना सत्य नहीं है तो इस क्षण मेरे सत्य को ग्रहण कर लो। इस प्रसाद को ग्रहण कर लो।" गुल ने कहा। उत्सव ने प्रसाद ग्रहण करने हेतु अनायास ही अपनी हथेली आगे बढ़ा दी।
गुल ने हथेली को देखा, अपने बढ़े हुए हाथ को प्रसाद दिये बिना ही खींच लिया। उत्सव ने गुल की तरफ देखा। उसकी आँखों में प्रश्न भी था, याचना भी थी।
"गंदी मैली हथेली में ईश्वर का प्रसाद लेना उचित नहीं। जाओ हथेली को धोकर आओ। ईश्वर भी स्वच्छता पसंद करता है।" गुल ने आदेश दिया। एक कोने पर रहे पानी के नल के तरफ संकेत किया।
उत्सव उठा, पानी से हाथ धोये। हथेलीयों से सारे मेल बह गए। आज दूसरी बार उसके तन को पानी का स्पर्श हुआ था। वह उस स्पर्श से रोमांचित हो गया।
"अब तो प्रसाद मिलेगा ना?" उत्सव ने स्वच्छ हथेली गुल की तरफ बढ़ा दी। गुल ने क्षणभर हथेली को देखा, पढ़ा और उस हथेली पर प्रसाद रख दिया। उत्सव उसे खा गया। उसने दूसरी बार हथेली बढ़ाई, गुल ने दूसरी बार प्रसाद दिया। वह प्रसन्न हो गया।
"और दूँ?" गुल ने पूछा।
"नहीं, इतना पर्याप्त है।"
"प्रवासी, पिछली बार भोजन कब किया था?"
"स्मरण नहीं रहा।"
"आज इच्छा है भोजन ग्रहण करने की?"
उत्सव ने कोई उत्तर नहीं दिया। गुल ने भोजन परोसा, उत्सव उसे खाने लगा। वह सारा भोजन खा गया, तृप्त हो गया।
"मुझ जैसे अज्ञात प्रवासी पर आपकी इतनी कृपा क्यों है, पंडित गुल?"
"इस संसार में कोई किसी से अज्ञात नहीं होता है। तुम भी नहीं।"
"किन्तु हम पहले कभी नहीं मिले।"
"मिलना नहीं हुआ वह भिन्न बात है। किन्तु इसी कारण तुम अज्ञात नहीं हो जाते। हमारा कोई न कोई संबंध समय के किसी काल खंड में रहा होगा। यही तो कारण है कि तुम आज मुझे मिले हो। बिना ऋणानुबंध के कोई किसी से नहीं मिलता।"
"वह तो ठीक है, किन्तु आपने भोजन नहीं किया। मैं ही सारा भोजन खा गया। कुछ भी तो नहीं शेष बचा। अब आप क्या खाएँगी?"
गुल ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल स्मित दिया। उस स्मित में कुछ तो था कि उत्सव ने आगे कोई बात नहीं की। गुल समीप एक शीला पर बैठ गई।
क्षण मौन में व्यतीत होने लगे। दोनों मौन थे। दोनों समुद्र की लहरों को देख रहे थे। दोनों के मन में भी लहरें उठ रही थी। दोनों एक दुसरे के शब्दों की प्रतीक्षा करने लगे, करते रहे। एक लंबे अंतराल तक कोई कुछ नहीं बोला। सूरज अब माथे पर आ गया था। दोनों वहीं बैठे रहे।
"प्रवासी, तुम एक लंबी यात्रा करते हुए यहाँ तक आए हो। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम कई दिवसों से, कई रात्रियों से सोये नहीं हो।" गुल ने मौन भंग किया।
"आपका अनुमान सत्य है।"
"तो तुम्हें विश्राम कर लेना चाहिए। आओ मैं तुम्हारे विश्राम का प्रबंध करती हूँ।"
"नहीं, मैं सोना नहीं चाहता।"
"क्यों?"

"क्यों कि मुझे नींद नहीं आती है।"
"ऐसा कैसे हो सकता है? आहार एवं निंद्रा तो मनुष्य कि स्वाभाविक क्रियायेँ है। कोई भी मानव इस बंधन से मुक्त नहीं।"
"मैं चाहुं तो भी मुझे नींद नहीं आती है।"
"ऐसी क्या विशेष बात है? ऐसा क्या कारण है?"
"कई दिनों से, कई रात्रियों से, नहीं, कई महीनों से कुछ उजाले हैं जो मेरे साथ चलते रहते हैं, थकते ही नहीं। आप ही कहो, उजालों में कोई कैसे सो सकता है?'
"उजालों से बचा भी जा सकता है। बस अपनी आँखें बंध कर लो।"
"आँखें बंध करते ही उजाले मेरे सामने आ जाते हैं। मैं उससे बचने का पूरा प्रयास करता हूँ किन्तु विफल हो जाता हूँ।"
"बंध आँखों के उजाले?" गुल ने पूछा।
"हाँ, वही।"
"अर्थात तुम किसी प्रश्न से पीड़ित हो। तुम कोई समस्या का समाधान खोज रहे हो। और वह तुम्हें नहीं मिल रहा।"
"आपका कहना उचित है।"
"यह सारे उजाले तब तक रहते हैं जब तक कोई थका हुआ मुसाफिर भूखा होता है। पेट भरते ही उजाले अद्रश्य हो जाते हैं। भूखे व्यक्ति को नींद नहीं आती कभी।"
"किन्तु मेरी …। "
"देखो पथिक, अब तुम्हें विश्राम करना चाहिए।"
"मैं तो आप से, पंडित गुल से मिलने के लिए आया था। आपसे मिलने का मेरा प्रयोजन मेरे लिए भोजन जुटाना नहीं था। मुझे आप से …।"
"हे यात्रिक, इस समय तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है। जाओ कक्ष में जाकर थोड़ा विश्राम कर लो।" "किन्तु…।"
"ना तो मैं, ना तो तुम और ना ही यह स्थल, यह सागर और ना ही तुम्हारे प्रश्न, तुम्हारी बातें, इनमें से कोई यहाँ से भाग जाने वाला है। तुम निश्चिंत रहो। विश्राम के पश्चात हम बातें करेंगे।"
उत्सव के पास कोई शब्द नहीं रहे। वह उठा, सागर की तरफ बढ़ा तथा सागर के तट की रेत पर जाकर सो गया। क्षणभर में वह निंद्रा के अधीन था।

गुल ने उसे जाते देखा। वह सो गया था। शांत हो गया था। सोते हुए उत्सव के मुख पर कोई भाव नहीं थे। कोई चिंता नहीं थी। पूर्ण रूप से सौम्यता थी।
'कितना अशांत था, व्याकुल था यह युवक! और अब निंद्रा के अधीन कितना शांत!'
'क्या कारण होगा उसकी अशांति का? क्यों वह मुझसे मिलना चाहता था?'
'चाहता था? था नहीं, है। वह तुम्हें मिला ही कहाँ है? बस आया, भोजन किया और सो गया।
वह अभी भी तुम्हें मिलना चाहता है, गुल।'
'संभव है कि पेट की भूख शांत होने के पश्चात वह तुम्हें मिले ही नहीं। तुम्हें ही भूल जाय अथवा तुम्हें मिले किन्तु मिलने का प्रयोजन ही भूल जाय। यह भी संभव है कि निंद्रा से जागते ही वह किसी अन्य मार्ग पर चल पड़े।'
'ऐसा नहीं हो सकता। वह मुझे मिलने आया था। एक बार नहीं दो बार आया है। वह मुझसे मिले बिना जा नहीं सकता।'
'इतना विश्वास है?'
'हाँ।'
'क्यों?'
'क्यों कि यह प्रवासी है जो कहीं से आया है और मेरा नाम लेकर आया है। कोई इतनी दूरी तय करते हुए बिना कारण ही नहीं चला आता। मुझसे मिलना ही उसका लक्ष्य होगा।'
'कोई लक्ष्य तक आकर भी लौट सकता है।'
'ऐसा कैसे हो सकता है?'
'ऐसा इसलिए हो सकता है कि लक्ष्य के लिए जब मनुष्य अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है तब उसके मन में उस लक्ष्य का एक चित्र होता है, एक कल्पना होती है। और उसी कल्पना को लेकर वह मार्ग पर चलता रहता है। किन्तु जब उसी लक्ष्य को सम्मुख पाता है तब...।'
'तब क्या?'
'गुल धैर्य रखो। तुम इतनी विचलित क्यों हो? आज से पहले तो कभी इतनी विचलित नहीं हुई हो।उस समय पर भी नहीं जब तुम्हें छोडकर वह चला गया था। तो आज यह क्या हो रहा है?'
'मेरे पास अभी इस विषय में कहने को कुछ नहीं है। तुम मुझे उसका कभी भी स्मरण नहीं कराओगे, तुमने मुझे यह वचन दिया था। तुम्हें उस वचन का पालन करना होगा।'
'हाँ उस वचन का पालन तो करना ही होगा।'
'तो तुम कुछ लक्ष्य की बात कर रहे थे। क्या कह रहे थे?'
'तो बात यह थी कि जब मनुष्य उसी लक्ष्य को सम्मुख पाता है तब लक्ष्य को देखकर उसका मोह भंग हो जाता है। मन में रची छवि टूट जाती है, बिखर जाती है। उसके सम्मुख जो होता है वह उसकी कल्पना से विपरीत अथवा भिन्न होता है जिसे वह स्वीकार नहीं कर सकता।'
'तो क्या होता है?'
'तो वह उस लक्ष्य से मिले बिना ही अपने मार्ग पर लौट जाता है।'
'किन्तु यह युवक ऐसा एक बार तो कर चुका है। प्रात: वह इसी कारण मुझे देखकर लौट गया था। तुमने देखा ही था ना कि वह कैसे भाग गया था।'
'हाँ देखा था। तभी तो मेरा मानना है कि वह तुम्हें नहीं मिलेगा।'
'किन्तु कुछ ही समय पश्चात वह लौट आया है। मुझ से मिला है। मेरे हाथों से भोजन लिया है और अब वह समंदर की रेत पर निश्चिंत होकर निंद्राधीन पड़ा है। देखो वह वहाँ सो रहा है।'
गुल के हाथ अनायास ही समंदर के तट की तरफ बढ़ गए, जहां उत्सव लेटा हुआ था, द्रष्टि भी। वह चौंक गई। वहाँ कोई नहीं था। वह युवक भी नहीं। गुल ने सारे तट पर द्रष्टि डाली। कहीं कोई नहीं था। सारा तट निर्जन सा था, सदैव की भांति।
'कहाँ चला गया? अभी तो यहीं था।'
'गुल, प्रवासी था वह। प्रवासी तो आते जाते रहते हैं। वह आया था, चला गया। पुन: आएगा भी।'
'यदि नहीं आया तो?'
'तो क्या? नहीं आया तो नहीं सही।'
'किन्तु ...।'

'तुम क्यूँ इतनी व्याकुल हो रही हो? क्या कारण है?'
'कुछ भी तो नहीं।'
गुल मौन हो गई। गुल ने अपने विचारों को भी मौन कर दिया। वह समुद्र के तट को तथा तट पर आकर शांत हो जाती लहरों को देखती रही। सूरज गति करता रहा, पश्चिम की तरफ ढलता रहा। गुल अभी भी समुद्र की तरफ द्रष्टि किए खड़ी थी। समय बहता रहा। सूरज ढलता रहा। संध्या होने का समय हो गया किन्तु गुल अभी भी मूर्ति की भांति स्थिर थी। उसका मन स्थिर था, विचार भी स्थिर थे। वह शांत थी।
घंटनाद हुआ। गुल के कानों ने उसे सुना। वह चलित हो गई। दूर महादेव के मंदिर को देखा जहां से संध्या आरती का घंटनाद हो रहा था। वह दौड़ी, महादेव के मंदिर की तरफ। जब तक वह मंदिर पहोंचती, आरती सम्पन्न हो गई।
"कहाँ रह गई थी गुल?" पुजारी जी ने प्रसाद देते हुए गुल से पूछा।
"कुछ नहीं बाबा, बस यूं ही विलंब हो गया।" गुल ने स्मित के साथ उत्तर दिया।
कुछ क्षण वह सोचती रही फिर बोली,"बाबा, आप तो आरती उतार रहे थे। मैं समय पर ना आ सकी। दूसरा तो कोई यहाँ होता नहीं है। मैं ही सदैव घंट बजाती हूँ तो आज यह घंटनाद किसने किया?"
पुजारी जी हंस दिये।
"आपने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, बाबा।"
"आज एक कोई अज्ञात प्रवासी ने यह काम कर दिया।"
"कौन है वह? कहाँ है वह?" गुल उत्साहित थी।
"यहीं तो था वह।" पुजारी ने इधर उधर देखा। वह वहाँ नहीं मिला। उसने दूर देखा, "देखो, दूर किनारे के मार्ग पर वह जा रहा है।" पुजारी ने दूर हाथ बढ़ा दिया। गुल ने उसे देखा।
"वही तो है वह।" गुल मन ही मन बोली।
"सुनो, रुक जाओ।" गुल ने उस जाते हुए प्रवासी को पुकारा। किन्तु वह नहीं रुका। कदाचित उसने गुल की ध्वनि नहीं सुनी अथवा लहरों से उठती ध्वनि में गुल की ध्वनि उसे सुनानी नहीं दी। वह चलता गया, दूर तक चला गया। जाते हुए प्रवसी को गुल देखती रही।
"बेटा, क्या बात है?" पुजारी के प्रश्न ने गुल का ध्यान भंग किया।
गुल ने पुजारी को देखा।
"कौन था वह? कोई परिचित था क्या?" पुजारी ने पूछा।
"नहीं बाबा, अपरिचित ही था वह। वह कौन है यह भी मेरे संज्ञान में नहीं।"
"तो उसके लिए चिंतित क्यूँ हो, बेटा?"
गुल ने प्रवासी के साथ घटी सभी घटना पुजारी जी को बता दी।
"बेटा, तुम उसकी चिंता छोड़ो। यात्री है वह। अपना ध्यान स्वयं रख लेगा वह। तुम निश्चिंत होकर तुम्हारा काम करती रहो।" पुजारी ने उसे आस्वासन दिया।
गुल अपने घर लौट आई।
संध्या ढल चुकी थी। सूरज अस्त हो गया था। अंधकार पृथ्वी के इस भूभाग पर प्रवेश करने की चेष्टा कर रहा था। समुद्र की तर फ एक द्रष्टि डालकर गुल अपने नित्य क्रम में व्यस्त हो गई।

7

गुल समुद्र को देख रह थी। समुद्र की ध्वनि के उपरांत समग्र तट की रात्री नीरव शांति से ग्रस्त थी। किन्तु गुल का मन अशांत था। वह विचारों में मग्न थी।
‘वह रात्री भोजन के लिए भी नहीं आया। समुद्र के तट पर सोते हुए महादेव के मंदिर तक गया, आरती के लिए घंट बजाया और चल दिया। मैंने उसे पुकारा भी था पर वह नहीं रुका। एक बार पीछे मुड़कर भी नहीं देखा।’
‘हो सकता है उसने तुम्हारे शब्द सुने ही ना हो।’
‘तो क्या? यदि उसे मुझ से काम था, मेरा नाम लेकर आया था तो मुझ से मिलकर जाता, अपना काम बता देता तो…।’
‘तुम उसके काम में इतनी रुचि क्यूँ प्रकट कर रही हो?’
‘यदि मैं उसके कुछ काम आ सकती तो …।’
‘यदि मैं यह कहूँ कि तुम उसके काम में नहीं अपितु उसमें रुचि ले रही हो तो?’
‘ऐसा नहीं है। तुम्हें ऐसा क्यूँ लग रहा है?’
‘जब से वह दुबारा तुम्हारे पास आया था तब से तुम उसके ही विचारों में व्यस्त हो। आज तक मैंने तुम्हें इस प्रकार किसी के भी विषय में इतना चिंतित होते हुए नहीं देखा। उस समय भी नहीं जब ‘वह’ तुम्हें तथा इस नगरी को सदा के लिए छोड़ चला गया था।’
“वह’? तुम मुझे पुन: उसका स्मरण करा रहे हो। तुमने वचन दिया था कि तुम कभी भी उसका स्मरण नहीं कराओगे।’
‘तो?’
‘मेरी भांति तुम भी स्वीकार क्यूँ नहीं कर लेते कि ‘वह’ हमें छोडकर सदा के लिए चला गया है। एक युग बीत चुका है उसके जाने के पश्चात। वह भी हमें भूल गया है, मैं भी उसे। तुम भी उसे भूल जाओ।’ ‘यही सत्य है। यही हमारे लिए उपयुक्त है।’
‘तुम उस व्यक्ति को भुला सकती हो जो तुम्हारे साथ कई वर्षों तक रहा। तो तुम इस व्यक्ति को क्यूँ याद कर रही हो जो आज ही तुम से मिला है। क्यूँ इस प्रवासी के लिए इतनी चिंतित हो?’
‘इन बातों का मेरे पास कोई उत्तर नहीं है। किन्तु यह सत्य है कि इस नवागंतुक प्रवासी के लिए मेरा मन चिंता कर रहा है, उसका विचार कर रहा है।’
‘क्यूँ कर रही हो ऐसा?’
‘मैं अनभिज्ञ हूँ इस विषय में।’
‘तो इस प्रवासी को भी भूल जाओ।’
‘मैं प्रयास करूंगी।’
गुल प्रयास करती रही, विफल होती रही, जागती रही। रात्रि अपनी गति से यात्रा करती रही। प्रभात के प्रथम प्रहर तक आ गई। द्वारका नगरी की घड़ी ने चार बार शंख बजाया और गुल को सूचित कर दिया कि प्रात: काल के चार बज चुके हैं। गुल ने अपने विचारों को समेटा। वह चल पड़ी समुद्र की तरफ, प्रति दिन की भांति प्रात: स्नान करने के लिए। वह पानी में उतरी, इधर उधर देखने लगी।
‘कल तो एक आकृति को देखा था, यहीं, कुछ दूरी पर। क्या वह आकृति आज भी यहीं कहीं होगी? मुझे देख रही होगी?’
इस विचार ने गुल को सजग कर दिया। स्त्री सहज लज्जा से उसने स्वयं को संकोरा और स्नान कर लौट आई। अपने कार्यों में जुड़ गई। आज भी पर्यटकों का एक समूह गुल के पास आया था, गुल ने उसे वही सब बताया जो वह सब को बताती रहती है। समूह बिखर गया। सब कुछ खाली हो गया। गुल ने खाली हुए उस स्थान पर द्रष्टि डाली, जैसे वह किसी को खोज रही हो।वहाँ कोई नहीं था। वह प्रवासी भी नहीं। गुल निराश हो गई।

वह अपने कार्यों में जुड़ गई। उसने भोजन बनाया, दो व्यक्तियों के लिए। मंदिर गई, आरती की, प्रसाद लगाया और घर लौट गई। भोजन का समय हो रहा था। वह प्रतीक्षा करने लगी, किन्तु कोई नहीं आया। लंबी प्रतीक्षा के पश्चात उसने अकेले ही भोजन किया।
संध्या हो गई। गुल मंदिर गई, आरती की। लौट आई। अकेले ही भोजन किया। समुद्र को देखती रही। उसके ध्वनि को सुनती रही। कोई नहीं आया। पिछली रात्रि भी प्रतीक्षा में व्यतीत हो गई थी। वह सोई नहीं थी। वह थकी हुई थी, सो गई।
इसी क्रम में एक और दिवस व्यतीत हो गया। प्रवासी नहीं आया, किन्तु गुल के मन से प्रवासी नहीं गया। उसने गुल के मन पर प्रभुत्व कर रखा था। वह उसके मन से हटता ही नहीं था। अंतत: वह अपने ही विचारों से हार गई।
'क्यूँ कर रही हो उसकी प्रतीक्षा?' गुल ने स्वयं से पूछा।
'मैं नहीं जानती।'
'गुल, इस प्रकार तो तुम आसक्ति की तरफ आकृष्ट हो रही हो। तुमने 'उसके' जाने के पश्चात स्वयं के लिए स्वयं ही वैराग्य का मार्ग पसंद किया था। तुम उस मार्ग पर आज तक चलती रही हो। कभी विचलित नहीं हुई। तो अब क्या हो गया? एक अज्ञात प्रवासी तुमसे मिलता है,तुम्हारा नाम लेकर आता है, तुमसे एक टुकड़ा भोजन लेता है और तुम उस प्रवासी की तरफ आकृष्ट हो जाती हो। क्या यही है तुम्हारा वैराग्य? क्या तुम्हारा वैराग्य इतना दुर्बल है कि कोई आकर उसे भंग कर दे,छिन्न भिन्न कर दे, नष्ट कर दे? तुम्हारे यह सारे उपक्रम तुम्हें आसक्ति की तरफ ले जा रहे हैं। तुम अपने ही मार्ग से भटक रही हो। तुम्हें इसी समय स्वयं को संभालना होगा, अन्यथा तुम सदा के लिए भटक जाओगी। आज तक यही सुना था कि ऋषि मुनियों की तपस्या किसी अप्सरा के द्वारा भंग हो जाती थी। किन्तु आज प्रथम अवसर है कि किसी पुरुष के कारण एक स्त्री की, एक विदुषी की तपस्या भंग हो रही है। गुल तुम्हें अपनी तपस्या को संभालना होगा,उचित निर्णय करना होगा, अभी।'गुल कोई निर्णय नहीं कर सकी।
'मैं स्वयं को समय को समर्पित करती हूँ। समय ही मेरे लिए उचित निर्णय करेगा।'
गुल ने अपने विचारों का शमन किया, वह शांत हो गई। समय को प्रवाहित होने दिया।

8

महादेव की आरती में घंटनाद करने के पश्चात उत्सव वहाँ से चला गया था। समुद्र के मार्ग पर चलते चलते वह उसी स्थान पर आ गया जहां उसे बाबा मिले थे। वह एक स्थान पर बैठ गया। सामने असीम समुद्र तथा उनकी लहरें। एक लयबध्ध ध्वनि उत्सव को सुनाई दे रही थी।
'वह कहती थी कि इस ध्वनि में कृष्ण की बांसुरी की मधुर धुन है। किन्तु मुझे तो लहरों की ध्वनि ही सुनाई दे रही है। लगता है पंडित गुल असत्य कह रही हो अथवा भ्रमित कर रही हो।'
'इसी भ्रम के कारण ही तो तुम उसे छोड़ चले आए।'
'मुझे नहीं लगता कि उसके पास मेरे प्रश्नों का कोई उत्तर हो, मेरे संशय का कोई समाधान हो।'
'तुमने तो उसे अपनी समस्या बताई ही नहीं। उस पर कोई चर्चा ही नहीं की। तो कैसे मान लिया कि वह तुम्हारे प्रश्नों...।'
'मुझे उस पर श्रध्धा ही नहीं हुई।'
'प्रयास तो करते। बिना प्रयास के ही तुम लौट आए।'
'मैंने अनेक महात्माओं से पूछा है, अनेक विद्वानों से पूछा है। अनेक ऋषि-मुनियों से भी पुछ लिया। सब ने मुझे निराश किया है। तो इस कथित पंडित से मैं क्या अपेक्षा रखूँ?'
'तुम्हें याद है, इसी स्थान पर तुम्हें वह बाबा मिले थे उसने कहा था कि तुम्हारे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर केवल पंडित गुल के पास है। तुम उस बाबा की बात पर विश्वास क्यूँ नहीं करते?'
'बाबा?' उत्सव बाबा के नाम पर खुलकर हंस पड़ा।

'यदि बाबा सत्य कह रहे होते, मेरा उचित मार्गदर्शन कर रहे होते तो इस समय वह मेरे सामने आए, मुझे विश्वास दिलाये तो मैं मानूँ।'
उत्सव तट पर बैठे बैठे सभी दिशाओं में देखने लगा। कहीं कोई नहीं था। बाबा भी नहीं थे। वह उस बाबा की प्रतीक्षा करने लगा। लंबे अंतराल के पश्चात भी बाबा नहीं आए। वह निराश हो गया। रात्रि ने अवनि पर अपना साम्राज्य रच दिया। वह समुद्र के तट पर ही निंद्राधीन हो गया।
उत्सव ने जब निंद्रा का त्याग किया तब दिवस चढ़ चुका था। सूरज अपने मार्ग पर आगे बढ़ गया था। मध्धम धूप सारे समुद्र पर तथा तट पर प्रसर चुकी थी। वह जागा, उठा तथा समुद्र पर घूमने लगा। विचारों में अपने प्रश्नों के उत्तर खोजने लगा। बाबा के आने की प्रतीक्षा करने लगा।
उसने मन ही मन निर्णय कर लिया,"जब तक मुझे बाबा नहीं मिलते, मैं पंडित के पास नहीं जाऊंगा।"
बाबा की प्रतीक्षा में वह दिवस भी व्यतीत हो गया। थका हुआ उत्सव भूखा ही सो गया।
एक और दिवस उग गया। उत्सव समुद्र के तट पर बाबा की प्रतीक्षा करने लगा।
'बाबा,आप कहाँ हो? मुझे किस दुविधा में डाल दिया। ना तो आप मिलते हो ना ही मैं पंडित गुल से मिलने जा सकता हूँ। कब तक यूं ही निरुपाय रहूँ?'
उत्सव पुन: बाबा की प्रतीक्षा करने लगा। समय व्यतीत होता रहा। सूरज पश्चिम की तरफ गति करने लगा। समुद्र की ध्वनि को सुनते सुनते उत्सव को समाधि लग गई। तभी किसी ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया। उत्सव की समाधि भंग हो गई। उसने आगंतुक को देखा।
"बाबा आप? कहाँ थे अब तक?" उत्सव खड़ा हो गया।
बाबा के मुख पर असीम शांति थी, दिव्य स्मित था।
"कैसे हो वत्स?"
उत्सव ने स्मित दिया।
"तुम गुल के पास गए थे तो लौट क्यूँ आए?"
"मुझे नहीं लगता कि वह इतनी सक्षम हो।"
"तुमने उसके हाथ का भोजन लिया था ना? कैसा था वह भोजन?"
उत्सव ने कोई उत्तर नहीं दिया।
"तुम्हारे जाने के पश्चात भी उसने तुम्हारे लिए भोजन बनाया था।" उत्सव बाबा की बात सुन रहा था।
"उसे विश्वास था कि तुम भोजन के लिए तो लौट ही जाओगे। किन्तु तुम नहीं लौटे। यहाँ भूखे रहे किन्तु उस गुल का भोजन नहीं लिया तुमने।"
"मुझे भूख ही नहीं लगी।" उत्सव ने कहा।
"आज भी उसने तुम्हारे लिए भोजन बनाया है। जाओ जाकर थोड़ा कुछ खा लो।"
"बाबा,भोजन में मेरी कभी रुचि नहीं रही। मिला तो भी, नहीं मिला तो भी।"
"किन्तु तुम्हें अपने प्रश्नों में तो रुचि अवश्य होगी।"
"जी। यही तो प्रयोजन है मेरे यहाँ आने का।"
"तो भटको मत। जाओ गुल से मिलो।"
"क्या वह स्त्री मुझे मेरे प्रश्नों के उत्तर देगी?"
"अवश्य देगी।"
"नहीं,भारतीय स्त्री केवल भोजन दे सकती है। प्रश्नों के उत्तर,संशय का समाधान नहीं। वह ऐसी बातों को क्या जाने?"
"तुम स्त्री को कभी उचित द्रष्टि से नहीं देख पाये वत्स। यदि उसे सम्मान दे सकोगे तो ही समाधान पाओगे। भारतीय स्त्री शब्दों से समाधान नहीं देती, अपने कर्मों से देती है।"
"वह कैसे?"
"उसे इतना तो ज्ञान है ही कि किसी भी भूख से अधिक तीव्र भूख पेट की भूख होती है। ज्ञान आदि बातें भूखे पेट नहीं की जा सकती।"
"तो क्या...?"
"आज भी जब तुम जाओगे तो प्रथम तो वह तुम्हें भोजन ही देगी, ज्ञान नहीं।"
"तो ज्ञान कब देगी? कब मेरे प्रश्नों के उत्तर देगी?"
"उचित समय पर वह भी मिल जाएगा। गुल को ज्ञान है उस समय का। तुम प्रतीक्षा करो। गुल के सानिध्य में रहा करो।"

“आप गुल के विषय में पूरा ज्ञान रखते हो। क्या गुल भी आप को जानती है?”
“गुल से ही पुछ लेना। अब तुम जाओ, समय व्यर्थ नष्ट ना करो।” बाबा ने कहा और वह चल दिये। समुद्र के भीतर चले गए।
उत्सव चल पड़ा गुल के पास।

9

संध्या हो चुकी थी। महादेव जी की आरती करने के लिए गुल मंदिर जा चुकी थी। गुल ने घंटनाद किया, पुजारी जी ने आरती की। महादेव जी को भोग लगाया । प्रसाद लेकर गुल मंदिर से बाहर निकली ही थी कि उसके सम्मुख प्रसाद के लिए बढ़ा हुआ एक हाथ आ गया। गुल ने उस हाथ में प्रसाद रख दिया, उस हाथ के मुख को देखा।
वह उत्सव था। दोनों की द्रष्टि मिली। दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला। गुल चलने लगी, उत्सव उसके पीछे चलने लगा।

दोनों गुल के घर आ गए।
“खाना खाओगे?” गुल ने पूछा।
“नहीं।”
“क्यों?”
“यदि मैं खाऊँगा तो आपको भूखा रहना पड़ेगा।”
गुल हंस पड़ी, “आज ऐसा नहीं होगा। उस दिवस तो कोई आएगा और मेरा भोजन खाएगा ऐसा कोई अनुमान नहीं था। आज मैंने दो व्यक्तियों के लिए भोजन बनाया है। तुम मेरे साथ भोजन ले सकते हो।”
“क्या यह सत्य है कि पिछले दो दिवसों से आप मेरे लिए भी भोजन बनाती हो।”
“हां। क्यूँ?”
“बाबा भी यही कह रहे थे।” गुल ने स्मित दिया, भोजन भी। दोनों खाने लगे।
उत्सव ने गुल को देखा। उसे वह स्वयं माँ अन्नपूर्ण लगने लगी। वह तृप्त हो गया।
गुल भोजनोपरांत कार्य करने में व्यस्त हो गई। उत्सव गुल की प्रतीक्षा करता समुद्र को देखता रहा।
कुछ समय पश्चात गुल आ गई, “तो तुम अभी तक यहीं हो? मुझे तो लगा कि कहीं...।”
“नहीं पंडित गुल। अब मैं यहाँ से भागने वाला नहीं हूँ।”
“तो तब क्यूँ चले गए थे?”
“कभी कभी पेट की क्षुधा शांत होने पर भी मन के उजाले शांत नहीं होते। मुझे निंद्रा आ तो गई किन्तु कुछ ही क्षणों में लौट गई। मन की अशांति ने मुझे सोने नहीं दिया। मैं उठा और चला गया।”
“कहाँ?”
“महादेव के मंदिर में।”
“तो आरती के पश्चात क्यूँ चले गए? मैंने तुम्हें पुकारा भी था किन्तु तुमने सुना नहीं।”
“सुना तो था किन्तु मुझ में इतना साहस नहीं था कि लौट आऊँ।”
“तो अब क्यूँ लौट आए?”
“मुझे बाबा ने भेजा है।”
“कौन है वह? कहाँ मिले थे?”
“वह सागर के उत्तरी तट पर मुझे मिलते हैं। तीन बार वह मुझे मिल चुके हैं। आप उससे परिचित हैं?”
“नहीं। मैं किसी बाबा को नहीं जानती। क्या नाम था उसका?”
“वह तो मैंने नहीं पूछा।”
“ठीक है। यदि तुम्हें अपना नाम स्मरण हो गया हो तो मुझे बता सकते हो।”
“उत्सव। यही नाम है मेरा।”
“सुंदर नाम है। कहो आगे क्या विचार है?”
“जब तक मेरे प्रश्नों के आपसे उत्तर नहीं पा लेता,मैं यहीं रहूँगा। आपको कोई आपत्ति तो नहीं?”
उत्तर में गुल के अधरों पर स्मित था।
“तुम्हारे प्रश्न और उनके उत्तर? वह भी मुझ से?” गुल हंस पड़ी, “कहो क्या प्रश्न है?”
“अनेक प्रश्न है। मैं जब यहाँ आया था तो एक ही प्रश्न था मेरे मन में। किन्तु आपको मिलकर कई नए प्रश्न खड़े हो गए हैं। मुझे सर्व प्रथम उन प्रश्नों के उत्तर पाने हैं।”
“यह तो बड़ी गंभीर बात है। एक तरफ तुम कहते हो कि तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर मेरे पास है और दूसरी तरफ कह रहे हो कि मुझसे मिलते ही नए प्रश्न खड़े हो गए। तो यह तो विरोधाभास है। दो ही संभावना है। मेरे पास उत्तर हैं अथवा मैं नए प्रश्नों को जन्म देती हूँ, दुविधा बढ़ा देती हूँ। दोनों में से कोई एक बात ही सत्य है। दोनों बातें सत्य नहीं हो सकती। तुम्हें क्या लगता है, कौन सी बात सत्य है?”
“ऐसा कोई निष्कर्ष निकालना मेरा लक्ष्य नहीं है।”
“तो लक्ष्य क्या है तुम्हारा, उत्सव?”
“मेरी तीन दुविधाएँ है। उनका समाधान ही मेरा लक्ष्य है।
“और तुम्हारा मानना है कि उन तीनों दुविधा का समाधान मेरे पास है।”
“हो सकता है, नहीं भी हो सकता है। किन्तु आप प्रयास कर सकती हैं।”
“यदि मैं इन प्रयासों में विफल रहूँ तो?”

“तो भी कुछ नहीं।”
“ऐसा क्यूँ?”
“क्यूँ कि मेरी तीन दुविधाओं में से एक का समाधान तो केवल आप ही के पास है। बाकी बची दो। उसमें से एक का समाधान नहीं भी मिले तो मुझे निराशा नहीं होगी। रही तीसरी दुविधा, जिसका समाधान मुझे कहीं से भी नहीं मिला। और बाबा कहते हैं कि पंडित गुल ही मेरी इस दुविधा को दूर कर सकती है।”
“तो तुम उस बाबा के वचनों पर पूर्ण विश्वास रखते हो?”
“अवश्य।”
“तो कहो क्या है तुम्हारे मन में?”
“प्रथम तो आप ही मेरी दुविधा हो। पंडित गुल! यह नाम ही मुझे विचलित कर रहा है।”
“वह कैसे?”
“एक तो आप स्त्री हैं तो आपका नाम पंडिता गुल होना चाहिए।”
“दूसरा कुछ?”
“है ना। गुल नाम तो हिन्दू नाम नहीं है।”
“मैं जन्म से मुस्लिम हूं।मेरा नाम गुलरेज है।” गुल ने बड़ी सहजता से कहा किन्तु उत्सव अचंभित रह गया।
“मुस्लिम होना, स्त्री होना तथा पंडित भी होना। क्या यह बात सहज हो सकती है?”
“सहज अथवा आश्चर्य आदि सब हमारे मन की धारणा पर निर्भर करता है। कोई बात जब हम सर्व प्रथम देखते हैं, अनुभव करते हैं अथवा स्वयं करते हैं तो वह हमें आश्चर्य से भरी लगती है। किन्तु एक बार ऐसा हो जाने पर वह सहज हो जाती है।”
“मेरा मन पंडित गुल को स्वीकार करने को तैयार ही नहीं था। यही कारण था कि मैं आपसे भागता रहा।”
“अब तो मैं तुम्हारे सामने हूं, किसी सत्य की भांति। अब तो स्वीकार लो।”
“नहीं, ऐसे स्वीकार नहीं कर सकता।”
“तो कैसे करोगे?”
“गुलरेझ से पंडित गुल तक की यात्रा के विषय में मुझे जिज्ञासा है। यही मेरा प्रथम प्रश्न है। क्या आप मुझे उस पूरी यात्रा सुना सकते हो?”
“उत्सव, तुम मेरी कथा में रुचि ले रहे हो अथवा मुझ में?”
“क्या इन दोनों को भिन्न भिन्न रूप से देखा जा सकता है, पंडित गुल?”
“तुम्हारे पास अकाट्य प्रमाण रखने की भी क्षमता है, उत्सव।” गुल के अधरों पर मधुर स्मित आ गया।
“तो क्या मैं उस यात्रा को सुनने के लिए तैयार हो जाऊँ?” उत्सव उत्साह से भरा था।
“यह यात्रा को तो मैं भी भूल गयी थी, उत्सव।” समुद्र में उठती लहरों में दूर कहीं गुल खो गई। उत्सव ने उसे नहीं रोका। समय की प्रतीक्षा करने लगा। समय व्यतीत होता रहा।
समुद्र के ऊपर आकाश संध्या के रंगों में डूब गया।

10

अरबी समुद्र रात्री के आलिंगन में आ गया। द्वारका नगर की घड़ी ने आठ बार शंखनाद किया। समुद्र तट की शांति में वह नाद स्पष्ट सुनाई दिया। उत्सव ने आज प्रथम बार उस शंखनाद को ध्यान से सुना। उसे उस नाद में कृष्ण के पांचजन्य का शंखनाद सुनाई दिया। उसे कुरुक्षेत्र याद आ गया।

'कैसा विराट स्वरूप होगा उस रणभूमि में कृष्ण का?' उत्सव ने मन ही मन कृष्ण के विराट स्वरूप की कल्पना की, उसे प्रणाम किया।

गुल ने उस ध्वनि को सुना। स्वयं को भूतकाल से वर्तमान में खींचा। उत्सव को देखा। वह हाथ जोड़े खड़ा था।

"उत्सव, तुम किसे प्रणाम कर रहे हो? यहाँ तो कोई नहीं है।"

"है, कोई तो है यहाँ। मुझे प्रतीत हो रहा है की कृष्ण स्वयं यहाँ है। आपने अभी शंखनाद की ध्वनि सुनी?"

"हां, सुनी। यह तो सदैव सुनती रहती हूं।"

"कुरुक्षेत्र में ऐसी ही शंख ध्वनि करते होंगे कृष्ण। मुझे प्रतीत हुआ कि कृष्ण अपने विराट स्वरूप में मेरे सामने खड़े हैं। मैं उसे ही प्रमाण कर रहा था।"

गुल हंस पड़ी, "उत्सव, तुम बड़े भाग्यशाली हो। दो दिवस में ही तुम्हें ऐसा अनुभव हो गया। इस नगरी में हजारों व्यक्ति हैं जो यहीं जन्म लेते हैं, यहीं उनकी मृत्यु हो जाती है। किन्तु कृष्ण के किसी भी रूप की उसे प्रतीति नहीं होती।"

"क्या आपको कभी कोई प्रतीति हुई?"

"अनेकों बार। कभी कभी तो कृष्ण मेरे आसपास ही घूमते रहते हैं। कभी कभी मैं उससे त्रस्त भी हो जाती हूं और कहती हूं कि तुम मुझसे दूर चले जाओ। कभी मेरे पास मत आना। किन्तु वह मेरी एक भी बात नहीं मानता। निर्लज्ज होकर लौट आता है मेरे पास।"

"किन किन रूपों में वह आ जाता है?"

"किसी भी रूप में आ जाता है।"

"तो इसमें क्रोधित होने की क्या बात है जो आप उसे कह देती हो कि मेरे पास कभी मत आना?"

गुल ने एक गहन सांस ली, मौन हो गई।

"कहो ना, गुल? आप अचानक ऐसे मौन हो जाती हो तो मुझे ...।" उत्सव ने बाकी के शब्द छोड़ दिये।

कुछ क्षण पश्चात गुल बोली,"हमारी परछाइयाँ हमारा पीछा कभी नहीं छोड़ती, लाख प्रयास कर लें।" गुल रुकी। उत्सव उसके मुख के भावों को देखता रहा।

"परछाइयाँ कभी नष्ट नहीं होती। कभी भस्म नहीं होती। नए नए रूप लेकर वह हमारे सामने आ जाती है, हमारे साथ साथ चलने लगती है। हम विवश होकर उसके अस्तित्व को स्वीकार कर लेते हैं।"

"तो आप भी परछाइयों से भय रखती हो?"

"मैं भी तो मनुष्य ही हूं।" गुल ने फिर गहरी सांस ली।

"क्यूँ डरते हैं हम इनसे?"

"क्यूँ कि वह हमें घायल कर देती है, छलनी कर देती है। छिन्न भिन्न कर देती है। हमारे भीतर को अशांत कर देती है।"

"किन्तु आप तो किसी ऋषि की भांति ज्ञानी हो। आप ...।"

"ऋषि? ज्ञानी?" गुल खूलकर हंस पड़ी। उसके हास्य की ध्वनि समुद्र की प्रत्येक लहरों के साथ पूरे समुद्र में व्याप्त हो गई।

"उत्सव, तुम भी तो हंस सकते हो।"

"मुझे स्मरण नहीं कि मैं कब हंसा था। कदाचित मुझे हँसना नहीं आता।"

"तुम स्वयं से भाग रहे हो उत्सव।"

"मैं हंस नहीं सकता।"

"क्यूँ कि तुम किसी अज्ञात बातों का भार लिए घूम रहे हो।"

“आपका तात्पर्य ....।”
“उतार दो उस भार को मन से।”
“आप ऐसा कैसे कर लेती हो?”
“जब जब मेरी परछाइयाँ मुझ पर प्रहार करती है, मैं खुलकर हंस लेती हूं।” वह पुन: हंसने लगी।
उसे देखते देखते उत्सव भी हंसने का प्रयास करने लगा, हंस पड़ा। हँसता रहा, हँसता रहा। दोनों हँसते रहे।
“तो तुम्हें हँसना भी आता है।” गुल ने कहा।
“आता तो था किन्तु किसी कारणवश भूल गया था। आपने मुझे स्मरण करा दिया।” उत्सव ने कहा।
“ठीक है। अब एक और बात।”
“वह क्या है?”
“उत्सव, तुम मुझे ‘आप’ कहकर सम्बोधन नहीं करोगे।”
“यह आदेश है आपका?” उत्सव के अधरों पर स्मित था।
“नहीं, आदेश देना भी अनुचित बात है।”
“अर्थात आपका तात्पर्य क्या है?”
“देखो उत्सव, हम सब एक ही ईश्वर की रचना हैं। सब एक समान। कोई भेद नहीं हैं हम मनुष्यों मेँ। किन्तु हम ही एक दूजे से अंतर बनाए रखतें हैं।”
“वह कैसे?”
“यदि तुम मुझे ‘आप’ कहते सम्बोधित करते हो तो हमारे बीच छोटे बड़े का भेद बन जाता है। यह अंतर नहीं तो क्या है?”
”क्या यह अंतर होना अनुचित है?”
“मेरा तो यही मानना है।”
“क्या यही सत्य है?”
“सत्य क्या है? कोई नहीं जानता। किन्तु इस समय हमारे लिए सत्य यही है कि हमारे बीच ऐसा कोई अंतर न हो जिससे छोटे बड़े का भेद बन जाय।”
“जैसा आप उचित समझो। अब से मैं आप को तुम से संबोधित करूंगा।” उत्सव ने कहा।
गुल ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। वह मौन हो गई। उत्सव समुद्र की तरफ देखने लगा। विचारता रहा।
घड़ी मेँ पुन: शंखनाद हुआ। उस नाद से उत्सव की विचार यात्रा रुक गई। उसने गुल को देखा। वह स्थिर सी समुद्र को निहार रही थी, कोई भिन्न जगत मेँ थी।
“गुल, तुम कुछ परछाइयों की बात कर रही थी? क्या संदर्भ था उन बातों का?” उत्सव ने पूछा।
“कुछ विशेष नहीं है।” गुल ने उत्तर दिया।
“तुम कृष्ण के रूप की प्रतीति के संदर्भ मेँ ऐसा कह रही थी। कहो ना, क्या तात्पर्य था उन बातों का?”
“हाँ, मैं कृष्ण के स्वरूपों को देखकर विचलित हो जाती हूँ।”
“किस रूप से विचलित हो जाती हो? क्या कारण है?”
“कृष्ण के सभी रूप मुझे विचलित कर देते हैं किन्तु एक विशेष रूप...।”
गुल मौन हो गई।
“कौन सा विशेष रूप है वह?”
“बांसुरी बजाता हुआ कृष्ण।”
“क्यूँ? तुम सभी यात्री को समुद्र की ध्वनि मेँ बांसुरी की ध्वनि का अनुभव करवाती हो तो यह रूप तो तुम्हारा सबसे प्रिय रूप होगा। है ना?“
“जो प्रिय होता है वही अधिक पीड़ादायक होता है।”
“कृष्ण की बंसी मेँ पीड़ा?”
“ हां, उत्सव।”
“वह कैसे? कृष्ण स्वयं ही आनंद स्वरूप है तथा उनकी बंसी की धुन में तो समग्र ब्रह्मांड आनंद की अनुभूति करता है। तो तुम उसमें पीड़ा का अनुभव कैसे कर सकती हो?”
“चलो छोडो इन बातों को।”
“क्या यह सब बातें तुम्हें कष्ट देती है।? तुम किसी पीड़ा के गहन सागर में डूब जाती हो?”
“कदाचित यही सत्य है।”

“यदि ऐसा ही है तो मैं इस बात को यहीं समाप्त कर देता हूं। मैं इसे अब कभी नहीं...।” उत्सव मौन हो गया। गुल भी। दोनों मौन होकर समुद्र की ध्वनि को सुनते रहे। रात्रि व्यतीत होती रही। समग्र नगर निंद्राग्रस्त हो गया। केवल दो व्यक्ति निंद्रा से अप्रभावित थे, समुद्र के तट पर मौन बेठे थे।

11

व्यतीत होते समय के साथ घड़ी में शंखनाद होता रहा ....
नौ, दस, ग्यारह, बारह.....
एक, दो, तीन, चार.....
चार शंखनाद की ध्वनि ने गुल को जागृत कर दिया। वह किसी समाधि से जागी, उठी। उसकी दृष्टि उत्सव पर पड़ी। वह भी वहीं बैठा था, रात्रि भर, निश्चल, स्थिर। वह भी जैसे किसी समाधि में था।
उत्सव की स्थिति में कोई भी व्यवधान डाले बिना ही गुल वहाँ से उठी, नित्य कर्म करने लगी, समुद्र में स्नान आदि कर्म कर लौट आइ।
उत्सव अभी भी वहीं था, किंतु निंद्राधिन था। जब वह जागा तब सूरज अपनी यात्रा के कई पड़ाव पार कर चुका था।
“गुल, कहाँ हो तुम?”
उत्सव के सामने स्मित के साथ गुल प्रकट हुई। वही भुवन मोहिनी स्मित को देखकर उत्सव के सभी शब्द, सभी भाव मौन हो गए। वह बस उस स्मित को देखता रहा, अनुभव करता रहा, कृष्ण के सन्मुख होने की प्रतीति करता रहा।
“तुम चाहो तो थोड़ा अधिक विश्राम कर सकते हो।”
“मन को यह विश्राम भाने लगा है। किंतु क्या मैं यहाँ विश्राम करने के हेतु से आया हूँ? मेरा प्रयोजन, मेरा लक्ष्य विश्राम तो नहीं है, पंडित जी।”
“कदापि नहीं। विश्राम कभी भी किसी का लक्ष्य नहीं हो सकता। तुम्हारा भी नहीं।”
“तो मैं बार बार क्यूँ इन सांसारिक प्रक्रियाओं में उलझ जाता हूँ?”
“उत्सव, तुम्हारा संकेत किस तरफ़ है?”
“यह भोजन लेना, निंद्रा करना, तृषित होना, यह, यह सब...।”
“यह कोई सांसारिक बातें नहीं है, अपितु यह तो जैविक क्रियाएँ है। तुम इन बातों से विचलित क्यूँ हो जाते हो?”
“यही सब बातें मुझे मेरे मार्ग से भटका देती है, मुझे मेरे विश्वास से विचलित कर देती है। क्या यह मोह है? माया है?”
“नहीं, यह भी एक गति ही है।”
“इस प्रकार रुक जाना, ठहर जाना, गति कैसे हो सकती है?”
“कभी कभी कुछ भी ना करना भी एक प्रकार से गति ही होती है।”
“वह कैस, गुल?”
“जब हम आवश्यकता से अधिक सक्रिय होते हैं, गतिमान होते हैं तब यही गति हमारे मार्ग कीबाधाएँ बन जाती है। यह हमें विध विध मार्ग के प्र ति आकृष्ट करती है, अनेक लक्ष्य का प्रलोभन देती है और हम निश्चय ही नहीं कर पाते की हमें क्या करना है? कौन से मार्ग को पसंद करना है? कौन से लक्ष्य को प्राप्त करना है?”
“यह अनुभव मुझे भी तो हुआ है। तो क्या हमें रुकजाना चाहिए?”
“अवश्य।”
“उससे क्या होगा? हम लक्ष्य से कहीं दूर नहीं हो जाएँगे क्या? हाथ से वह छूट नहीं जाएगा?”
“भटकाने से भी क्या होगा? वह भी तो हमें लक्ष्य से दूर ही कर देता है।”
“किंतु गति तो बनी रहती है, लक्ष्य प्राप्ति की अपेक्षा भी तो बनी रहती है ना?”
“वह गति नहीं है।”
“तो क्या है? तोक्या करना होगा हमें?”

“यदि गति उचित दिशा में हो तो ही उसे गति कहते है। विपरीत दिशा में चलने से तो गति नहीं बनती। ऐसे में कुछ समय तक हमें स्थिर हो जाना होगा। मन के भीतर चल रहे अनेक उत्पातों को शांत करना होगा, आवेगों का शमन करना होगा। समय के एक बिंदु पर सब कुछ छोड़ देना होगा। सब कुछ भूलना होगा। क्या तुम यह सब कर सकोगे?”
“यदि मेरे लक्ष्य के लिए यह उचित है तो मुझे यह स्वीकार्य है। किंतु उससे क्या होगा?”
“तब तुम शून्य से प्रारम्भ कर सकोगे।”
“किंतु अब तक जो मैंने किय उसका क्या?”
“उन सब को सामने दिख रहे समुद्र में बहा दो।”
“क्या? सब कुछ बहा दुं? क्यूँ?”
“क्या किया है तुमने अब तक? क्या प्राप्त किया है अब तक?”
“ऋषियों से, ज्ञानियों से ज्ञान प्राप्त किया है। जीवन के अनेक अनुभवों को पाया है। भूख, तृषा, बिंद्रा आदि से मुक्ति पाई है। संसार का त्याग करना सिखा है।”
“यह सब तो तुमने अवश्य ही पाया है, उत्सव। किंतु आवश्यकता से अधिक प्रत्येक बात बाधा बन जाती है। ज्ञान, अनुभव आदि प्राप्त करने में तुम ने कोई संयम रखा था क्या?”
“इसमें संयम कैसा? वह जितना अधिक मिले, उतना ही लाभप्रद होता है।”
“नहीं, यह अधिकता ही हानिप्रद होती है। तुम्हें इनको त्यागना होगा।”
“जो अधिक है उसका त्याग करने को मैं तैयार हूँ।”
“ठीक है, तो उसका त्याग करो। यह समुद्र तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।”
“मैं जाता हूँ समुद्र के पास। मैं अभी लौट आता हूँ, अधिकता का त्याग कर।”
“किंतु....।” गुल ने कुछ कहना चाहा किंतु उत्सव ने नहीं सुना, वह चल पड़ा समुद्र की तरफ़। गुल उसे जाते हुए देखती रही।
समय के एक अंतराल के पस्चात उत्सव लौट आया। गुल ने स्मित के साथ अभिवादन किया।
“बहा आए समुद्र में?”
“हाँ।” उत्सव ने मंद स्वर में कहा।
“कुछ खोने की पीड़ा तुम्हारे शब्दों से प्रकट हो रही है। क्या तुम्हे ...?”
“कुछ नहीं, मैं सब कुछ छोड़ कर आया हूँ। सब कुछ। कुछ भी नहीं बचा मेरे पास।”
“किंतु तुम तो ...।”
“मैं तो गया ही था मेरे पास जो अधिक था उसका त्याग करने, किंतु मैं सब कुछ त्याग आया।”
“ऐसा क्यूँ किया?”
“यहाँ से उठकर मैं समुद्र के पास गया, उसके तट पर बैठ गया। सोचने लगा कि मेरे पास क्या क्या अधिक है? एक एक कर सब सीखी हुई बातों को याद करने लगा। उसका विश्लेषण करने लगा। मैं स्वयं से पूछता गया कि क्या यह अधिक है? क्या यह त्यागने के योग्य है? क्या यह मेरे मार्ग की बाधा है? क्या यह मेरे लक्ष्य के लिए उपयुक्त है? यदि यह हो तो क्या होगा? यदि यह नहीं हो तो क्या होगा?”
बोलते बोलते उत्सव रुक गया।समुद्र की लहरों को दिखने लगा। लहरें तीव्र हो गई थी, जैसे उत्सव की बातें सुनने के लिए उत्सुक हो, उत्साहित हो। गुल ने भी समुद्र को देखा। उसे भी यह रूप अनूठा लगा। गुल भी तो उत्सुक थी, उत्साहित थी उत्सव की बात सुनने के लिए। गुल के मन की तरंगें तथा समुद्र की तरंगें एक समान हो गई।
“उत्सव, आगे कहो।”
“फिर एक एक करते हुए सभी बातें, सभी ज्ञान, सभी अनुभव मैंने समुद्र को समर्पित कर दिए। मेरे पास अब कुछ शेष नहीं है।”
“अर्थात् तुम रिक्त हो चुके हो!”
“मेरे भीतर कुछ भी शेष नहीं है, मैं पूर्ण रूप से रिक्त हो चुका हूँ। मेरा भीतर रिक्त हो गया।”
“उत्सव, यह एक विशिष्ट अवस्था है। भीतर से रिक्त होने के पस्चात क्या अनुभव कर रहे हो?”
“जैसे मन से तथा तन से कोई भार दूर हो गया हो। जैसे मैं कोई पंखी हूँ , मेरे दोनों तरफ़ पंख लगे हो तथा मैं मुक्त गगन में उड़ने को तैयार हूँ। असीम आकाश की सम्भावनाएँ मेरी प्रतीक्षा कर रही हो। मन करता है कि इस गगन को मैं मेरे पंख के भीतर भर लूँ, उड़ जाऊँ कहीं दूर दूर, और इस समुद्र को ऊपर से निहार लूँ। तट पर रहकर तो समुद्र को सदैव निहारते रहा हूँ, किंतु उसे ऊपर से निहारने का अनुभव करना चाहता हूँ।”

“तो तुम पंखी बनकर कहीं दूर उड़ना चाहते हो? तो उड़ा जाओ, किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो?”
“यह अवस्था मुझे गति दे रही है। यदि यही मेरी गति होगी, यही मेरी नियति होगी तो मैं शीघ्र ही उड़ जाऊँगा।”
उत्सव ने गुल के मुख के भावों को देखा। वह कुछ असाधारण से थे। उत्सव उसे पढ़ नहीं सका।
उत्सव से दृष्टि मिलते ही गुल जागृत हो गई, स्वयं के भावों को समेटा, साधारण होने की चेष्टा करने लगी। समुद्र की तरफ़ मूडी, आँखें बांध कर दी।
“उत्सव, तुम्हारी यह अवस्था विशिष्ट है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए ही ऋषि, मुनि, योगी आदि युगों से प्रयास करते आ रहे हैं। मुझे संज्ञान नहीं कि इस प्रयास में कौन कितना सफल रहा। तुम साधुवाद के पात्र हो कि तुमने उसे प्राप्त कर लिया है।”
“मेरे लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कदाचित यही उचित होगा।”
“उत्सव, समुद्र तथा उस पर स्थित असीम गगन तुम्हारे पंखों का आवाहन कर रहे है, तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहे है।”
“उचित समय की मुझे प्रतीक्षा है। किंतु मैं लौट कर यहीं वापस आऊँगा। मेरे प्रश्नों के समाधान मिलने से पहले मैं कहीं नहीं जाऊँगा।”
उत्सव के इन शब्दों ने गुल के मन के भावों को बदल दिया। उसे उत्सव से छुपाते हुए वह घर के भीतर चली गई। उत्सव उन भावों से अनभिज्ञ रहा।
उत्सव तट पर गया, अविरत उठती तरंगों के सम्मुख बैठ गया। वह पूर्णत: शांत था। उसके मन में कोई तरंग नहीं थे। व्यतीत होते समय से वह अलिप्त था। वह ना भूत काल में था ना भविष्य काल में, ना प्रश्नों में था ना उत्तरों में था। वह निर्भय था, मुक्त था।
वह केवल समुद्र के सम्मुख था, उठती तरंगों की ध्वनि को सुन रहा था। वह ध्वनि उसे परिचित लगी, मधुर लगी, कर्ण प्रिय लगी। किसी भी गति से मुक्त वह उस ध्वनि को सुनता रहा। वह प्रसन्न था।

12

प्रभात के प्रथम प्रहर का अवनी पर आगमन हो रहा था। रात्रि भर उत्सव समुद्र के तट पर ही रहा। उसे ज्ञात ही नहीं रहा कि वह रात्रि भर जागता रहा था। अनिमेष दृष्टि से वह समुद्र को देखता रहा था। समुद्र ने अपने रूप को बदल दिया था। समुद्र की तरंगें जो कहीं दूर थी वह अब उत्सव के समीप आ चुकी थी। तरंगों से उठता पानी उत्सव को स्पर्श करता था, किंतु उससे वह विचलित नहीं था। रात्रि भर द्वारका में प्रति घंटे हो रहे शंखनाद से भी वह विचलित नहीं था। वह बस स्थिर सा था। जैसे कोई प्रतिमा हो। एक ऐसी प्रतिमा जो प्राणों से भरी थी, चेतना से भरी थी। किंतु यह प्राण तथा यह चेतना भी स्थिर थे।
उत्सव के सम्मुख एक आकृति आकर खड़ी हो गई। रात्रि के प्रथम प्रहर के इस अंधकार में वह छाया अस्पष्ट सी थी। वह उसे देख तो रहा था किंतु उसकी को चेष्टा नहीं थी उस आकृति के प्रति। उस छाया से भी वह विचलित नहीं हुआ। वह स्थिर ही रहा। उस छाया गतिमान हो कर उत्सव के समीप आ गई।
“उत्सव।” छाया ने उत्सव के कंधों पर हाथ रखते हुए कहा। उत्सव ने कोई प्रतिभाव नहीं दिया। वह स्थिर था, अनिमेष समुद्र को निहारता रहा।
“उत्सव, उत्सव।” उत्सव की स्थिरता से छाया विचलित हो कर बोली।
उत्सव अभी भी विचलित नहीं हुआ। छाया ने उसके कंधों को हिलाया।
“गुल, तुम किस बात पर विचलित हो? क्यों तुम आज इतनी अधीर हो?” उत्सव ने निरपेक्ष भाव से पूछा।
“तो तुम्हें ज्ञात था कि प्रभात के इस प्रहार में मैं यहां...।”
“किंतु मुझे यह ज्ञात नहीं कि तुम विचलित क्यों हो? मैं तो तुम्हें धैर्य की प्रतिमा मान रहा था।”
“वह मिथ्या है। मैं भी धैर्य खो सकती हूँ।”
“इस समय तुम किस प्रयोजन से यहाँ आइ हो?”
“यह समय मेरे प्रातः स्नान का है।”
“तो?”
“मैं इसी समुद्र में प्रतिदिन स्नान करती हूँ।”
“समुद्र में?”
“हां, इसी समुद्र में।”
“तो तुमने स्नान सम्पन्न कर लिया?”
“नहीं।”
“तो जा कर स्नान कर लो।”
“नहीं, मैं अभी स्नान नहीं करूँगी।”
“तो कुछ समय पश्चात कर लेना। तब तक तुम भी इस समुद्र के सान्निध्य में बैठ सकती हो।”
“उत्सव, तुम कारण नहीं पूछोगे मेरे स्नान नहीं करने का?”
“क्या ऐसा प्रश्न पूछना आवश्यक है? क्या वह आसक्ति नहीं होगी?”
“तुम निरपेक्ष हो गए हो अथवा मेरी उपेक्षा कर रहे हो? कहीं तुम मेरा उपहास तो नहीं कर रहे हो?”
“जो व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से रिक्त हो गया हो वह किसी की उपेक्षा भी नहीं कर सकता और ना ही उपहास।”
“ऐसा रिक्त होना...।”
“गुल, यह मार्ग तुमने ही दिखाया था मुझे।”
उत्सव के इन शब्दों का कोई उत्तर नहीं था गुल के पास। वह मौन हो गई। मन ही मन विचार करती रही। अनेकों विचार

प्रवाहित होते गए। उन विचारों में कोई एकरूपता न थी। कोई लक्ष्य नहीं था। कोई स्थिरता नहीं थी। अपने ही विचारों से व्याकुल हो गई गुल।
“उत्सव, मैं यहां तुमसे लड़ाई करने आइ थी और तुम हो कि मौन हो। कुछ तो बोलो।”
“गुल, जा कर अपने नित्य क्रमानुसार स्नान कर लो। सुना है कि स्नान करने से मन की उद्विग्नता शांत हो जाती है।”
“किंतु मैं आज स्नान नहीं करूँगी।”
“क्या मेरी उपस्थिति तुम्हें…।”
“नहीं, ऐसा नहीं है।”
“तो जाओ तुम अपना क्रम पूर्ण करो।”
उत्सव पुन: समुद्र को देखने लगा। विवश होकर गुल समुद्र में स्नान करने चली गई। उसने मुड़कर उत्सव को देखा। वह निर्लेप भाव से समुद्र को निहार रहा था। गुल के प्रति उसका ध्यान नहीं था।
‘ऐसे केसे वह अलिप्त रह सकता है? क्या वह भीतर से इतना रिक्त हो गया है कि वह मेरे होने की भी उपेक्षा कर सके? यह कौन सी अवस्था है?’
‘वह जो भी अवस्था हो, गुल तुम उस अवस्था को भंग कर सकती हो।’
‘मैं? वह कैसे?’
‘समुद्र है, एकांत है, यौवन भी है, सौंदर्य भी है, स्नान भी है। क्या यह पर्याप्त नहीं है किसी युवक को पथभ्रष्ट करने के लिए?’ एक अट्टहास्य करती हुई गुल की प्रतिछाया समुद्र की उठती तरंगों के साथ विलीन हो गई।
गुल पानी के भीतर चली गई। मनोमन संघर्ष करती रही।
‘क्या मुझे उस मार्ग पर चलना चाहिए जो मार्ग मेरी प्रतिच्छाया ने मुझे दिखाया है?’
गुल कोई निर्णय ना कर सकी। अनेक क्षणों तक वह स्थिर सी खड़ी रही। समुद्र की तरंगें उसके तन को स्पर्श करती रही, उसे भिगोती रही किंतु मन से वह कोरी ही रही। अनिर्णय की अवस्था में उसने उत्सव को देखा। वह अभी भी उसी स्थिरता से समुद्र को निहार रहा था।
‘मुझे इस ऋषि का तपोभंग करना ही होगा।’
गुल के भीतर की स्त्री सजग हो गई, मनोभाव जाग गए। वह समुद्र के भीतर चलने लगी, उत्सव की दृष्टि जिस दिशा में थी वह ठीक उस के सम्मुख आ गई।
‘अब मैं देखती हूँ कि वह मेरी तथा मेरे यौवन की उपेक्षा कैसे करता है?’
‘गुल, क्या उत्सव को पथ भ्रष्ट करना तुम्हारा प्रयोजन है?’ गुल ने स्वयं को प्रश्न किया। इस प्रश्न ने उसे व्याकुल कर दिया।
‘यह मार्ग मेरा नहीं है। मैं कोई इंद्र की मेनका, रम्भा नहीं हूँ। मैं गुल हूँ, पंडित गुल। ज्ञान, त्याग, संयम, नियम आदि का पालन करने वाली पंडित गुल। शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया है मैंने। उस ज्ञान को समजा है, उस ज्ञान को जिया है मैंने। मैं सत्य के मार्ग पर ही चलूँगी। एक ऐसा मार्ग जो मैंने स्वयं ही निर्धारित किया है। मैं अपने मार्ग को नहीं छोड़ सकती। कदापि नहीं।’
दृढ़ निश्चय की मुद्रा में गुल ने हाथों की मुट्ठियों को बंध कर लिया।
“मेरे ईश्वर, मेरे इस मिथ्या विचार करने के पाप पर मुझे क्षमा करना।” गुल ने गगन की तरफ़ दो हाथ जोड़े, समुद्र के जल से हथेलियों में अंजलि भर पानी लिया और उसे समग्र तन पर लगा दिया। वह लौट आयी। आत्ममंथन करने लगी।
‘मेरे भीतर यह भाव कैसे जागे? यह विकार कहाँ से आया? क्या मैं उत्सव को पाना चाहती हूँ? क्या मैं स्वयम अपने पथ से भ्रष्ट हो रही हूँ? मुझे इस स्थिति को सम्भालना होगा, स्वयं को सम्भालना होगा।’

13

गुल द्वारिकाधीश के मंदिर को देखकर मन ही मन ईश्वर से क्षमा माँगने लगी। अनेक मंत्रों का उच्चार करने लगी। समय व्यतीत होता गया। सूर्योदय होने लगा।
“गुल, तुम कब से इस प्रकार खड़ी हो। क्या तुम्हें आपने नित्यक्रम को नहीं करना है? कुछ ही समय में प्रवासी आने लगेंगे। तुम्हें उसे भी तो...।” उत्सव के शब्दों ने गुल का ध्यान भंग कर दिया। वह उत्सव की तरफ़ मूडी।
“गुल, यह सब क्या है? तुम किसी दुविधा में हो?”
“उत्सव, आज प्रवासियों को तुम ....।”
“मैं? मैं क्या बताऊँगा प्रवासियों को? मैं तो स्वयं ही एक प्रवासी ही हूँ।”
“ठीक है, तुम रहने दो।” गुल कक्ष के भीतर चली गई। उत्सव गुल की दुविधा को समझने की विफल चेष्टा करता रहा। गुल ने नित्यकर्म किए, प्रवासियों का मर्गदर्शन किया, भोजन बनाया, महादेवजी की आरती की तथा प्रसाद लगाया। घर लौट आयी। इन समग्र क्रियायें होती गई किंतु गुल ऊनमे से किसी भी में नहीं थी। यंत्रवत होती रही यह सब क्रियायें।
उत्सव पुन: समुद्र के तट पर चला गया। समुद्र को देखता रहा। भोजन आया तो भोजन कर लिया।
“समुद्र में ऐसा क्या है कि तुम रात्रि भर उसे निहारते रहे।”
“समुद्र में क्या नहीं है?”
“मुझे ज्ञात है कि समुद्र अपने भीतर समग्र संसार को समाकर रखता है। किंतु तुम्हें किस बात ने आकर्षित किया है, उत्सव?”
“रात्रि की बात तथा अभी की बात दोनों भिन्न है।”
“वह कैसे? समुद्र एक ही है, तट भी एक ही है। तो तुम्हें क्या भिन्नता दिखाई दी?”
“भिन्नता कभी किसी वस्तु में नहीं होती।”
“तो क्या भिन्नता समय के भिन्न भिन्न टुकड़ों के करण होती है?”
“समय भी तो निरपेक्ष होता है।”
“तो भिन्नता कहाँ है? कैसे है?”
“भिन्नता हमारे भीतर होती है। प्रत्येक वस्तु तथा समय का प्रत्येक क्षण अपने स्थान पर स्थिर रहता है। निर्लेप रहता है, निरपेक्ष रहता है। पूर्ण रूप से तटस्थ रहता है। वह मनुष्यों के मन की भाँति किसी विचार अथवा विकार से ग्रस्त नहीं होते।”

“तो क्या मनुष्यों के विचार एवं वर्तन उसे प्रभावित करते हैं?”
“यह सत्य भी है, मिथ्या भी है।”
“यह कैसे सम्भव होगा? कोई एक बात सत्य हो सकती है अथवा मिथ्या हो सकती है? दोनों कैसे हो सकती है?”
“प्रकृति तथा उनके तत्वों के विषय में यही तो रोचक तथ्य है।”
“यह तुम मुझे विस्तार से समझाओ।”
“आज नहीं, फिर कभी। आज तो मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे दूँ।”
“तो बताओ कि रात्रि भर समुद्र को ...।” गुल अधीर थी।
उत्सव उठा, घर के समीप अनंतकाल से स्थिर खड़ी शिला पर बैठ गया। गुल भी उसके पीछे शिला के समीप आकर खड़ी हो गई।
उत्सव समुद्र को निहारने लगा, गुल भी। दोनों मौन थे। पवन जो मंद मंद बह रहा था वह भी स्थिर हो गया। केवल समुद्र की तरंगें अस्थिर थी, ध्वनि का सर्जन कर रही थी। दोनों उसे देखते रहे , सुनते रहे।
क्षणों की एक नदी बह गई। मौन से व्याकुल गुल ने कहा, “उत्सव, इस प्रकार कब तक बैठना होगा? कब मेरे प्रश्नों का उत्तर दोगे?”
उत्सव किसी समाधि से जगा, “यही तो उत्तर था।”
“उत्सव, तुम्हारे मौन की भाषा मेरी समज से परे है। ऐसे उत्तर का क्या करूँ?”
“जिस समय हम किसी के मौन की भाषा समझने लगेंगे उस समय हमें शब्दों की आवश्यकता नहीं रहेगी, तब ना कोई प्रश्न होगा ना कोई उत्तर।”
“वह अवस्था जब प्राप्त कर लेंगे तब की बात तब। अभी मुझे शब्दों से ही उत्तर दो।”
“ठीक है।” उत्सव शिला से उठा, “तुम इस शिला पर बैठ जाओ।”
गुल बैठ गई। उत्सव के प्रति प्रश्नार्थ भाव से देखने लगी।
“यहाँ समुद्र है, तट है, रेत है, दूर शिव का मंदिर है, समुद्र के भीतर दूर सुदूर नौकाएँ है, अन्य वस्तुयें भी है। तुम किसे देखना चाहोगी?”
गुल ने समग्र तट पर दृष्टि डाली।
‘किसे देखूँ? प्रत्येक वस्तु मुझे आकर्षित कर रही है। समुद्र, तरंगे, तट, मंदिर..... सब कुछ।’
“मुझे तो सब कुछ देखना है।” गुल के मुख पर स्मित था, वही परिचित स्मित।
“यदि प्रश्न एक को ही चुनने का हो तो किसे पसंद करोगी?”
गुल कुछ समय विचार में रही, निश्चय कर बोली, “मैं मंदिर की धजा को देखना चाहूँगी।”
गुल धजा को देखने लगी। ।
“गुल, उस धजा को देख रही हो?”
“हां।”
“वह धजा कैसी है?”
“भगवान शिव के मंदिर की धजा श्वेत है, छोटी है। समुद्र से लगभग अस्सी फ़ीट ऊपर। मंद मंद पवन से तरंगित है। उन तरंगों में एक लय है।”
“धजा के उपरांत क्या दिख रहा है?”
“धजा का दंड, धजा के आसपास उड़ते पंखी। पीछे खुला, स्वच्छ गगन। दो तीन पंखी धजा के दंड पर बैठे हुए हैं। धजा के श्वेत रंग के भीतर लाल रंग से अंकित सूर्य का प्रतीक है।” गुल रुक गई, उत्सव को देखने लगी। गुल की दृष्टि में गर्व था, प्रश्न भी। उत्सव उससे प्रभावित नहीं हुआ।
“मैंने उचित दृष्टि से सब कुछ देखा ना, उत्सव?”
उत्सव हंस पड़ा, “नहीं।”
इस नहीं को सुनकर गुल का गर्व टूट गया, “नहीं?”
“हां नहीं। तुमने जो देखना था वह नहीं देखा।”
“सब कुछ तो देखा, अब क्या छूट गया?”
“कुछ भी तो नहीं छूट गया।”
“तो? स्पष्ट कहो जो कहना हो।”
“चलो, पुन: धजा को देखो। उन सभी को भी को भी देखो जो धजा के साथ दृष्टि गोचर हो रहा है।”

गुल ने धजा के साथ अन्य वस्तुओं को भी देखा।
“तुम जो जो देखो उसका नाम बोलते जाओ, एक एक कर।”
“ठीक है। सर्व प्रथम धजा के पीछे मुक्त गगन। कुछ क्षण पहले वह निरभ्र था।”
“अभी वह कैसा है?”
“थोड़े से बादल है जो श्वेत है।”
“उस बादल को देखना छोड दो। केवल गगन को देखो।”
“ठीक है।”
“अब गगन को छोड़ दो।” उत्सव कहता रहा, गुल उसकी सूचना को मानती रही।
“अब उन पंखियों को देखो जो उड़ रहे हैं। उसे दृष्टि से दूर करो। अब दंड पर बैठे पंखियों को भूल जाओ। अब धजा में उठते तरंगों को भूल जाओ। पवन को भूल जाओ, सूर्य को भूल जाओ।अब जो दिख रहा है वह क्या है?”
“धजा, केवल धजा।”
“उसे निहारते रहो। अनिमेष निहारो।”
गुल ने वही किया। कुछ क्षण तो वह उसे निहारती रही, केवल निहारती रही। अन्य कोई उपक्रम नहीं किया। किंतु धीरे धीरे मन विकेंद्रित होने लगा। मन में अनेक विचार आने लगे। दृष्टि तो धजा पर थी किंतु मन कहीं अन्यत्र था।
“गुल, तुम अपने केंद्र से विचलित हो गई हो।”
“मुझे भी यही प्रतीत होता है।”
“किंतु तुम्हें अपना ध्यान धजा से हटाना नहीं है। सम्भव हो तो विचारों को छोड़ो।” उत्सव ने कहा।
गुल प्रयास करती रही, विफल होती रही।
“अनेक प्रयासों के उपरांत भी मैं अपने विचारों को रोक नहीं सकती, छोड़ नहीं सकती। मेरी दृष्टि तो धजा पर होती है किंतु ध्यान नहीं।” गुल ने धजा से हटाकर उत्सव पर दृष्टि डाली।
उत्सव उसी धजा को देख रहा था। उसके मुख पर कोई भाव नहीं थे। वह स्थिर था।
ऐसे ही कुछ समय व्यतीत हो गया। गुल देखती रही धजा, गगन, पवन, मंदिर, पंखी, समुद्र, कन्दरा तथा उत्सव को। वह अभी भी स्थिर था। जैसे वह किसी समाधि में हो।
गुल धैर्य खो बैठी, चंचल हो गई। इधर उधर चलने लगी। वह कुछ करना चाहती थी किंतु उसे ज्ञात नहीं था कि वह क्या चाहती है? वह घूमती रही। अनिर्णायकता में उसने एक पथ्थर उठाया और पूर्ण शक्ति से समुद्र के स्थिर शांत जल में फेंक दिया। जल में कुछ वलय उत्पन्न हुए, व्याप्त हुए और शांत हो गए।
गुल की इन सभी क्रियाओं का उत्सव पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। वह अभी भी समाधिस्थ था।
अंतत: गुल ने उत्सव की समाधि को भंग किया।
“उत्सव तुम कहाँ हो? ऐसे देखते देखते कहीं किसी अन्य विश्व में तो नहीं चले गए? यह सब क्या है?”
उत्सव ने स्मित दिया, “गुल, किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति को देखने की भी एक कला होती है। किसी को भी तुम जब देखो तब केवल देखो। कुछ ना सोचो। किसी भी विषय पर विचार मत करो। उस व्यक्ति अथवा वस्तु का भी विचार ना करो जिसे तुम देख रही हो। केवल देखना है।”
“किंतु यह कैसे सम्भव होता है? मुझसे तो नहीं बन सका।” गुल के मुख पर प्रश्न तथा विस्मय के मिश्रित भाव थे।
“आप के कारण ही तो यह सम्भव हो सका, गुरु हैं आप मेरे।” उत्सव ने गुल को हाथ जोड़ वंदन किया।
“मैं? तुम मेरा उपहास तो नहीं कर रहे? तुम्हारे इन शब्दों में मुझे व्यंग का अनुभव हो रहा है।”
“नहीं गुरु जी, इसमें कोई व्यंग नहीं है। यह नितांत सत्य है।”
“हे शिष्य, क्या आप एक अनुग्रह करेंगे? मेरे ही दिए हुए ज्ञान से मेरा परिचय करवाएँगे?”
गुल ने भी उत्सव को हाथ जोड़ दिए। उत्सव हंस पड़ा, गुल चाहते हुए भी ना हंस सकी।
“गुल, तुमने कल ही तो मुझे एक मार्ग दिखाया था। तुमने ही कहा था ना कि मुझे अब तक सीखी समझी सभी बातों को, सभी ज्ञान को त्यागना होगा। भीतर से मुझे रिक्त होना होगा। तभी मैं मेरे उद्देश्य को प्राप्त कर सकूँगा। मैंने वही किया। सब कुछ त्याग दिया। भीतर से पूर्णत: रिक्त हो गया। जो भीतर से रिक्त होता है उसे कोई भी विचार, केंद्र बिंदु से भटका नहीं सकता। तुम भी यह कर सकती हो। क्या तुम भीतर से रिक्त हो?”
“अर्थात् मेरे भीतर भी बहोत कुछ पड़ा है जिसे मुझे त्यागना होगा? मुझे भी रिक्त होना होगा? कदाचित मैं भी भीतर से रिक्त नहीं हूँ।”
“तो हो जाओ रिक्त। किसकी है प्रतीक्षा तुम्हें?”

“प्रतीक्षा तो तब करती जब मुझे ज्ञात होता कि मैं रिक्त नहीं हूँ। किंतु अब तक मुझे यह ज्ञात ही नहीं था कि मेरे भीतर इतना कुछ भरा है जो व्यर्थ है। मुझे उस बात का संज्ञान अभी अभी तो हुआ है। मैं भी रिक्त हो जाऊँगी, इसी क्षण।”
“यही उचित होगा। आप अपने मार्ग पर चलें, मैं तुमसे पृथक हो जाता हूँ।”
“नहीं उत्सव, तुम यहाँ रहो। मेरे समीप रहो। रिक्त होने में मेरी सहायता करो।” गुल के शब्दों में अनुनय था। किसी शिष्य सी याचना थी। उत्सव ने स्मित दिया, तट की रेत पर बैठ गया। समुद्र को निहारने लगा।
गुल ने स्वयं को संकोरा और भीतर देखने का प्रयास करने लगी।
‘कितना कुछ भरा है मेरे भीतर! यह सब कब और कैसे मेरे सम्मुख आ गया, कब मैंने इसे स्वीकार कर लिया? कब उसने मेरे भीतर स्थान ग्रहण कर लिया? मैंने तो कभी इसे ग्रहण करने का प्रयास नहीं किया था।’
‘ऐसी बातों को ग्रहण करने के लिए प्रयास कोई नहीं करता। मनुष्य का मन उसे ज्ञात अज्ञात मन से पकड़ लेता है, वह भीतर जाकर बैठ जाता है। चुप चाप, कुछ नहीं बोलता, कुछ नहीं कहता। युगों तक मौन धारण किए भीतर ही रहता है। हम अपने ज्ञात मन से उसके अस्तित्व को विस्मृत कर देते है। किंतु वह हमारे भीतर से जाता नहीं।’
‘वह तो जब हम व्यतीत समय की एक एक परत को खोलने का प्रयास करते हैं तब ध्यान आता है कि कितनी सारी अनावश्यक बातों को, विचारों को हमने संग्रहित करके रखा है। मुझे उन सब से मुक्ति पानी होगी।’
गुल निश्चय कर चुकी। भीतर से एक एक कर सभी व्यर्थ बातों को ख़ाली करने लगी। अधिकांश बातें ख़ाली हो गई। उसे वजन हीनता का अनुभव होने लगा। वह प्रसन्न होती हुई उत्सव के समीप गई।
“मैं भीतर से अधिकांश रिक्त हो गई हूँ। मुझे आनंद का अनुभव हो रहा है। मन करता है मैं गाऊँ, मैं नाचूँ।”
गुल तट पर दौड़ गई। दूर जाकर गीत गाने लगी। गाते गाते नाचने लगी। समग्र वातावरण उसके साथ गीत गाने लगा, उसके साथ नृत्य करने लगा।
पवन, समुद्र, रेत, दिशा, समय का क्षण। सब नृत्य कर रहे थे। समुद्र की तरंगे तथा गुल के नृत्य कर रहे पग एक ताल तथा लय में तरंगित थे। समग्र स्थिति संगीतमय थी, नृत्यमय थी। आनंद ही आनंद व्याप्त था सभी दिशाओं में। गुल उसमें डूब गई थी, उत्सव स्थितप्रज्ञ सा था।

14

गुल भीतर से रिक्त हुई थी उस घटना को अनेक दिवस व्यतीत हो गए। प्रत्येक दिवस वह किसी ना किसी पर ध्यान केंद्रित करती, उसे निहारती उससे आनंद प्राप्त करती। कुछ दिवस तो प्रसन्नता में व्यतीत हुए किंतु धीरे धीरे गुल उस प्रसन्नता को खोने लगी। जैसे वह कुछ समय का साथ देकर छूट जाने वाला छल हो। पुन: वह किसी भी बात पर ध्यान केंद्रित करने का प्रयास करती, कुछ क्षणों के लिए उसे सफलता मिलती किंतु शीघ्र ही उसका मन भटक जाता। वह प्रसन्नता कोई ना कोई छलना करती हुई उसके हाथों से सरक जाती। वह खिन्नता ग्रस्त हो जाती।
गुल की इस स्थिति से उत्सव अनभिज्ञ नहीं था। अनेक बार उसे मन हुआ कि गुल से पूछ लुं, इस विषय में उससे बात कर लुं। किंतु उत्सव स्वयं को रोक लेता।
एक संध्या को सूरज पश्चिम की तरफ़ अधिक यात्रा कर चुका था। समुद्र के स्तर से कुछ ही दूरी पर था। इतना अंतर तय करते ही वह समुद्र के भीतर समा जाने वाला था। उत्सव तथा गुल दोनों उसे निहार रहे थे। एक प्रसन्न था तो एक अस्थिर मन में विषाद लिए थी। वह उसे धारण नहीं कर सकी, उठ कर चली गई।
उत्सव ने स्वयं से कहा - 'आज विषाद अपने चरम पर आ गया है। गुल की तितिक्षा से पार जा चुका है। क्या अब भी मुझे मौन रहना चाहिए?'
उत्सव ने डूबते सूरज को देखा। मन ही मन निश्चय किया, डूबते सूरज को छोड़कर वह उठा। घर की तरफ़ भाग।
'यह सूरज भले ही डूब जाए किंतु गुल के सूरज को डूबने से मुझे बचाना होगा। यह सूरज तो डूबकर कल पुन: निकलेगा किंतु यदि गुल का सूरज एक आर डूब गया तो ...।'
उत्सव आगे सोच ना सका।
"गुल, सुनो। रुको। मैं भी तुम्हारे साथ आ रहा हूँ।" उत्सव दौड़कर गुल के साथ हो गया। दोनों घर के द्वार पर आ गए। गुल भीतर दौड़ गई। भीतर से कुछ ध्वनि आने लगी जो कोई शुभ संकेत नहीं दे रही थी।
उत्सव बाहर रहकर प्रतीक्षा करने लगा। संध्या आरती का समय हुआ तो गुल घर से निकाली। महादेव के मंदिर की तरफ़ जाने लगी। उत्सव वहीं रह गया।
मंदिर से घंटनाद की ध्वनि आने लगी। आरती सम्पन्न हो गई। उत्सव गुल के आने की प्रतीक्षा करने लगा। अधिक समय व्यतीत होने पर भी गुल नहीं लौटी। उत्सव चिंतित हो गया।
'इतना समय तो नहीं लगता कभी गुल को। आज विलम्ब कैसे हो गया? कुछ तो बात है। मुझे जाकर देखना चाहिए।'
उत्सव मंदिर की तरफ़ गया। गुल एक कंदरा के कोने पर बैठी थी। समुद्र को निहार रही थी। सूरज कब का डूब चुका था। समुद्र पर धीरे धीरे अंधकार व्याप्त हो रहा था। दूर कोई नौका तट की तरफ़ गति कर रही थी। पंखियों की टोली समुद्र के जल से थोड़े ऊपर उड़ रही थी। तरंगें आपने यौवन पर थीं। मद्धम सी पवन समुद्र से धरती की तरफ़ बह रही थी जो गुल के केश को उड़ा रही थी। केश गुल के गालों पर तथा मुख पर उड़ रहे थे। कुछ केश नयनों को ढँक रहे थे। गुल इन सभी बातों से अनभिज्ञ थी। उत्सव ठीक उसकी पीठ के पीछे आ चुका था उस बात से भी वह अनभिज्ञ थी।
"गुल, क्या है यह सब? कोई ऐसा करता है क्या? क्यूँ कर रही हो तुम ऐसा?"
गुल ने उत्सव को अपरिचित दृष्टि से देखा।
"गुल, तंद्रा से जागो।" उत्सव के शब्दों में चिंता थी।
"इस प्रकार मौन रहने से, स्वयं से दूर भागने से तो बात कैसे बनेगी?" उत्सव की बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा गुल पर।
"गुल, गुल।" गुल ने मुख के भावों से प्रतिभाव दिया।
"ईश्वर ने हमें वाचा दी है, शब्द दिए हैं। क्यूँ?"
"क्यूँ?" गुल ने पूछा।
"इस लिए की मनुष्य अपने मन की बात किसी को कह सके। कहो, क्या बात है?"
गुल ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।
"रात गहन हो रही है, इस कन्दरा में अनेक समुद्र जीव रहते हैं जो विष से भरे होते हैं।"
"हां उत्सव, इस कन्दरा में विष है, उस जीव में भी विष था। किंतु वह समय प्रभात का था, रात्रि का नहीं।"
"प्रभात में तो सब कुछ स्पष्ट दिखता है, तुम उससे बच सकती थी।"
"किंतु नहीं बच सकी।"

"क्यूँ?"
"क्यूँ कि उस जीव में विष था उसका संज्ञान तब नहीं था।"
"तुम किस जीव की बात कर रही हो, गुल?"
"उसे मैंने सर्व प्र थम यहीं देखा था, इ सी कन्दरा पर। प्रभात का समय था, वह यहाँ था।" गुल ने एक स्थान पर संकेत किया। उत्सव ने उस स्थान को देखा।
"कौन था वह जीव? यहाँ क्याकर रहा था? तु म कहाँ थी? क्या उसने तुम्हें दंश दिया? क्या तुमने तब कोई उपचार किया? कब की बात है यह? सब कुछ स्पष्ट बताओ।"
गुल उठी और समुद्र के निकट गई। कुछ तरंगें गुल को भिगो गई।
"केशव।" गुल ने गहन निःश्वास से कहा।
"केशव? अर्थात् कृष्ण। तुम कृष्ण से रूठी हो। गुल, मुड़ो। कृष्ण के मंदिर को देखो। यदि तुम्हें कृष्ण से कोई समस्या हो तो कृष्ण को कहो। इस कन्दरा, इस समुद्र, इस तट पर आकर रूठकर बैठने से तो बात नहीं बनेगी। और एक बात। तुम रुक्मिणी तोहो नहींकि तुम रूठ जाओऔर तुम्हें मनाने के लिए कृष्ण स्वयं यहाँ आ जाए।"
"मैं कृष्ण की बात नहीं कर रही। हां, मेरी इस अवस्था के लिए कुछ सीमा तक वह भी उत्तरदायी तो है ही। किंतु मैं केशव की बात कर रही हूँ, कृष्ण की नहीं।"
"कृष्ण एवं केशव , मुझे तोभिन्न नहीं लग रहे। दोनों एक ही तो है। रूप भिन्न हो सकते हैं, व्यक्ति नहीं। चलो छोडो इन बातों को। घर चलें।"
उत्सव घर की तरफ़ चलने लगा, गुल वहीं रुकी रही। उत्सव मुड़ा, "अब घर चलो।" गुल ने कोई प्रतिभाव नहीं दिए।
"अब क्या हाथ पकड़कर घर को ले चलूँ?"
गुल ने स्मित दिया, "इतना साहस हो तो यह भी कर दिखाओ।"
उत्सव ने बड़ी सौम्यता से गुल काहाथ पकड़ा, जैसे कोई पुजारी अपने आराध्या को स्पर्श करता है। वह चलने लगा। गुल भी चलने लगी।
'इस स्पर्श में भी वही अनुभव है जो उसके स्पर्श में था। क्या वही स्पर्श नए रूप में मेरे जीवन में आया है? यह कैसी नियति है ईश्वर? तुम ही मुझे मार्ग बताओ। इस प्रवाह में मैं स्वयं ही बहती जाऊँ अथवा स्वयं को रोक लूँ?'
उत्सव निःस्पृह भाव से गुल का हाथ पकड़े घर के प्रति गति कर रहा था। दोनों घर आ गए।
"गुल, तुम यहाँ बैठो। आज भोजन का प्रबंध मैं करता हूँ।"
गुल तथा उत्सव ने भोजन किया। रात्रि गति करने लगी।
"गुल, तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है।" गुल कक्ष के भीतर चली गई। उत्सव शिला पर आसन लगाकर बैठ गया, समुद्र का अनुभव करता रहा।

15

रात्रि भर गुल निद्रा से दूर रही। वह चिंतन करती रही किंतु चिंता से मुक्त नहीं हो सकी।
दूर चार बार शंखनाद हुआ। तारा स्नान का समय हो गया था। गुल उठी, कक्ष से बाहर आइ और स्नान के लिए समुद्र की तरफ़ जाने लगी।
“उत्सव, तुम्हें निंद्रा नहीं आइ?”
उत्सव ने गुल के मुख को देखा, थकी आँखों को देखा।
“गुल, मुझे तो रात्रि भर जागने का अभ्यास है। किंतु तुम क्यूँ नहीं सो पाई? कोई चिंता से ग्रस्त हो क्या?”
गुल ने मिथ्या स्मित करने का प्रयास किया, विफल रही।
“मिथ्या प्रयासों से सत्य को छुपाना भी नहीं आता तुम्हें।”
“मेरे तारा स्नान का समय हो गया है। तत पश्चात अनेकों काम होते हैं मुझे करने के लिए। क्या हम इन बातों पर अभी चर्चा ना करें तो?”
“मुझे तुम्हारी व्यस्तता का संज्ञान है। आने वाले प्रवासीयों के मर्गदर्शन का दायित्व मेरा होगा। उपरांत उससे महादेव की आरती तथा प्रसाद का कार्य भी मैं सम्पन्न कर लूँगा। तुम विश्राम कर लो।”
“प्रवासियों को तुम सम्भाल सकोगे?” गुल के प्रश्न में व्यंग भी था, आह्वान भी। उत्तर में उत्सव के अधरों पर स्मित था।
एक समय के पश्चात आज गुल ने तारा स्नान नहीं किया, प्रवासियों का मर्गदर्शन नहीं किया, भड़केश्वर महादेव की आरती नहीं की, प्रसाद नहीं लगाया। यह सब उत्सव ने किया। दोपहर हो गई। सूरज पूरे यौवन पर था। समुद्र की तरंगें उत्साह से भरी थी। विश्राम के पश्चात गुल प्रफुल्लित थी। किंतु अभी भी चिंता से मुक्त नहीं थी।
उत्सव शिला पर बैठा था, वही निःस्पृह अवस्था में। गुल जाकर समीप गई, खडी हो गई।
‘इतना निर्लेप है यह व्यक्ति ! ना कल की कोई बात उसे विचलित कर रही है ना आनेवाले अज्ञात से चिंतित। वह जी रहा है तो वर्तमान में, केवल वर्तमान में। समय की प्रत्येक क्षण से वह आनंद प्राप्त कर लेता है। किसी भी स्थिति में उसे विषाद परास्त नहीं कर सकता। क्या कारण है इस अवस्था का? यह कौन सी अवस्था है? कैसे इस अवस्था को उत्सव ने पाया होगा? मैं भी यदि इस अवस्था को प्राप्त कर सकूँ तो? मुझे इस अवस्था को पाना है। क्या मैं इसे प्राप्त कर पाऊँगी?’
“अवश्य, गुल। यह सम्भव है। बस तुम्हें प्रयास करना है।” गुल के कानों पर यह शब्द पड़े। उसे
प्रतित हुआ कि उत्सव ने यह शब्द कहे हैं। गुल ने उत्सव को देखा। वह समुद्र के किसी बिंदु पर था।
‘तो क्या यह उत्सव ने नहीं कहे? तो किसने कहा होगा? जो भी हो किंतु इन शब्दों से मुझे सुख का अनुभव हो रहा है। मुझे प्रयास करना होगा।’
गुल ने उत्सव को देखा, शिला को देखा जिस पर उत्सव बैठा था।
‘मैं भी बैठ जाऊँ इस शिला पर? उत्सव के समीप? यह शिला इतनी तो विशाल है ही कि एक से अधिक व्यक्ति उस पर बैठ सके।’
‘ऐसा करने से तुम उत्सव के सामीप्य को पा सकोगी, गुल। सम्भव भी है की तुम्हें उसका स्पर्श भी हो। यही स्पर्श को तुमने कल अनुभव किया था ना?’
‘हां, मैंने तो किया था किंतु उत्सव ने नहीं। उसने मेरे हाथ को ऐसे पकड़ा था जैसे कोई निर्जीव वस्तु को पकड़ा हो। कोई

प्रवाह नहीं था उस स्पर्श में। कितना शुष्क था वह स्पर्श।'
गुल ने विचारों को समेटा, समुद्र को देखने लगी।
"गुल, तुम कभी समुद्र के तट की भीगी रेत पर चली हो?" उत्सव के शब्दों से गुल का ध्यान टूटा।
"भीगी रेत पर? समय की एक नदी से पहले ....।" बोलते बोलते गुल रुक गई।
"तो क्या? आज चलते हैं। समय की उस नदी कदाचित कहीं मिल जाय।"
"उत्सव, यहाँ समुद्र का तट सीधा, सपाट नहीं है। यह कंदराओं से भरा है। हमें उन पर चलना होगा।"
"मुझे संज्ञान है कि इन कन्दराओं को पार करते ही सपाट तट आता है। उन पर चलते चलते समुद्र की तरंगों का स्पर्श भी होगा।"
"तुम्हें द्वारका के समुद्र तट का पूरा मानचित्र ज्ञात है।"
उत्सव हंस दिया, उठा और समुद्र की तरफ़ चलने लगा। गुल भी सहज उसके साथ हो गई। कई कन्दराओं को पार कर दोनों खुले समुद्र तट पर आ गए।
रेत भीगी थी। तरंगें उठती थी, तट पर शांत जो जाती थी। दोनों चलते रहे। एक तरंग ने गुल को भिगो दिया। पानी के स्पर्श से गुल रोमांचित हो गई। वह वहीं रुक गई। एक एक तरंग आती रही, गुल को स्पर्श करती रही।वह प्रसन्न थी। उत्सव उस प्रसन्नता के भावों को देखता रहा।
"उत्सव, तुम भी आ जाओ।" गुल ने उत्सव को आमंत्रित किया किंतु समुद्र की तरंगों की ध्वनि में उत्सव ने स्पष्ट नहीं सुना। गुल के हाथों के संकेतों से उत्सव उस आमंत्रण को समझ गया। वह जुड़ गया गुल के साथ।
सूर्य की दिनचर्या पूर्ण होने में समय अभी कुछ बचा था तब दोनों लौट आए। गुल की प्रसन्नता से उत्सव भी प्रसन्न था।
"उत्सव, आज कितने दिनों के पश्चात मैं प्रसन्न हूँ। मैंने स्वयं को इस प्रकार व्यस्त कर दिया था कि मैं हँसना भूल गई थी। प्रसन्न होना भूल गई थी।"
"नहीं गुल। यह सत्य नहीं है।"
"तो सत्य क्या है?"
"सत्य तो यह है कि मैंने तुम्हारे मुख पर समय समय पर स्मित देखा है, एक ऐसा स्मित कि जिसे यह संसार भुवन मोहिनी स्मित कहता है। वह स्मित उस व्यक्ति के मुख पर ही होता है जो भीतर से प्रसन्न हो। जो भीतर से दुखी हो उसके मुख पर ऐसा स्मित सम्भव नहीं।"
"ऐसा स्मित एक छलना भी तो हो सकती है।"
"स्वयं कृष्ण के अधरों पर यह स्मित सदैव देखा है।"
"तो क्या कृष्ण भीतर से प्रसन्न थे ऐसा तुम मानते हो?"
"अवश्य। कृष्ण से अधिक प्रसन्न जीव इस धरती पर कभी नहीं आया।"
"यह मिथ्या है।"
"कैसे?"
"कृष्ण के भीतर जो विषाद था, जो अवसाद था वह इतना अधिक था कि उसे छुपाने के लिए वह सारा जीवन उस भुवन मोहिनी स्मित को अधरों पर लिए फिरता रहा। उसका विषाद उस स्मित के पीछे ऐसे आवृत हो गया कि संसार को वह कभी नहीं दिखा।"
"कृष्ण के विषाद अनेक थे। जन्म से मृत्यु तक प्रत्येक क्षण विषाद से भरा था।"
"वह कृष्ण ही कर सकता है, विषाद को छुपाकर स्मित करना। और स्मित भी कैसा ? भुवन मोहिनी स्मित।"
गुल ने द्वारिकाधीश के मंदिर की दिशा में देखा, हाथ जोड़ दिए।
"गुल, तुम भी तो वही कर रही हो जो कृष्ण ने किया था। तुम्हारे इस भुवन मोहिनी स्मित के पीछे भी कोई गहन विषाद है।"
"नहीं ऐसा कुछ भी नहीं।" गुल ने वही परिचित भुवन मोहिनी स्मित किया।
"तुम्हारी यह चेष्टा मोहक है। तुमने कृष्ण से यह स्मित करना अच्छी भाँति सिख लिया है। किंतु विषाद को मैं देख चुका हूँ।"
"कृष्ण ने अपने विषाद को कभी किसी को नहीं कहा। वह स्वयं उसे सहता रहा। मृत्यु पर्यंत वह मौन धारण कर उसे आपने भीतर समाए जीता रहा।"
"युगपुरुष था, महानायक था वह। तुम नहीं। तुम कृष्ण नहीं हो, गुल।"
गुल को विषाद ने घेर लिया। वह मौन हो गई। उत्सव ने उस मौन को भंग करते हुए कहा, "मौन कभी किसी विषाद का उपाय नहीं हो सकता। आज तुम्हें सब कुछ कहना होगा।"
"क्या कहना होगा? किस बात में तुम्हारी रुचि है?"

“कई दिवसों से मेरे भीतर एक अपराध भाव जन्म ले चुका है। मुझे ज्ञात है कि मेरे यहाँ आने तक तुम एक सरल, सहज एवं प्रसन्न जीवन व्यतीत कर रही थी। मेरे आने के कुछ दिवस तक तुम एक ऋषि की अवस्था को धारण किए थी। किंतु पिछले कुछ दिवसों से तुम इस जीवन से भिन्न जीवन जी रही हो। कौन सा जीवन सत्य है? कौन सा जीवन दंभ है यह मैं नहीं जानता। किंतु यदि मेरे होने के कारण तुम्हारा जीवन अप्रसन्नता से भर जाता है तो मुझे यहाँ से विदाय होना चाहिए। मैं आज ही महादेव की संध्या आरती के पश्चात इस नगरी को छोड़कर चला जाऊँगा।”
“क्या कहा? छोड़कर जाना है? कहाँ जाओगे? क्या करोगे? तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर कहाँ पाओगे? तुम जिस उद्देश्य से यहाँ आए थे, मुझे मिले थे, उनका क्या होगा?”
“मैं नहीं जानता। प्रश्न कल भी थे, आज भी है। कल भी रहेंगे। किंतु विषाद सदैव नहीं रहना चाहिए। और यदि वह विषाद का कारण मैं हूँ तो ....।”
“नहीं उत्सव, तुम उसका कारण नहीं हो।”
“तो कौन है?”
“केशव।”
“केशव? अर्थात् कृष्ण। तुम मुझे भटका रही हो गुल।”
“मैं कृष्ण की बात नहीं कर रही। मैं केशव की बात कर रही हूँ। मेरे केशव की बात।”
“अर्थात् केशव कोई भिन्न व्यक्ति है जो कृष्ण नहीं है?”
“हां उत्सव। वह केशव है जो मनुष्य है, इस युग का मनुष्य। उस केशव के विषय में सुनना चाहोगे?”
“यदि उस केशव के साथ तुम्हारा जीवन जुडा है तो मुझे नहीं सुनना चाहिए।”
“क्यूँ?”
“क्यूँ कि ऐसा करने का अर्थ है मैं तुम में रुचि ले रहा हूँ। और ऐसा करना मोह होगा।”
“कृष्ण को राधा के बिना जान नहीं सकते उसी प्रकार केशव को गुल के बिना जान नहीं सकते।”
“तो मुझे दोनों से रुचि नहीं रखनी चाहिए।”
“किंतु मैं तुम्हें यहां से जाने नहीं दूँगी। तुम यहीं रुक जाओ।”
“तुम्हारे विषाद का क्या होगा? इस प्रकार तुम्हें अप्रसन्न भी तो नहीं देख सकता।”
“मैं प्रयास करूँगी कि मेरा विषाद कभी मेरे मुख पर ना आए। मैं प्रसन्न रहूँगी। देखो मेरे अधरों पर यह स्मित देखो। तुम जिसे भुवन मोहिनी स्मित कहते हो।” गुल ने वह स्मित किया।
“यह स्मित अवश्य ही भुवन मोहिनी स्मित है किंतु वह सहज नहीं है, अनायास नहीं है। जिसे करने में आयास करना पड़े वह नैसर्गिक नहीं होता, कृत्रिम होता है। यह स्मित भी कृत्रिम है।”
“तो मैं क्या करूँ?” गुल के सभी बांध तुट गए। वह क्रंदन करने लगी। उत्सव ने उसे नहीं रोका। गुल का क्रंदन स्वयं रुका।
“गुल, तुम भीतर से रिक्त नहीं हो। केशव तुम्हारे भीतर ही है।”
“क्या करूँ इस केशव का?”
“तुम्हें याद है, कुछ दिवस पूर्व तुमने मुझे कहा था कि मैं अपना सब कुछ समुद्र को समर्पित कर आऊँ। भीतर से रिक्त हो जाऊँ? मैंने यही किया था। तुमने मुझे कहा, मैंने किया। किंतु तुमने स्वयं को नहीं कहा। स्वयं ने नहीं किया। जब तक तुम भीतर से रिक्त नहीं हो जाती, तुम इस विषाद से घिरी रहोगी। तुम्हें केशव को भीतर से त्यागना होगा। क्या तुम यह कर सकोगी?”
“मैं वही तो करने वाली थी। किंतु तुमने मुझे रोक दिया।”
“मैंने? वह कैसे?”
“केशव के साथ जुड़ी मेरी तमाम स्मृतियों को जब तक मैं विस्मृत नहीं कर सकती तब तक वह मेरे भीतर ही रहेगा और मुझे विषाद रहेगा। मैं उन तमाम स्मृतियों को बाहर निकालना चाहती हूँ, किसी को बता दूँगी तब ही वह मेरे भीतर से निकल पाएगी। मैंने इस हेतु तुम्हें चुना किंतु ‘मैं तुम में रुचि नहीं लेना चाहता’ यह कर तुमने मेरे मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। अब मैं किसे कहूँ? कैसे रिक्त हो सकूँ?”
“तुमने ही मुझे रिक्त किया है। यदि मैं तुम्हारी तथा केशव की गाथा सुनने लगा तो पुन: मैं इन सांसारिक बातों में उलझ जाऊँगा, मार्ग से भटक जाऊँगा। मेरी रिक्तता समाप्त हो जाएगी, मेरे भीतर पुन: यह सब कुछ घर कर लेगा। तुम इस समुद्र से कहो। वह सबकी सुनता है। वह कभी रिक्त नहीं होता। वह सब कुछ अपने भीतर ग्रहण कर लेता है।”
“उचित मार्ग सुझाया तुमने। वह तो साक्षी रहा है मेरा, मेरे जीवन की प्रत्येक क्षण का। मैं आज महादेव की आरती के लिए नहीं आऊँगी। तुम कर लेना।”

“तुम क्या करोगी तब?”
“मैं समुद्र के समक्ष जाऊँगी। उसे सब कुछ कह दूँगी। रिक्त हो जाऊँगी।” गुल समुद्र की तरफ़ जाने लगी। उत्सव उसे देखता रहा, संध्या आरती की प्रतीक्षा करने लगा।

16

प्रतीक्षा के कुछ ही क्षण व्यतीत होने पर उत्सव विचारों से घिर गया।
‘मैं इस प्रकार रिक्त ही रहा तो मेरे लक्ष्य को में प्राप्त नहीं कर सकता। यदि पूर्ण रूप से रिक्त हो गया तो मैं निर्लेप हो जाऊँगा। मेरी जिज्ञासा समाप्त हो जाएगी। मेरे प्रश्न, मेरे संशय भी नहीं रहेंगे। यह स्थिति तो मोक्ष की है। क्या मुझे मोक्ष चाहिए?’

'नहीं। मोक्ष तेरा अंतिम लक्ष्य नहीं है। यदि मोक्ष ही अंतिम लक्ष्य होता तो तुम्हें यहाँ तक प्रवास की आवश्यकता ही नहीं थी। यह तो व्यर्थ उद्यम होगा। मोक्ष तो तुम्हें गंगा के सान्निध्य में, हिमालय की किसी भी कंदरा में, किसी भी साधु के शरण में, किसी ज्ञान की पुस्तक में, किसी गुरु के चरणों में प्राप्त हो जाता। तुम्हारा लक्ष्य क्या है, उसका स्मरण करो। उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तुम्हें गुल के साथ रहना होगा। गुल ही तुम्हारे सभी प्रश्नों के उत्तर देगी, संशय का समाधान करेगी। तुम्हें गुल में रुचि लेनी होगी। तुम्हें तुम्हारी रिक्तता को छोड़ना होगा।'

'तो अब मैं क्या करूँ? मैंने तो गुल को, गुल की बातों को...।'

'दौड़ो, गुल के पास जाओ। उसकी तथा केशव की पूरी गाथा सुनो। इस गाथा में ही तुम्हें उत्तर मिलेगा कि एक मुस्लिम युवति कैसे पंडित गुल बनी। जाओ, भागो। विचार ना करो, कर्म करो।'

उत्सव ने समुद्र की तरफ़ देखा। गुल तरंगों के समीप थी। झुककर समुद्र के पानी को स्पर्श कर रही थी। वह दौडा, दौड़ते दौड़ते पुकारने लगा, " गुल, गुल, गुल, ...।"

समुद्र की ध्वनि में उत्सव के शब्द विलीन हो गए। गुल समुद्र के भीतर जाने लगी। तरंगें उसे भिगो रही थी। वह अधिक भीतर गई। उत्सव किनारे पर आ गया। पुन: पुकारने लगा, "गुल, गुल, गुल, रुको। अधिक भीतर ना जाओ। तुम डूब जाओगी। लौट आओ।"

पुन: उत्सव के शब्द गुल ने नहीं सुने।

'मुझे गुल को रोकना होगा। कहीं वह स्वयं को समुद्र को समर्पित तो नहीं कर रही?'

उत्सव समुद्र में कूद गया। गुल के समीप आ गया।

गुल ने अपने उपवस्त्र को निकाला, कटी पर बांधा। केश को खुले कर दिए। समुद्र को वंदन किया। समुद्र के भीतर डुबकी लगा दी। बाहर आ गई। गुल के भीगे यौवन को उत्सव देखने लगा। वह उसे ठीक से देख पाता उससे पहले ही गुल ने दो चार डुबकी और लगा दी।

उत्सव गुल की चेष्टा को निहारता रहा। गुल के भीगे खुले केश से समुद्र का नमकीन पानी टपक रहा था। केश बिखरे थे, कंधों पर, पीठ पर, छाती पर, गाल पर, मुख पर, ग्रीवा पर। केश से टपकता पानी गुल के तन की यात्रा करते हुए पुन: समुद्र में समा जाता था। कुछ बूँदों की यात्रा गुल के तन पर ही सम्पन्न हो चुकी थी। वह बूँदें दो पहाड़ियों के ऊपर तथा दोनों के मध्य वाली कन्दरा में स्थिर हो गई थी। उत्सव की दृष्टि भी वहीं स्थिर थी।

'यह लौकिक आकर्षण मुझे क्यूँ आकृष्ट कर रहा है?'

उत्सव ने उस केंद्र बिंदु से दृष्टि हटा ली। गुल इन सब से अनभिज्ञ थी। उत्सव को विश्वास हो गया कि गुल केवल स्नान करने हेतु ही समुद्र के भीतर गई थी। वह किनारे पर लौट आया। गुल की प्रतीक्षा करने लगा।

"गुल, यह समय स्नान का तो नहीं है?" तट पर लौटी गुल को उत्सव ने पूछा। उत्सव की दृष्टि कहीं दूर समुद्र के भीतर जल पर स्थिर थी।

"समय एक भ्रमणा है, छल है। वैसे यह समय किसी सध्यस्नाता से मिलने का भी तो नहीं है उत्सव।"

"समय एक भ्रमणा है, छल है, गुल।" उत्सव के उत्तर से दोनों हंस पड़े।

"गुल, तुम जल से भीगी हो, जाओ घर जाकर वस्त्र बदल लो।"

गुल कन्दरा पर स्थित एक शिला पर बैठ गई।

"उत्सव तुम भी बैठो ना। इस कन्दरा पर अन्य कई शिलाएं है। तुम किसी पर भी बैठ सकते हो।"

"तुमने मेरी बात नहीं सुनी। जाओ वस्त्र बदल लो।"

"नहीं उत्सव। आज मैं इसे भीगा ही रहने दूँगी। कुछ समय पश्चात यह वस्त्र स्वयं ही सुख जाएँगे। किंतु मेरे भीगे वस्त्रों से तुम्हें क्या आपत्ति है? प्रवासी, इस भीगे तन को देखकर कहीं तुम विचलित तो नहीं हो रहे हो? कहीं तुम्हारी रिक्तता ....।"

"गुल, मेरी रिक्तता ने मुझे ज्ञान दिया है कि मुझे मोक्ष मिल जाएगा। किंतु मैं मोक्ष की लालसा नहीं रखता, ना ही वह मेरा लक्ष्य है। मेरी रिक्तता मेरे लक्ष्य में अवरोध है। मैं उसे भरना चाहता हूँ। पूर्ण रिक्तता होना अभिशाप होगा मेरे लिए। तुम्हारे भीगे वस्त्र अथवा तुम्हारा भीगा तन मुझे विचलित नहीं कर सकता।" उत्सव दूसरी शिला पर बैठ गया।

"विचलित तो मैं हो गई हूँ उत्सव। तुम्हारी भाँति मैं स्थितप्रज्ञ नहीं रह सकती।"

"तो रिक्त हो जाओ। कह दो समुद्र को सारी बातें। मैं भी सुनना चाहूँगा तुम्हारी तथा केशव की गाथा। क्या मुझे इस बात की अनुमति है?"

"तुम्हारी यह जिज्ञासा मुझे प्रसन्न कर रही है, उत्सव। मैं तो कई दिवसों से तुम्हें यह कथा सुनाना चाहती थी। तुम भी तो गूलरेज से पंडित गुल तक की यात्रा को सुनना चाहते थे।"

"किंतु तुमने मुझे रिक्त कर दिया और इन सभी दूर्न्वयि बातों से मेरा आकर्षण समाप्त हो गया। मेरी रुचि चली गई। किंतु

इन दिवसों ने, इस अवस्था ने मुझे ज्ञान दिया कि मेरा लक्ष्य ऐसी रिक्तता से प्राप्त नहीं होगा। यही कारण है कि मैं तुम्हारी गाथा में, तुम में, केशव में रुचि ले रहा हूँ। तुम्हारी कथा सुनने को उत्सुक हूँ।"
"अर्थात् तुम मुझे छोड़ कर नहीं जाओगे। मुझे सदैव यह भय रहता था कि मेरी कथा सुनने के पश्चात तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे।"
"ऐसा भय क्यूँ था?"
"एक तो मैं तुम्हें खोना नहीं चाहती। केशव के जाने के पश्चात ग्यारह वर्ष तक मैं निश्चल रही किंतु जब तुम मेरा नाम लेकर मेरे पास आए थे तब मुझे केशव का स्मरण होने लगा। तुम में मैं केशव को देखने लगी।"
गुल मौन हो कर दूर समुद्र में कहीं खो गई।
"और दूसरा कारण क्या था?"
"केशव के साथ मेरे सम्बन्धों की कथा सुनाने से तुम्हें केशव से ईर्ष्या होने लगेगी। इसी ईर्ष्या में तुम मुझे छोड़कर चले जा सकते हो।"
"तो क्या अब इन दोनों भय से तुम मुक्त हो?"
"दोनों भय अभी भी है किंतु अब भय के भय से मैं निर्भय हो चुकी हूँ।"
"यह तो अच्छी बात है। चलो तुम समुद्र को तुम्हारी कहानी सुनाओ, मैं भी सुन लूँगा।"
"अब मैंने विचार बदल दिया है।"
"तो क्या मैं तुम्हारी कथा से वंचित रह जाऊँगा?"
"नहीं। समुद्र तो मेरी पूरी कथा का साक्षी रहा है। अब मैं मेरी कथा समुद्र को नहीं तुम्हें सुनाऊँगी। हां समुद्र भी साथ साथ सुन सकता है।" गुल ने समुद्र से हटाकर मुख उत्सव की तरफ़ किया।
"मेरी कथा के ताप को सह सकोगे?"
"गुल, मैं उत्सुक हूँ।"
गुल कुछ समय मौन हो गई। जैसे वह काल के वर्तमान प्रवाह को भेदकर काल के अन्य प्रवाह में विलीन होना चाहती हो। किंतु वह ऐसा नहीं कर पाई। वह वर्तमान में लौट आइ। घर लौट गई। किंतु काल के प्रवाह में गति करती समय की क्षण वह उस बिंदु पर रुक गई जहां कथा के प्रथम क्षण ने जन्म लिया था।

17

किसी ने एकांत में बैठे, समुद्र के ऊपर किसी बिंदु को स्थिर दृष्टि से निहारते उत्सव को कहा।
“उत्सव, तुम जिस शिला पर बैठे हो उसी शिला पर ही वह बैठा था। गुल को उसका नाम तब ज्ञात नहीं था। तब वह एक अबोध कन्या थी। आयु होगी आठ नौ वर्ष की। वह और उसके पिता इस कन्दरा के मार्ग से समुद्र के भीतर थे। उसके पिता मछलियाँ पकड़ रहे थे। गुल समुद्र को देख रही थी। समुद्र की ध्वनि के साथ साथ उसके कानों पर एक और ध्वनि भी पड रहा था। एक नाद था वह। उत्सव, तुम्हें इन समुद्र तरंगों की ध्वनि सुनाई दे रही है?”
“जी अवश्य।” उत्सव ने उत्तर तो दे दिया किंतु शीघ्र ही जागृत हो गया।
‘कौन है जो मुझे कुछ कह रहा है? मैं किसे उत्तर दे रहा हूँ?’
“उत्सव, कुछ ना सोचो। जिस बिंदु पर तुम्हारा ध्यान है उसे देखते रहो। वहाँ तुम्हें कुछ दिखाई देगा। कुछ सुनाई देगा। उसे देखो, उसे सुनो।”
“किंतु आप?”
“समुद्र की उस ध्वनि के साथ साथ एक और ध्वनि भी सुनाई दे रही है। ध्यान से सुनो। एक मंद मंद आती ध्वनि, सुनो, ध्यान से सुनो। अब ध्वनि स्पष्ट हो रही है। अधिक स्पष्ट।”
‘ओम्, ओम्, ओम्’
“उत्सव, तुमने सुनी इस ध्वनि को? यह ध्वनि कितनी स्पष्ट है, हैं ना? ओम्, ओम्, ओम् ...।”
उत्सव भी उस ध्वनि में खो गया। अनायास ही वह भी प्रणवनाद करने लगा।
“ओम्, ओम्, ओम्, ओम् ....।”
कन्या गूलरेझ के कानों ने समुद्र की ध्वनि तथा ओम् के नाद के अंतर को जान लिया। वह नाद उसे आकृष्ट करने लगा। उसने सभी दिशाओं पर ध्यान केंद्रित किया। वह नाद की दिशा को ढूँढने लगी। वह समुद्र से दूर जाने लगी। कंदरा की तरफ़ जाने लगी। ध्वनि की दिशा उसे अपनी तरफ़ खींचने लगी। ध्वनि स्पष्ट मार्गदर्शन कर रही थी। गूलरेझ ध्वनि के उद्गम तक पहुँच गई।
समुद्र की एक कन्दरा पर स्थित एक शिला पर बैठा एक बालक दिखाई दिया। उसकी पीठ समुद्र की तरफ़ थी, दृष्टि पूर्व दिशा में सूर्योदय को निहार रही थी। खुली पीठ के नीचे पीताम्बर था। प्रणवनाद का उद्गम बिंदु वही बालक था।
ओम् के नाद को गूलरेझ ने पहले कभी नहीं सुना था। वह अत्यंत कर्ण प्रिय था। उस नाद ने उसे सम्मोहित कर दिया। वह उसे सुनती रही, बिना व्यवधान डाले।
ओम् का नाद एक अंतराल तक चलता रहा। सूर्य पूर्ण रूप से उदय हो गया। बालक ने सूर्य को प्रणाम किया, शिला से उठा और समुद्र की तरफ़ मुड़ा।
“तुम ने उस गीत को गाना बंध क्यूँ किया? तुम गाते रहो। सुनने में मधुर लगता है।” गुल ने बालक से सहज स्मित के साथ कहा।
“तुम कौन हो? यहाँ क्या कर रही हो? तुम्हें पहले कभी नहीं देखा।”
“मेरा नाम गूलरेझ है। मैं तुम्हारा यह गीत सुन रही थी। तुम्हारा नाम क्या है?”
“मेरा नाम केशव है।”
“तुम जो गीत गा रहे थे उसे गाओ ना।” स्मित जो गूलरेझ के अधरों पर था, वह मोहक था।
“गुल, गूलरे, क्या नाम कहा तूमने?”
“गूलरेझ नाम है मेरा, तुम मुझे गुल कह सकते हो। मेरे अब्बा मुझे गुल ही कहते हैं।”
“यह ठीक रहेगा, गुल। गुल, मैं जो गा रहा था वह गीत नहीं था, ओमकार था। ओम्, ओम्।”
“यही, यही गीत गाओ। मीठा लगता है।”
“तुम्हें मीठा लगता है तो मैं अवश्य गाऊँगा। किंतु यह बताओ कि तुम यहाँ कैसे आयी? यहाँ क्या कर रही हो?”
“वहाँ देखो, वह जो पानी के भीतर है वह मेरे अब्बू है। वह मछली पकड़ते हैं। मैं उनके साथ आइ हूँ। अब तो गीत गा दो।”
केशव ने आँखें बंध की और ओम् का नाद करने लगा।

“ओम्, ओम्, ओम्।”
केशव नाद करता रहा, गुल सुनती रही।
“गुल, क्या कर रही हो? कहाँ हो?” गुल के अब्बा ने पुकारा।
गुल का ध्यान भंग हो गया।
“केशव, मैं जा रही हूँ। अब्बा बुलाते हैं। कल आऊँगी। कल मुझे यह गीत सुनाओगे?”
गुल के शब्दों ने केशव का ध्यान भंग किया, आँखें खोली। गुल दूर जा रही थी। वह उसे जाते हुए देखता रहा।
केशव ने समुद्र से अंजलि भरी, सूर्य को अर्घ्य दिया और लौट गया।
‘गुल। यह लड़की कल पुन: आएगी, ओम् का मेरा जाप सुनेगी। मैं उसे सुनाऊँगा। अवश्य सुनाऊँगा। ओम् के अतिरिक्त मुझे कुछ मंत्र भी आते हैं। मैं उसे मंत्र भी सुनाऊँगा। उसे अवश्य पसंद आएगा।’
‘किंतु वह उसे गीत कहती है जो प्रणव नाद है। तुमने उसे क्यों कहा नहीं कि यह गीत नहीं है?’
‘उससे क्या अंतर पड़ेगा? यदि उसे गीत के रूप में भी ओम् का नाद प्रसन्नता दे रहा है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।’

18

दूसरी प्रभात को गुल उस कन्दरा पर जाकर समय से पूर्व ही खडी हो गई। केशव की प्रतीक्षा करने लगी। उसके अब्बा मछलियाँ पकड़ने लगे।
ओम् के नाद के साथ केशव आया। गुल वहीं प्रतीक्षा कर रही थी। नाद सुनते ही उसने आँखें बंध कर ली। उसके भीतर आनंद की तरंगें उठ रही थी। केशव शिला पर बैठ गया। सूर्य की तरफ़ मुख रखकर, आँखें बंध कर ओम् के जाप करने लगा। समय, हवा, समुद्र की तरंगें, कन्दरा, शिला, दिशाएँ सभी एक साथ एक ही बिंदु पर केंद्रित हो गए। गुल भी।
ओम्, ओम्, ओम्, ओम्।
“तुम यहाँ हो? क्या कर रही हो? कौन है यह छोकरा?” गुल के अब्बा चिल्लाए। सभी का ध्यान भंग हु आ। एक तंतु का तार तुट गया। समय, दिशा, तरंगें सब प्रवाहित हो गए। गुल ने आँखें खोली, केशव ने भी।
“अब्बा...?” गुल के शब्द उससे आगे कुछ नहीं बोल सके। अब्बा के क्रोधित मुख को देखकर। वह भय से ग्रस्त हो गई।
“गुल, चलो घर। तुम किसी अज्ञात से नहीं मिलोगी। कल से तुम घर पर ही रहोगी।” क्रोधित अब्बा चलने लगे, गुल भी उसे पीछे पीछे जाने लगी।
“गुल, रुको। श्रीमान जी ठहर जाओ।” केशव ने कहा। दोनों रुक गए। मुड़कर देखा, दोनों हाथ जोड़े केशव खड़ा था।
“एक क्षण के लिए रुक जाइए।” केशव दोनों के समीप गया।
“क्या है?”
“श्रीमान जी, नमस्ते। मेरा नाम केशव है। मैं यहां बैठकर सूर्य के सम्मुख ओम् मंत्र का जाप करता हूँ। यह मेरा दैनिक क्रम

है। गुल ने कल मेरे इस जाप को सुना, उसे पसंद आया। आज भी वह इसे सुनने यहाँ आयी थी। यदि उसे सुनकर वह प्रसन्न होती है तो इसमें क्रोधित होने की कोई बात नहीं है।" केशव के दोनों हाथ जोड़े हुए थे।
गुल के अब्बा कुछ क्षण केशव को देखते रहे। क्या उत्तर दें वह उसे तत्क्षण नहीं सुझा। अनिर्णय की स्थिति में खड़े रह गए। 'मैं क्यूँ इस छोकरे पर ग़ुस्सा कर रहा हूँ? इसने तो ऐसा कुछ भी नहीं किया। मुझे ग़ुस्सा नहीं करना चाहिए।' वह शांत हो गए।
"तुम सही कह रहे हो। मेरे ग़ुस्से का कारण तुम नहीं हो।"
"तो क्या आज भी कम मछलियाँ मिली?" गुल ने अब्बा को देखा, "केशव, जब मछलियाँ कम मिलती है तो अब्बा ऐसे ही ग़ुस्सा, क्या कहा था तुमने, हां क्रोधित हो जाते हैं। हैं ना अब्बू?"
अब्बा कुछ नहीं बोले।
"आप मछलियाँ पकड़ते हैं? क्या करते हैं इनका?"
"इसे बेच जो कुछ पैसा मिले उससे घर चलता है।"
"सुना है मछलीयों को मारकर उसका भोजन करते हैं, क्या आप भी ऐसा करते हैं?"
"केशव, मेरी अम्मी मछली पकाती है। कल मैं तुम्हारे लिए लेकर आऊँगी। तुम खाओगे तो ...।"
"नहीं गुल, यह पाप है। किसी भी जीव की हत्या करना पाप है।"
"पाप क्या होता है, अब्बू, केशव?" गुल की आँखों में प्रश्न के साथ विस्मय भी था।
"पेट पालना पाप नहीं होता है, केशव।" अब्बा ने कहा।
"किसी जीव की हत्या करना पाप नहीं है?"
"केशव, तुम अपना काम करो और हमे अपना काम करने दो। चल गुल, घर चल।"
गुल और अब्बा जाने लगे।
"गुल, तुम्हें तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल गया क्या?"
"कौन सा प्रश्न?"
"पाप क्या होता है? यही पूछा था ना तुमने?"
"हाँ। क्या होता है पाप?"
"रुको तो बताऊँ।"
गुल रुक गई। अब्बा को भी रुकना पड़ा।
"गुल, तुम जब इस कन्दरा पर, इस रेत पर नंगे पैर चलती हो तो पग में कभी कभी कुछ चुभ जाता है?"
"हां, ऐसा होता है। तब पैर में दर्द होता है।"
"और यदि कोई तुम्हें मार डाले तो?"
"केशव?" अब्बा केशव की बात सुनकर चिल्ला उठे। गुल की समज में कुछ नहीं आया।
"गुल, तुम्हारे अब्बा को दु:ख हुआ मेरी बात से। इसी प्रकार इन मछलियों को जब हम पकड़कर पानी से बाहर रखते हैं तो वह मर जाती है। सोचो उनको कितना दु:ख होता होगा?"
गुल अब्बू को देखने लगी। जैसे पूछ रही हो, 'क्या केशव सही कह रहा है?'
अब्बा कुछ नहीं बोले। मछलियों से भरी गठरी हाथ में लिए समुद्र की तरफ़ भागे, गठरी खोल दी,सभी मछलियाँ समुद्र में बहा दी। मछलियाँ जीवित हो उठी। तरंगों के साथ समुद्र में दौड़ गई।
"केशव, आज से मैं मछलियाँ नहीं पकडुंगा। मांसाहार भी नहीं करूँगा।"
"मांसाहार क्या होता है, केशव?"
"किसी भी जीव की हत्या कर उसका भोजन करना मांसाहार होता है। तो अब आप जीवन कैसे व्यतीत करोगे?"
"बेटे, वह तो मैंने नहीं सोचा। जिस मालिक ने पेट दिया है वह कोई ना कोई रास्ता निकाल लेगा।"
"आप मेरे साथ चलो। वहाँ दूर गुरुकुल है। मैं वहीं रहता हूँ। मैं जिस गीत को गा रहा था, जिस गीत को गुल सुन रही थी वह गीत मैंने वहीं सिखा है। वहाँ हमारे कुलपति है, वह आपको कोई मार्ग बताएँगे। चलो।"
गुल तो चल पड़ी, किंतु अब्बा रुक गए।
"क्या हमारा वहाँ आना ठीक होगा? कहीं हमें...।"
"आप निश्चिंत रहिए। कुलपति बड़े दयालु है।"
"चलो यही मर्ज़ी होगी मालिक की।" अब्बा, गुल और केशव चलने लगे।
"केशव, वह गीत गाओ ना। अब्बा को भी सुनाओ।"

गुल की इच्छा पर केशव ने प्रणव नाद प्रारम्भ कर दिया।
ओम्, ओम्, ओम्, ओम्, ओम्।
मार्ग में वह यही गाता रहा। गुल के साथ अब्बा भी सुनकर प्रसन्न हो गए।
“केशव, तुम अच्छा गाते हो।” केशव के मुख पर मोहक स्मित था। गुल उस स्मित को देखती रही।
कितना सुंदर हँसता है केशव। मैं भी ऐसे ही हँसना सीखूंगी।
गुरुकुल के द्वार पर केशव ने दोनों को रोका।
“आप दोनों यहीं रहिए। मैं अभी आता हूँ।” केशव भीतर चला गया। गुल तथा अब्बा गुरुकुल को देखने लगे। गुरुकुल का द्वार छोटा सा था, किन्तु सुंदर था। द्वार पर अनेक चित्र अंकित थे। कहीं पहाड़ था, कहीं वृक्ष थे, कहीं पंखी थे। गुल को यह देख अच्छा लगा। वह उसमें समुद्र को खोज़ने का यत्न करने लगी किंतु व्यर्थ।
अब्बा ने भीतर द्रष्टि डाली। द्वार से थोड़ा कुछ दिखाई दे रहा था। कुछ बालक दिख रहे थे। सभी ने केशव की भांति ही कपड़े पहने हुए थे। सभी के माथे पर चोटी के उपरांत कोई केश नहीं थे। सभी की चोटियाँ बंधी हुई थी। प्रत्येक बालक किसी ना किसी कार्य में व्यस्त था। उसने भीतर प्रवेश करने के लिए पैर उठाए ही थे कि रोक लिए।
‘बिना पूछे भीतर नहीं जाना चाहिए। मुझे केशव के आने की राह देखनी होगी।’ वह प्रतीक्षा करने लगे।
एक अंतराल के पश्चात एक बालक आया, भीतर आने का संकेत किया। गुल और अब्बा दोनों उस बालक के पीछे भीतर गए। अब्बा बालक के पीछे चलने लगे, गुल सब देखने लगी।
“गुल, चलो।” वह अ-मन से चलने लगी।
एक कक्ष के समीप बालक रुक गया। भीतर जाने का संकेत देकर वह चला गया। संकोच से अब्बा ने तथा सहजता से गुल ने कक्ष में प्रवेश किया। केशव वहीं था। उसे देख अब्बू का संकोच लुप्त हो गया।

19

“यह हमारे कुलपति हैं।” अब्बू ने दो हाथ जोड़ दिए। गुल कक्ष को देखने लगी।
“केशव ने मुझे सारी घटना बताई है। तुम मांसाहार का त्याग कर रहे हो, मछलियों का व्यापार भी छोड़ रहे हो। यह बात सुनकर प्रसन्नता हुई। किंतु अब काम क्या करोगे? परिवार का पालन कैसे होगा?” कुलपति के शब्दों से अब्बू आशंकित हो गए।
“केशव ने कहा था कि आप मुझे...?” आगे शब्द नहीं सूझे उसे।

“मैं क्या सहायता कर सकता हूँ?”
“मुझे नहीं पता। मैं तो बस केशव के भरोसे आ गया।”
“यदि मैं कोई सहायता ना करूँ तो?”
“तो मुझे उस पर भरोसा है कि जिसने पेट दिया है वह खाना भी देगा।”
“तो क्या तुम वही काम करोगे जो अभी तक करते आए हो? वही मछलियाँ मारना, मांसाहार करना?”
“आपने कुछ राह नहीं दिखायी तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा।”
“किंतु काम क्या करोगे? यही...?”
अब्बू कुछ क्षण मौन हो गए। गहन विचार के पश्चात बोले, “नहीं, मैं आज तक जो काम करता आया हूँ वह नहीं करूँगा।”
“तो क्या करोगे? और कोई विकल्प है तुम्हारे पास?”
“अभी तो कोई नहीं। किंतु पाप का काम अब नहीं करूँगा।”
“तब तो तुम्हारा परिवार भूख से मर जाएगा। क्या तब भी तुम वह काम नहीं करोगे?”
“नहीं। एक बार उस पाप के काम को छोड दिया है तो बस छोड़ दिया। अब मैं कभी उस मार्ग पर नहीं जाऊँगा।”
“क्या यह तुम्हारा निश्चय है?”
“कुछ भी हो जाय, मैं वह कार्य नहीं करूँगा।” उसने गुल के माथे पर हाथ रखा, “मेरी बेटी की क़सम। मैं पाप नहीं करूँगा।”
“तुम्हारे इस दृढ़ निश्चय से प्रसन्नता हुई। किंतु वत्स, पुरुष का सबसे पहला कर्तव्य है परिवार का पालन करना। उसके लिए वह जो भी कर्म करता है वह ना तो पाप है ना पुण्य है। बस वह केवल उसका कर्तव्य है। तुमने अपने कर्तव्य को उचित रूप से किया है।”
“मैं कुछ समझा नहीं, कुलपति जी। आप की बात सुनकर मेरा मन भटक रहा है।”
“मैं तुम्हें भटका नहीं रहा हूँ।” कुलपति मौन हो गए।
“मेरे लिए क्या आदेश है?”
“केशव, आज इनके पूरे परिवार के लिए भोजन का प्रबंध गुरुकुल से करना है। दोनों समय के लिए। तुम उसके घर भोजन लेकर जाओगे।”
“किंतु...।”
कुलपति चले गए।
“मैं भोजन लेकर आऊँगा। आपका घर कहाँ है वह मुझे ज्ञात नहीं है। तो हम वही कन्दरा पर मिलेंगे।” केशव भी चला गया। गुल के परिवार ने गुरुकुल से आए भोजन को ग्रहण किया।
प्रभात होते ही गुल के साथ अब्बू गुरुकुल दौड़ आए।
“कुलपति जी, आपने जो भोजन दिया था वह अब हम नहीं लेंगे।”
“क्या वह भोजन पर्याप्त नहीं था? अथवा स्वादिष्ट नहीं था।”
“वह आवश्यकता से अधिक था और अत्यंत स्वादिष्ट भी था।”
“तो कहो क्या समस्या है?”
“गुरु जी, रात्रि भर मैं सो नहीं पाया, मेरी बेगम भी नहीं सो पायी।”
“और गुल?”
“वह तो अभी बालक है।”
“ठीक है। कहो क्या समस्या है?”
“बिना महेनत के भोजन लेना ठीक नहीं है। यह भी तो पाप है।”
“तो क्या करोगे अब? भूख से कैसे बचोगे? कहाँ से होगा भोजन का प्रबंध?”
“मुझे कुछ नहीं सुझ रहा। आप मुझे कहें मैं क्या करूँ?”
“कोई काम ढूँढ लो।”
“मैं कोई भी काम करने को तैयार हूँ। इस गुरुकुल में मेरे लिए कोई काम होगा तो मैं वह भी कर लूँगा।किंतु बिना परिश्रम के, बिना हक्क का कुछ नहीं लूँगा।” अब्बू हाथ जोड़े आँखों में अश्रु लिए, शीश झुकाए कुलपति के सामने खड़े हो गए। गुल को कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। वह आश्चर्य से सब देख रही थी। अपने अबोध मन से बातों को समझने का प्रयास कर रही थी किंतु विफल हो रही थी।
“यह गुरुकुल विशाल है। यहाँ अनेक विद्यार्थी रहते हैं। शिक्षा ग्रहण करते हैं। अपना अधिकांश काम स्वयं वही करते हैं। फिर भी करने के लिए भी कई काम है। तुम केशव के साथ पूरे गुरुकुल को देख लो और बताओ कि तुम कौन सा कार्य

कर सकते हो?”
वह केशव के साथ पूरा गुरुकुल देखकर लौट आए।
“कहो कौन सा काम तुम कर सकोगे?”
“कोई भी काम जो आप कहोही वह मैं करूँगा।”
“वत्स, अपने लिए उचित काम का चयन आप स्वयं करो।”
“किंतु…।”
“ऐसा करने से उस कार्य में तुम्हारी रुचि बनी रहेगी। जिस कार्य में रुचि हो उसे करने में प्रसन्नता मिलती है। क्या तुम प्रसन्न होना नहीं चाहते?”
“ऐसा कौन सा व्यक्ति होगा जो प्रसन्न होना नहीं चाहता?”
“तो कहो वत्स, कौन सा कार्य चुना है तुमने?”
“वैसे तो गुरुकुल के प्रत्येक कार्य को यहाँ पढ़ रहे बालकों ने बाँट लिया है। ऐसे में मेरे लिए कोई काम नहीं बचता। किंतु एक कार्य करने की इच्छा है। क्या उसके लिए आपकी अनुमति प्राप्त होगी?”
“कहो कौन सा ऐसा कार्य है?”
“विद्यार्थियों के अभ्यास कक्ष के पीछे कुछ खुली ज़मीन पड़ी है। उस पर कुछ वृक्ष उगाना चाहता हूँ। आप का क्या विचार है?”
“तुम्हारा विचार तो उत्तम है किंतु तुम जानते ही हो कि यह भूमि समुद्र तट के अत्यंत समीप है। धरती के भीतर समुद्र का खारापन भी होगा। ऐसी धरती पर कोई वृक्ष कैसे उगेगा? और यदि तुम इसके लिए प्रयास करो तो भी वह अधिक श्रम का कार्य है। उपरांत उसकी सफलता अनिश्चित है। ऐसा कठिन कार्य कर सकोगे?”
“कितना भी कठिन क्यूँ ना हो, मैं करूँगा। आपके आशीर्वाद मिलेंगे तो सफलता भी मिलेगी।”
“तो कहो इस भूमि में क्या उग सकता है?”
“यहाँ से कुछ दूरी पर एक गाँव है, वरवाला। वहाँ के किसानों के बगीचे में चीकू, केले, निम्बू, आम आदि के वृक्ष मैंने देखे हैं। यह सब यहाँ भी उग सकते हैं।”
“तुम्हारा विचार उत्तम है। क्या तुम इस श्रम के लिए तैयार हो?”
“आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा है, कुलपति जी।”
“आज्ञा है वत्स। तुम कल से इस काम का प्रारम्भ कर सकते हो।”
“कल से? आज से क्यूँ नहीं?”
“तुम आज से ही कार्य प्रारम्भ कर सकते हो।”
“धन्यवाद।” अब्बू ने दो हाथ जोड़ अभिवादन किया और कक्ष से जाने लगे।
कुलपति जी ने उन्हें पुकारा, “तुमने यही काम क्यों चुना ?”
“यही मेरे पापों का पश्चाताप होगा।”
“वह कैसे?”
“आज तक मैंने जीव हत्या की है। मांसाहार किया है। अनेक अबोल जीव के जीवन को नष्ट किया है। उसका पश्चाताप यही होगा कि मैं संसार के जीवों को जीवन दूँ। मेरे इस कार्य से अनेक वृक्ष उगेंगे। जिसमें अनेक पंखी अपना घर बनाएँगे। उसे छाया मिलेगी। वृक्ष के साथ साथ अनेक जीव को शरण मिलेगी। मैंने जितने जीवों को मारा है उससे अनेक गुना जीव को आश्रय मिलेगा तभी मेरा पाप धुलेगा।”
“जिसे अपने पापों का ज्ञान हो जाय, जो उसका प्रायश्चित कर ले, वह पुण्यात्मा होता है। तुम पुण्यात्मा हो वत्स।”
“यह सभी आपकी कृपा का फल है।”
“क्या नाम है तुम्हारा वत्स।”
“आप मुझे जो भी नाम से पुकारे आज से वही मेरा नाम होगा।”
“नहीं वत्स। तुम अपना नाम कहो।”
“सुना है मोहन नाम भगवान कृष्ण का नाम है।” अब्बू ने मंदिर की तरफ़ मुख किया और दोनों हाथ जोड़ वंदन किया, “क्या आप मुझे मोहन कहकर पुकारोगे?”
“मोहन सुंदर नाम है। किंतु, तुम्हें अपने मूल नाम को छिपाने की आवश्यकता नहीं है। कहो क्या है नाम तुम्हारा?”
“मोहम्मद है नाम मेरा।”
“यह भी सुंदर नाम है।”

“आप मुझे मोहन ही कहो। वाह रे प्रभु। तेरी लीला अपरम्पार है। आज एक पापी मोहम्मद, मोहन बन गया।”
“तुम ज्ञानी भी हो मोहन।”
“जी। किंतु अभी भी एक प्रश्न हो रहा है।”
“कहो क्या है वह?”
“गुरुकुल में आप ने मुझे जो काम करने का आज अवसर दिया वह अवसर आप कल भी दे सकते थे। कल आपने मुझे काम क्यों नहीं दिया?”
“यदि मैं कल ही काम पर रख लेता तो तुम्हारे भीतर जो जागा है वह नहीं जागता। तुम बिना परिश्रम के, बिना अधिकार के किसी भी वस्तु को ग्रहण करना नहीं चाहते हो यह बात की प्रतीति ना तो तुम्हें होती और ना ही मुझे होती। हम दोनों को इस कार्य का मूल्य समज ही नहीं आता। हम दोनों इसे सहज मान लेते। सहज का कोई मूल्य नहीं होता।”
“मैं समाज गया। अब आपकी अनुमति चाहूँगा।”
“तुम्हारा कल्याण हो, मोहन।

20

मोहन भूमि को खोदने लगा। उसकी ध्वनि से आकर्षित कुछ बालक वहाँ आ गए, कौतुक द्रष्टि से देखने लगे। केशव भी आ गया।
“रुको, रुको मोहन काका।” मोहन रुक गया।
“मित्रों, यह मोहन काका है। आज से वह इस भूमि पर खेती करेंगे। कुछ वृक्ष उगाएँगे। क्या हम सब उसका साथ देंगे?”
“हां।” अनेक ध्वनि एक साथ गूँज उठी।
“चलो हम भी मोहन काका की सहायता करते हैं।” सब दौड़े।
“रुको। ऐसे नहीं। मोहन काका, सबसे पहले धरती को वंदन करते है। उसकी पूजा करते हैं। धरती से अनुमति माँगते है। उसकी प्रार्थना करते हैं। तत् पश्चात हम कार्य करेंगे।”

“हां, शास्त्र का यही विधान है।” एक बालक ने कहा।”
सभी विद्यार्थी धरती पर आसन लगाकर बैठ गए। पूजा की सामग्री आ गई। मंत्रोचार होने लगे।
समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमंडले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभयम पाद स्पर्शम क्षमस्वमे ।।
पूजा अर्चना सम्पन्न हुई। सबने हाथ जोड़े और एक स्वर में प्रार्थना की।
हे भूमि माता। एक बीज से अनेक धान्य देने वाली भूमि, तुम्हें हम प्रणाम करते हैं। हम हमारे परिश्रम से तुम्हारा सिंचन करेंगे। जल भी सिंचित करेंगे। तुम हमें हमारे श्रम का फल देना। तुम्हारी कृपा हम पर सदैव बरसाते रहना।
सभी ने भूमि को दण्डवत वंदन किया। मोहन ने भी।
“काका, अब आप कार्य कर सकते हैं।” एक ने कहा।
“हम सभी आपके साथ काम करेंगे।” दूसरे ने कहा। सबने प्रतिध्वनि से सहमति दी।
“बच्चों, आप सब का धन्यवाद। परंतु आपका काम है अभ्यास करना, पढ़ाई करना। यह काम मेरा है। हम सब को अपने अपने काम स्वयं करने चाहिए।”
सभी विद्यार्थी चले गए। गुल सारे उपक्रम को देखती रही। प्रत्येक बात को समझने का प्रयास करती रही। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। वह बस देखे जा रही थी। मन में उसके अनेक प्रश्न थे, मुख पर विस्मय।
काका काम करते रहे। गुल उसे दिखती रही। विचार करती रही, ‘मैं क्या करूँ यहाँ रहकर? मैं तो घर चली जाऊँगी। कल से यहाँ नहीं आऊँगी।’ दिवस व्यतीत हो गया।
प्रभात होते ही काका गुरुकुल जाने लगे।
“गुल, गुरुकुल चलोगी मेरे साथ?”
“नहीं। मेरा वहाँ कुछ काम नहीं है। मैं तो यहीं रहूँगी।”
काका चले गए। चंचल गुल समुद्र के तट पर चलने लगी। तरंगों से क्रीड़ा करने लगी। जब थक गयी तो तट की कन्दरा पर बैठ गई। समुद्र की ध्वनि सुनने लगी। धीरे धीरे समुद्र की ध्वनि के साथ साथ उसे ओम् का नाद भी सुनाई देने लगा।
‘यह तो वही गीत है जो केशव गाता है। यह केशव ही गा रहा है। कितना अच्छा गाता है वह। मैं चलती हूँ केशव के पास।’
गुल केशव के सम्मुख आ गई। केशव आँख बंध कर वही प्रणव नाद का गान कर रहा था। गुल के आगमन से वह अनभिज्ञ था। गुल ठीक उसके सम्मुख बैठ गई। आँखें बंद करके प्रणव नाद को सुनने लगी।
“ओम्, ओम्, ओम्....”
दोनों अपनी अपनी स्थिति में स्थिर थे, प्रसन्न थे। एक तरफ़ समुद्र की ध्वनि, बहती हवा की ध्वनि, तथा ओम् के नाद की ध्वनि। दूसरी तरफ़ गुल का अविचल, अटल मौन।एक अनूठा क्षण था वह। समय उस क्षण में निहित हो गया। वह अपनी गति भूल गया।
केशव का ओम् नाद सम्पन्न हुआ। उसने आँखें खोली। अपने सम्मुख गुल को पाया। वह अभी भी आँखें बंद कर बैठी थी। वह मौन थी, स्थिर थी। केशव स्वयं से कहने लगा,
‘गुल यहाँ? कब से बैठी होगी? आँखें क्यूँ बंद कर रखी है। स्थिर सी क्यूँ है? गुरुजी कहते हैं कि जब मनुष्य समाधि में होता है तब वह मौन होता है, स्थिर होता है, अविचल होता है। अन्य सभी बातों से अनभिज्ञ होता है। गुल भी ऐसे ही प्रतीत हो रही है। क्या गुल समाधि में है? मुझे गुल को पूछना चाहिए।’
‘नहीं केशव, गुरुजी ने यह भी कहा था कि किसी समाधिस्थ मनुष्य को समाधि से जगाना उचित नहीं है। जब उसकी समाधि स्वयं ही टूटे तभी उससे कोई बात करना चाहो तो कर सकते हो। तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए।’
‘यही सत्य है। मैं भी गुल की समाधि टूटने तक प्रतीक्षा करूँगा।’
केशव मौन हो गया, शांत हो गया। उसके विचारों का शमन हो गया। वह गुल की समाधि टूटने की प्रतीक्षा करने लगा। गुल को देखता रहा।
गुल की समाधि तूटी, उसने आँखें खोली। ओम् का नाद पूर्ण हो चुका था, केवल जलधि की तरंगों का नाद सुनाई दे रहा था। वह संगीत भी सुंदर था।
“गुल, तुम किस समाधि में चली गई थी?”
“मैं तो कहीं नहीं गई, यहीं हूँ। तुम्हारे सामने बैठी तुम्हारा मधुर गीत सुन रही थी।”
“मैं समाधि की बात कर रहा हूँ।”
“यह समाधि कहाँ है? मैं वहाँ कभी नहीं गई।”
“समाधि कीसी स्थल का नाम नहीं है।”

“केशव अभी तो तुमने कहा था कि मैं समाधि में चली गई थी। अब कहते हो कि समाधि कोई स्थल नहीं। तुम मुझे ....।”
“गुल, तुम समाधि ...।”
“यह समाधि है क्या, केशव?”
“समाधि, यह...।” केशव रुक गया। ‘इसे समाधि के विषय में क्या ज्ञान होगा? अभी तो इसे ओम् का भी ज्ञान नहीं है। ओम् नाद को वह गीत मानती है। अभी उससे समाधि के विषय में बात करनी उचित नहीं है।’
“गुल, तुम्हें मेरा गीत पसंद आता है?”
“हां।”
“मुझे ऐसे अनेक गीत आते हैं।”
“अनेक गीत? यह अनेक कितने होते हैं?”
“अनेक ...अनेक होते हैं। जैसे...जैसे...एक से अधिक होते हैं। दूसरा, तीसरा, चौथा, ऐसे गिनते जाओ। तुम्हें दूसरा गीत सुनाऊँ?”
“कौन सिखाता है यह सब गीत?”
“कल तुम गुरुकुल आइ थी। वहाँ हम यह गीत सीखते हैं।”
“मुझे भी सीखने हैं यह गीत। चलो गुरुकुल चलते हैं।”
“कुछ क्षण के लिए रुक जाओ। मैं सूर्य देव की पूजा कर लूँ।”
केशव ने सूर्य वंदना की, अर्घ्य अर्पण किए।
“चलो, गुल।”
केशव के साथ साथ गुल भी गुरुकुल की तरफ़ चल पड़ी। कुछ ही अंतर चले हि थे कि गुल दौड़ कर जाने लगी।
“गुरुकुल इस दिशा में है, गुल।”
“नहीं केशव, मैं गुरुकुल नहीं जा रही। मैं तो घर जा रही हूँ।” गुल दूर चली गई।
‘तो गुल का घर इस दिशा में है। घर। घर तो मेरा भी है। दूर, कहीं दूर।’
‘कितना दूर होगा?’
‘मुझे नहीं है इसका संज्ञान। तीन वर्ष हो गए मुझे मेरे घर वाले यहाँ छोड गए। तीन वर्ष से मैं घर नहीं गया। यह गुरुकुल ही मेरा घर बन गया। अब तो मुझे मेरे गाँव का नाम भी स्मरण नहीं रहा। कोई सम्बंध भी नहीं है मेरी स्मृति में। वहाँ भी मेरे मित्र थे, एक? नहीं, दो चार? आठ भी होंगे। किंतु अभी उनमें से किसी का भी स्मरण क्यूँ नहीं हो रहा?’
केशव ने प्रयास किया किंतु उसे कुछ भी याद नहीं आया।
‘यह गुरुकुल ही मेरा घर है, कुलपति ही मेरे पिता है, साथी विद्यार्थी ही मेरे मित्र।’
‘केशव, गुल भी तुम्हारी मित्र है।’
‘गुल? नहीं नहीं। वह मेरी मित्र कैसे हो सकती है?’
‘क्यूँ नहीं हो सकती?’
‘क्यूँ कि वह एक कन्या है और मैं एक बालक। किसी बालक की मित्र कोई कन्या कैसे हो सकती है?’
‘तुम ऐसी बातों में ना पड़ो, केशव। तुम उससे मित्रता करो, उसकी मित्रता का स्वीकार करो।’
‘परंतु वह तो मेरी मित्रता का स्वीकार नहीं करेगी।’
‘करेगी, अवश्य करेगी।’
‘कैसे कर सकती है? यदि वह मेरी मित्र होती तो इस प्रकार मेरे साथ गुरुकुल चलने के बदले दौड़कर घर चली न जाती। देखो। वह घर चली गई है। इस रेत को देखो। रेत पर उसके पैरों के चिन्ह अंकित हो गए हैं।’
केशव उन पदचिह्नों को देखता रहा। भीनी रेत पर शीघ्रता से दौड़ रहे छोटे छोटे पदचिन्ह। घर की दिशा में जाते हुए पदचिह्न। केशव उसे निहारता रहा। कुछ ही क्षण में जल की एक तरंग आइ, सभी पदचिह्न को मिटाकर लौट गई।
‘अब यहाँ कोई पदचिह्न नहीं है। तरंग ने उसे मिटा दिया है।’
‘समय की तरंग ने मेरे गाँव के स्मरणों को भी इसी भाँति मिटा दिया है।’
‘यही सत्य है। चलो छोड़ो इन बातों को। गुरुकुल जाना है तुम्हें।’
वह लौट गया।

21

एक नूतन प्रभात ने जन्म ले लिया। केशव समुद्र की उसी कन्दरा पर स्थित वही शिला पर बैठा था। प्रणव नाद कर रहा था। आज उसने आँखें बंद नहीं की थी। खुली आँखों से वह ओम् का जाप कर रहा था। आज वह सूर्य की दिशा में, सूर्य के सम्मुख नहीं बैठा था। वह उस दिशा में बैठा था जिस दिशा में कल गुल अपने घर की तरफ़ दौड़ गयी थी। खुली दृष्टि रेत के उस भाग पर स्थिर थी जहां कल गुल के पदचिन्ह थे। वह ओम् का जाप तो कर रहा था किंतु उसका मन, उसका ध्यान आज ईश्वर के प्रति नहीं था। कोई तन्मयता नहीं थी। जैसे वह यंत्रवत बोल रहा है, किंतु मन कहीं और है।

‘केशव, कहाँ हो तुम? क्या तुम इस प्रकार से प्रतिदिन ओम् जाप करते हो?’

‘नहीं। किंतु आज....।’

‘आज तुम गुल की प्रतीक्षा कर रहे हो।’

‘कदाचित।’

‘यहाँ किसी सम्भावना का अवकाश नहीं है, केशव। यह कदाचित नहीं है, सत्य है, केवल सत्य।’

केशव ने स्वयं को भीतर खिंचा, आँखें बंद की। ओम् स्मरण करने लगा। वह कोई भिन्न विश्व में चला गया। एक अंतराल के पश्चात वह जागा।

‘आज कुछ विशिष्ट अनुभूति हो रही है। आज से पहले यह अनुभव कभी नहीं हुआ। क्या था यह? जो भी था, अद्भुत था।’

उसने सूर्य को वंदन किया, जल से अर्घ्य दिया, गुरुकुल लौट गया।
अनेक दिवस तक केशव उस अनुभूति को प्राप्त करता रहा। सूर्योदय से पूर्व ही वह उस शिला पर बैठ जाता, आँखें बंद कर लेता, ओम् का जाप करता, सूर्य की प्रथम किरण उसके मुख पर पड़ती तो केशव के मुख की आभा अलौकिक हो जाती। वह आँखें खोलता, सूर्य को वंदन करता, समुद्री जल से अंजलि भरता, सूर्य को अर्घ्य देता।ओम् के नाद के साथ गुरुकुल लौट जाता।
ऐसी ही एक प्रभात को केशव ने नित्य कर्म किया। अर्घ्य के पश्चात वह समुद्र भीतर ही खड़ा रहकर समुद्र के तट को देखा। उसे कौतुक हुआ।
समुद्र की रेत पर तरंगें आती थी, समुद्र में समर्पित हो जाती थी। कुछ तरंगें छोटी थी जो तट तक नहीं जा पाती थी, कुछ बड़ी थी जो तट के भीतर घुस जाती थी, जैसे वह तट का अतिक्रमण कर रही हो। तरंगों का रंग कभी पिला तो कभी हरा प्रतीत होता था। तट की कुछ रेत भीगी थी, कुछ सुखी थी। कोई भी तरंग समान नहीं थी। वह तरंगों को देखने लगा। गिनती करने लगा।
एक, दो, तीन,....एक सौ दस, ग्यार ह,....
'केशव कब तक गिनते रहोगे। तुम्हारे पास जितने भी अंक है वह पूरे हो जाएँगे, समुद्र की तरंगें बंद नहीं होगी।'
अपने विचार पर वह हंस पड़ा।
'अरे वाह, मैं हंस भी सकता हूँ।'
वह पुन: हंसा, खुलकर हंसा। अपने हास्य की ध्वनि की वह वृधि करता रहा।
'आज इतना ज़ोर से हँसना है कि अविरत रूप से गर्जना कर रहे समुद्र की ध्वनि से भी ऊँची हो मेरे हास्य की ध्वनि।'
वह हँसता रहा, थक गया परंतु समुद्री की ध्वनि को परास्त नहीं कर सका।
वह तट के उस भाग पर गया जहां तरंगें रेत में समा जाती थी। वह तट पर चलता र हा। समुद्र की तरंगें उसे स्पर्श करती रही, भिगोती रही। उसका पीताम्बर पूर्ण रूप से भीग गया, कंचुक भी।
'इतना समय हो गया समुद्र के तट पर रहते हुए। कभी इस प्रकार तट पर, तरंगों के साथ कभी नहीं चला। इतने समय में कभी यह इच्छा क्यूँ नहीं हुई? तरं गों का यह स्पर्श, यह आवागमन, यह क्रीड़ा! कितना अनुपम है यह सब।'
केशव समुद्र के थोड़ा भीतर गया। कटी प्रदेश से नी चे का भाग जल में था। कई क्षण वह ऐसे ही जल के भीतर खड़ा रहा। सहसा उसने ओम् का जाप किया और पानी के भीतर डुबकी लगा दी। कुछ क्षण के पश्चात पानी से बाहर आया। पुन: डुबकी लगाई। पुन: बाहर आया। अनेक बार उसने ऐसा किया। उसे आनंद मिला।
'यदि मैं तैरना जानता तो समुद्र के अधिक भीतर जा सकता। यह कैसी विडम्बना है कि समुद्र के समीप रहते हुए इतना समय व्यतीत होने पर भी मुझे तैरना नहीं आता। मुझे तैरना सीखना होगा। मैं सीख लूँगा।'
उसने तै रने का प्रयास किया, विफल र हा। पुन: प्रयास किया, पुन: विफल हो गया। वह प्रयास करता रहा। विफल होता रहा। थक गया, समुद्र से बाहर निकल आया।
'यह भीगा तन, भीगे वस्त्र। सूरज की धूप, समुद्री पवन। एक भीनी सुगंध। यह तरंगों से उठता मधुर संगीत। यह भीगी रेत। यह एकांत। समुद्र की, समुद्र के तट की यह विशालता। यह डुबकी, यह तै रना। यह विफल होना। मंत्रों, वेदों, उपनिषदों, यज्ञ आदि से भिन्न ध्वनि। यह दिशाओं का मौन। गतिशील विश्व से भिन्न यह स्थिरता। यह ठहराव। यह सब कहाँ था इतने अंतराल तक? क्या यह सब य हीं थे? यहीं थे तो कब से थे? क्वचित् आज ही यह सब यहाँ आए हो, क्वचित् युगों से यहीं हो।
युगों से? तो मैं उसे क्यों नहीं देख सका? क्यूँ उसका संज्ञान नहीं था मुझे? क्या मेरी आँखें इसे नहीं देख रही थी? अथवा मेरी आँखें ही बंद थी?'
'तेरी आँखें तो खुल्ली थी किंतु दृष्टि बंद थी, केशव।'
समुद्र के भीतर से उड़कर कुछ पंखी तट पर आ गए। केशव ने उसे देखा। कुछ और पंखी भी समुद्र से तट पर आ गए।
'यह पंखी तो समुद्र की दिशा से आए हैं। क्या वह समुद्र के भीतर थे?'
केशव ने समुद्र में देखा जहां से यह पंखी उड़कर आए थे। दूर अनेक श्वेत पंखी तैर रहे थे। उड़ र हे थे। पानी के भीतर चांच डालते थे, मछली पकड़ते थे। प्रसन्न होते थे। कुछ ध्वनि उत्पन्न कर रहे थे। उस पानी में एक लय था, संगीत था। समुद्र की तरंगों के संगीत से पंखियों का संगीत मिल जाता था। जैसे दोनों की जुगलबं दी हो। पंखियों की उस क्रीड़ा को देखता रहा केशव।
'यह पंखी समुद्र में थे। आज तक मैंने उसे भी नहीं देखा। ऐसा क्यूँ हो रहा है? क्या मेरी आँखें...?'
'नहीं, नहीं। मेरी आँखें तो ठीक ही है। यह मेरी दृष्टि की ही भूल है जो इन सब बातों को देख नहीं रही थी।'

तट पर श्वेत पंखी उड़ रहे थे, दौड़ रहे थे, कुछ तो तरंगों में नहा रहे थे। केशव वहीं रेत पर बैठ गया। भीगे वस्त्र, भीगा तन अब सुख गया था। सूरज की धूप थोड़ी तीव्र हो गयी थी। पवन की गति नहीं बदली थी। वह शीतल था। समय स्थिर हो गया था। केशव ने आँखें बंद कर ली। उस क्षण की प्रसन्नता का आनंद लेने लगा।
एक अंतराल के पश्चात केशव का ध्यान भंग हुआ। उसे किसी के पदचाप सुनाई दिए।
'क्या कोई है मेरे आस पास?'
उसने उन पदचापों पर ध्यान केंद्रित किया। निश्चय ही किसी की पदध्वनि है। मुझे देखना होगा।
केशव ने आँखें खोली। सम्मुख कोई नहीं था। बाएँ देखा, कोई नहीं था। दाएँ देखा, कोई नहीं था।
समुद्र को देखा। कोई आकृति शीघ्रता से कंदरा के भीतर चली गई। वह उस कन्दरा को देखता रहा। आकृति के बाहर आने की प्रतीक्षा करता रहा। समय व्यतीत होने पर भी कोई बाहर नहीं आया।
'कौन होगा? कोई तो था। कोई मनुष्य था? कोई प्राणी भी हो सकता है। कौन होगा? मैं जाकर देखता हूँ।'
केशव उठा। कंदरा की तरफ़ जाने के लिए चला ही था कि उसने देखा की भीगी रेत पर किसी मनुष्य के पदचिह्न है जो उस कन्दरा तक जाते हैं।
'अवश्य कोई मनुष्य ही होगा। छोडो उसे। आज अधिक समय व्यतीत हो गया है इस तट पर। अब मुझे गुरुकुल लौट जाना चाहिए।'
केशव चल पड़ा, गुरुकुल की तरफ़। वह चलता था। उसे लगा कि कोई है जो उसके पीछे पीछे आ रहा है। किसी की पदध्वनि उसे सुनाई देने लगी। वह रुका, धीरे से पीछे मुड़ा। कोई कंदरा में घुस गया।

22

'कोई तो है जो मेरा पीछा कर रहा है। कौन होगा? क्यों करता होगा? क्या चाहिए उसे मुझसे ?'
कुछ क्षण वह रुक गया। कन्दरा से कोई नहीं आया।
'भीतर जाकर देख लूँ कि कौन है?'
वह कन्दरा की तरफ़ चलते ही रुक गया।
'कोई लुटेरा भी हो सकता है। मुझे नहीं जाना चाहिए।'

वह लौट गया। चलने लगा।
उसके कानों ने कुछ ध्वनि को पकड़ा। वह शांत हो गया। ध्वनि को सुनने लगा।
"ओम्, ओम्, ओम्, "
'यह तो ओम् का नाद है। कौन बोल रहा है? उसने ध्वनि पर ध्यान दिया।
'यह तो कन्दरा से आती ध्वनि है। कौन होगा? किसकी ध्वनि है यह? अरे, यह तो किसी कन्या की ध्वनि है। कोई कन्या ओम् का जाप कर रही है।एक कन्या इस समय? इस कन्दरा में क्यूँ जाप कर रही है? मैं देखता हूँ कि कौन है वहाँ?'
'इस कन्दरा में कोई योगिनी तो नहीं? यदि ऐसा है तो मुझे भीतर नहीं जाना चाहिए। मेरे भीतर जाने से उसकी तपस्या भंग हो सकती है, उसका ध्यान भंग हो सकता है। ऐसा तो अनुचित है। नहीं मैं भीतर नहीं जाऊँगा। मैं यहीं खड़ा रहूँगा, कन्दरा के बाहर। उसकी तपस्या पूर्ण होने तक।'
केशव कन्दरा के मुख पर रुक गया। उस ध्वनि को सुनने लगा।
"ओम्, ओम्, ओम् ...."
'कितना मधुर स्वर है इसका? कितनी दिव्य अनुभूति है इन स्वर में! कन्दरा के भीतर अन्य कोई ध्वनि नहीं है। कितना शांत, कितना स्थिर ! ओम् के एक उच्चार के पश्चात कन्दरा के भीतर उठते प्रतिध्वनि में भी अनूठा अनुभव हो रहा है।'
अनेक क्षण व्यतीत हो गए। ओम् का नाद पूर्ण हुआ।
"केशव, कन्दरा के भीतर नहीं आओगे?"
केशव सावधान हो गया।
"कौन हो तुम? क्या तुम कन्दरा छोड़कर बाहर नहीं आ सकती? तुम हो कौन?"
भीतर से कोई प्रतिक्रिया नहीं आयी। कन्दरा मौन हो गई। केशव धैर्य रखे खड़ा रहा।
"केशव, तुम्हें विस्मरण हो गया है क्या? मैं ही बाहर आती हूँ।"
वह कन्दरा से बाहर आइ, केशव के सम्मुख आ गई।
"केशव, मैं गुल हूँ।"
केशव गुल को देखता रह गया। चंचल सी गुल अब धीर गम्भीर लग रही थी। मुख पर स्थिर भाव थे जो उसे उसकी आयु से बड़ी दिखा रहे थे। अधरों पर एक स्मित था, जो अत्यंत मोहक था। यह स्मित उसे अपनी आयु से छोटी दिखा रहा था। उस स्मित में कोई आकर्षण था। वह मोहक था। उसके केश खुले हुए थे।
"केशव, कहाँ हो तुम?"
केशव जगा, "गुल, यह क्या है? तुम्हारी आभा आज कुछ भिन्न ही निखरी है।"
केशव अभी भी उस आभा के प्रभाव में था।
"तुम्हारा यह रूप मुझे ..., मुझे कुछ ही समज नहीं आ रहा है। क्या है यह सब?"
"केशव, आओ यहाँ बैठो। सब बताती हूँ।" गुल कंदरा के मुख पर स्थित छोटी सी एक शिला पर बैठ गई। सम्मुख दूसरी शिला पर केशव भी बैठ गया। उसके मुख पर अनेक प्रश्न थे, अनेक उत्सुकता थी।
"केशव, इस कन्दरा के भीतर कभी गए हो?"
केशव के मुख पर नकार के भाव थे।
"यह वही कंदरा है जिसके ऊपर जो शिला है उस पर बैठ कर तुम ओम् का जाप किया करते हो।" गुल ने ऊपर की तरफ़ संकेत किया, केशव ने उस दिशा में देखा।
"ऊपर बैठे बैठे जब तुम ओम् का जाप करते हो तब मैं इसी कन्दरा में, यहीं जहां अभी मैं बैठी हूँ, बैठ जाती हूँ। तुम जैसे ही ओम् का उच्चार करते हो, वह शब्द इस कंदरा में भी सुनाई देता है। मैं उसे सुनती रहती हूँ। सुनते सुनते मुझे भी ओम् का यह जाप, जिसे मैं कभी गीत कहा करती थी, सिख गई। जाप पूर्ण कर तुम सूर्य को अर्घ्य देते हो उस मंत्र को भी मैं सुनती हूँ। तुम गुरुकुल लौट जाते हो तब मैं यहाँ बैठ कर ओम् का जाप करती हूँ। यह सब मैंने तुमसे ही सिख है केशव।"
केशव गुल की बातें सुनता रहा, मौन होकर, मंत्रमुग्ध होकर, कौतुक के साथ, विस्मय के साथ।
"गुल, तुम्हें यह ओम् का जाप, यह सूर्य मंत्र सीखना ही था तो तुम मुझे कह देती। मैं तुम्हें सिखा देता। तुम मेरे सम्मुख बैठती, मैं तुम्हें सिखाता जाता। इस प्रकार इस कन्दरा में छुपकर बैठने की क्या आवश्यकता थी?"
हंस पड़ी गुल। वही मोहक स्मित। केशव उस स्मित को देखता रहा।
"केशव, मेरे मुख पर यह जो स्मित देख रहे हो वह भी मैंने तुमसे ही सिखा है।"
केशव अचंभित हो गया,स्मित भी? स्मित तो व्यक्ति का सहज भाव है, जो प्रत्येक का भिन्न भिन्न होता है। वह स्वयं ही प्रकट होता है। कोई किसी से स्मित करना कैसे सिख सकता है? कोई किसी को स्मित करना तो नहीं सिखा सकता।"

“किंतु यह सत्य है, केशव। कुछ दिवस पहले जब हम मिले थे तब से तुम वही स्मित करते रहे हो। परंतु...।
गुल रुक गई। केशव को निहारने लगी। मौन हो गई।
“परंतु से आगे भी कोई बात होती है, कोई शब्द होते हैं।”
“परंतु मेरे पास इन परंतु से आगे कोई शब्द नहीं है।”
“शब्द अवश्य नहीं होंगे परंतु बात तो अवश्य ही होगी। वास्तव में जब कोई परंतु शब्द पर अटक जाता है, रुक जाता है, मौन हो जाता है तो समझ लो कि इस परंतु के उपरांत ही कोई बात अवश्य है जो मूल्यवान है, महत्वपूर्ण है। परंतु एक ऐसी कला है जहां यह शब्द बोलने वाला बात कहना भी चाहता है और उसे छुपाना भी चाहता है। इस परंतु शब्द से आगे बढ़ो, तुम उस बात को प्रकट कर दो, गुल।”
गुल हंस पड़ी। कंदरा उसके प्रतिघोष से भर गई। केशव को यह प्रतिघोष मनभावन लगा। उसके अधरों पर स्मित आ गया। गुल उस स्मित को देख बोली, “यही स्मित, हां, यही स्मित जो तुम्हारे होंठों पर है। मैं इसी स्मित की बात कर रही हूँ।”
“तो कहो, गुल। मैं भी तो उसे सुनने को उत्सुक हूँ।”
“मेरे परंतु शब्द से आगे की बात यही थी कि आज तुम्हारे मुख पर से वह स्मित अलोप था। मुझे तो आशंका होने लगी थी कि कहीं तुम्हारा वह स्मित लुप्त तो नहीं हो गया?”
“तुम्हारे हास्य से इस कन्दरा से उठे प्रतिघोष ने मुझे प्रसन्न कर दिया तो मेरा स्मित सहज ही मेरे मुख
पर आ गया। इस बात को यहीं छोड़ो। हम कुछ ....।”
“चलो स्मित की बात अभी छोड़ देती हूँ किंतु ...।”
“किंतु शब्द भी परंतु शब्द का ही भाई है। तुम किंतु परंतु शब्द का उपयोग ना किया करो।” केशव व्याकुल हो गया।
“केशव, शांत हो जाओ। मैं तो कहना चाहती थी कि स्मित की बात छोड देते हैं किंतु तुम स्मित को कभी नहीं छोड़ना।”
गुल हंस पड़ी, केशव भी।
“मैं कह रहा था कि यदि तुम्हें ओम् के जाप सीखने थे, सूर्य मंत्र सीखना था तो तुम मेरे सम्मुख बैठ जाती, इस कंदरा से ऊपर वाली शिला पर। मैं तुम्हें सिखाता। इस प्रकार इस कंदरा में छुप कर सीखना मुझे समझ नहीं आया।”
गुल कुछ क्षण मौन रही। एक प्रलंब श्वास लिया और बोली, “केशव, यदि मैं सामने बैठ कर सीखती तो तुम्हारा ध्यान भंग होता, और भी अनेक वस्तु हमें आकर्षित करती। मेरा ध्यान भी भंग होता, उन सभी वस्तुओं को देखकर। यह कन्दरा में कोई व्यवधान नहीं, एक ही ध्यान। और यहाँ उठती प्रतिध्वनि एक भिन्न ही अनुभव देती है। वह स्वयं में ही कोई गीत है।”
“इस कंदरा से उत्पन्न होने वाले प्रतिघोष का अनुभव तो मैंने भी किया है।”
“कब? तुम तो आज से पहले कभी इस कन्दरा में नहीं आए। तुमने ही तो कहा था।”
“किंतु आज तो आया हूँ। आज तो अनुभव किया है।”
“वह कैसे?”
“तुम्हारे हास्य का प्रतिघोष। कुछ क्षण पहले ही सुना था हम दोनों ने।”
“हां केशव। एक काम करते हैं। तुम यहाँ बैठो। मैं ऊपर जाकर गाती हूँ, तुम सुनो।”
गुल कंदरा से बाहर आइ, ऊपर की तरफ़ गई। उसकी दृष्टि सूर्य पर गई। उसने एक दृष्टि सारे तट पर डाली।
“केशव, मुझे विलम्ब हो रहा है, मुझे जाना होगा। मैं जाती हूँ।” गुल घर तरफ़ दौड़ने लगी।
“कहाँ जा रही हो? रुको तो...।” केशव ने पुकारा परंतु वह भागती रही।
“मैं ...कल ... आऊँगी।” गुल के बाक़ी के शब्द समुद्र तरंगों की ध्वनि में विलीन हो गए। तट पर, खड़क पर, कन्दरा पर, भीगी रेत पर अपने पद चिन्हों को अंकित करती हुई गुल चली गई। एक लय, एक ताल के साथ गति कर रहे गुल के चरणों को केशव देखता रहा। उससे उत्पन्न संगीत, समुद्र की ध्वनि तथा पवन की गति सब एकरूप हो गया। गुल दृष्टि से दूर जा चुकी थी। उसके पदचिह्न अभी भी रेत पर अंकित थे।
‘यह पदचिह्न कितने जीवंत लग रहे हैं। जैसे अभी यह चरण चल पडेंगे और यह ध्वनि भी, यह संगीत भी।’
संगीत के उस भाव विश्व में केशव खो गया। आँखें बंद कर वह उसकी अनुभूति करने लगा।
क्षण पश्चात केशव ने आँखें खोली। संगीत ने अपनी धुन बदल दी थी। गुल की पदध्वनि शांत हो गई थी। केशव ने रेत पर देखा। वहाँ गुल के पदचिह्न भी नहीं थे।
‘कहाँ गए यह पदचिह्न? कहाँ गया वह संगीत?’
समुद्र की अविरत तरंगें तट को भिगो रही थी। तट पर अंकित चिन्हों को मिटा रही थी।
केशव गुरुकुल लौट गया।

23

एक नूतन प्रभात जन्म ले रहा था। केशव समुद्र की तरफ़ चलने लगा। उस कंदरा तक जा रहे चरणों में एक उत्साह था तो मन में अनेक विचार जो चलते चरणों से भी अधिक तेज गति से चल रहे थे। चरणों से भी पहले केशव का मन, केशव के विचार उस कन्दरा तक पहुँच गए।
‘मैं उस कंदरा की शिला पर बैठ जाऊँगा, ओम् के नाम का जाप करूँगा, सूर्य को अर्घ्य अर्पित करूँगा। वह कंदरा के भीतर होगी, मेरे सारे मंत्रों को सुनेगी, उसे स्मरण करने का प्रयास करेगी, स्वयं उसका उच्चारण करेगी। मैं नीचे उतरकर कन्दरा के भीतर जाऊँगा, उसका मंत्र जाप सुनूँगा, वह हंसेगी, उसका प्रतिघोष सुनकर प्रसन्न हो जाऊँगा, उसके अधरों पर वही स्मित होगा, वह कंदरा से निकलकर ऊपर शिला पर बैठ जाएगी जहां मैं बैठता हूँ। वह ओम् का नाद करेगी, मैं कन्दरा के भीतर रहकर उसे सुनूँगा। वह कहती थी कि कन्दरा के भीतर उस नाद का संगीत भिन्न ही होता है।’
‘क्या वह भिन्न ही होगा? कैसा भिन्न होगा?’
‘मुझे इस प्रश्न का उत्तर ज्ञात नहीं।’
जब केशव उस शिला तक पहुँचा तब उसके मन का विचार वहीं आसन लगाकर बैठ गया था।
अपने विचार को अंकुश में लेते हुए केशव ने आदेश दिया, “चलो उठो यहाँ से। यह मेरा आसन है।”

विचार ने आसन रिक्त कर दिया, उठकर हवा के साथ समुद्र में विलीन हो गया।
केशव अपने आसन पर बैठ गया। प्रतिदिन की भाँति अपनी आराधना में लग गया। मन से सभी विचार हट गए। केवल ईश्वर में ही मन रत हो गया। ओम् के जाप पूर्ण हुए, आँखें खोली, समुद्र के भीतर गया, अंजलि भर सूर्य को अर्घ्य देने के लिए अंजलि को समुद्र से ऊपर उठाया, सूर्य की प्रति मुख किया और आँखें बंद की। तभी कानों में एक मंत्र पड़ा।
ऊँ ऐही सूर्यदेव सहस्त्रांशो तेजो राशि जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहणार्ध्य दिवाकर:।।
ऊँ सूर्याय नम:,
ऊँ आदित्याय नम:,
ऊँ नमो भास्कराय नम:।
अर्घ्य समर्पयामि।।
'आज मेरे साथ यह मंत्र कौन बोल रहा है? क्या स्वयं वायु देव मेरा साथ दे रहे हैं? अथवा समुद्र साथ गा रहा है?'
केशव ने पाँच अंजलि भरी, पाँच अर्घ्य दिए। सूर्य को वंदन किया, आँखें खोली। वह अचंभित रह गया। उसके समीप गुल थी, समुद्र के भीतर, आँखें बंद कर सूर्य को वंदन कर रही थी वह। उसने भी अंजलि भरी, सूर्य अर्घ्य मंत्र बोला, अंजलि अर्पण की। पुन: एक बार वही क्रम में कार्य किया। वंदन किया, आँखें खोली। केशव को देखा, स्मित दिया।
"गुल, तुम?"
गुल ने उत्तर नहीं दिया, स्मित दिया।
"तुम्हें यह सूर्य मंत्रभी आता है ?"
"मुझे यह गीत भी आता है।"
"गुल उसे गीत नहीं मंत्र कहते हैं।"
"यह मंत्र क्या होता है?"
"मंत्र का अर्थ है पवित्र शब्दों से बनी ईश्वर की प्रार्थना। जिसे ईश्वर की पूजा के लिए गाया जाता है।"
"जिसे गाते हैं उसे गीत कहते है। तो यह गीत ही हुआ ना?"
"नहीं गुल। गीत थोड़ा भिन्न होता है। मंत्र केवल ईश्वर की उपासना के लिए, प्रार्थना के लिए ही होते हैं।"
"तभी तो यह गीत ही है।"
"नहीं यह मंत्र है"
"नहीं गीत है।"
"मंत्र।"
"गीत।"
"मंत्र।"
"गीत।"
"मंत्र।"
"गीत।"
"ठीक है तुम उसे गीत कहती हो तो तुम्हारे लिए यह गीत ही होंगे।"
"और तुम्हारे लिए?"
केशव निरुत्तर रहा। 'यह कन्या गीत तथा मंत्र का अंतर नहीं समझ सकती।'
"गुल, यह कहो कि कल तुम दौड़ कर जा रही थी तब तुमने कहा था कि...।"
"कि मुझे विलम्ब हो रहा है। मैं कल आऊँगी।"
"हां, तुमने यही कहा था।"
"तो मैं आज आ गई।"
"परंतु तुम्हें विलम्ब किस बात का हो रहा था?"
"यदि तुमसे बातें करने लगी तो आज भी विलम्ब हो जाएगा।"
"किस बात का विलम्ब?"
"मदरसा जाने का।"
"मदरसा क्या है? कहाँ है? तुम वहाँ क्यूँ जाती हो? प्रतिदिन जाती हो?"
"इतने सारे प्रश्न? कोई मूर्ख ही इतने प्रश्न एक साथ करते हैं।"

“कोई जिज्ञासु भी ऐसे प्रश्न कर सकता है। प्रश्न करने वाला प्रत्येक व्यक्ति मूर्ख नहीं होता।”
“किंतु हमारे मदरसा में तो कहते हैं कि जो प्रश्न करता है वह मूर्ख होता है। वो कहते हैं कि तुम प्रश्न न करो। जो भी कहा जाता है, सिखाया जाता है उसे स्वीकार कर लो क्यूँ कि वह अल्लाह के शब्द है। उसके शब्दों पर विश्वास रखना होगा, संशय नहीं।”
“ऐसा कौन कहते हैं?”
“मौलवी जी कहते हैं ऐसा।”
“यह मौलवी क्या होता है? कौन होते हैं?”
“केशव, इतना भी नहीं ज्ञात है तुम्हें? तुम्हारे गुरुकुल में कुलपति जी तुम्हें पढ़ाते हैं वैसे ही हमारे मदरसा में जो पढ़ाते हैं उसे मौलवी जी कहते हैं।”
“मेरे कुछ प्रश्नों के उत्तर मुझे मिल गए।”
“तो अब कौन सा प्रश्न निरुत्तर रहा?”
“मदरसा तुम्हारा गुरुकुल है, तुम वहाँ पढ़ाई करने जाती हो। मौलवी तुम्हें पढ़ाते हैं। क्या तुम वहाँ रहती हो? जैसे मैं गुरुकुल में रहता हूँ? और यह मदरसा है कहाँ।”
“नहीं, मैं मदरसा में नहीं रहती। मैं मेरे घर रहती हूँ, आपके काका के साथ। यह मदरसा थोड़ी दूरी पर है।”
“तो क्या मैं वहाँ आ सकता हूँ?”
“क्यूँ? क्या करोगे वहाँ आकर?”
“तुम्हारे मौलवी जी से मिलूँगा। कुछ प्रश्न पूछूँगा।”
“नहीं, तुम वहाँ नहीं आ सकते।”
“क्यूँ नहीं आ सकता?”
“तुम आ तो सकते हो परंतु तुम उसे प्रश्न नहीं पूछ सकते।”
“यदि प्रश्न नहीं पूछ सकते तो मौलवी जी से मिलने का कोई अर्थ नहीं रहता। किंतु प्रश्न तो पूछना आवश्यक होता है। प्रश्न करने पर क्या करेंगे मौलवी जी?”
“वह क्रोधित हो जाएँगे।”
“ऐसा कभी हुआ था क्या?”
“एक बार हुआ था, मेरे साथ ही। मैंने कुछ पूछा था तो ....।”
“तुमने क्या पूछा था?”
गुल ने दूर द्वारका नगर की तरफ़ दृष्टि कर ली, अपने हाथ को नगर की तरफ़ संकेत करते हुए बोली, “केशव, वह दूर एक मंदिर है, देख रहे हो?”
“हां, वह ऊँची धजा वाला। किसका मंदिर है वह?” केशव ने अज्ञानी की भाँति पूछा।
“मैंने भी यही प्रश्न किया था हमारे मौलवी से।”
“तो उसने क्या उत्तर दिया?”
“उत्तर? कोई उत्तर नहीं दिया उसने, अत्यंत क्रोधित हो गए।”
“तो तुमने क्या किया?”
“मैंने तथा मेरे घरवालों ने हाथ जोड़ क्षमा माँग ली तब उसका क्रोध शांत हुआ।”
“यदि आप लोग क्षमा नहीं माँगते तो?”
“तो मेरी पढ़ाई रुक जाती। मुझे मदरसा छोड़ देना पड़ता।”
“गुल, यदि ऐसा कभी हो जाए तो तुम्हें चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हें प्रश्न पूछते रहना है।”
“तो मेरी पढ़ाई कैसे होगी?”
“हमारे गुरुकुल में प्रश्न करने वालों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। हमारे यहाँ प्रश्न करने की, संशय करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। तुम गुरुकुल आ जाना, वहाँ जितने चाहो उतने प्रश्न करना, संशय करना। तुम्हें तुम्हारे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर भी मिलेगा, संशय का समाधान भी मिलेगा। और ज्ञान भी।”
“क्या ऐसा हो सकता है? मैं प्रश्न कर सकती हूँ?”
“अवश्य। गुरुकुल में तो यही होता है। वास्तव में हमारी शिक्षा पध्धती ही प्रश्नों तथा उनके उत्तरों वाली है। क्या तुम्हारे मन में प्रश्न है?”
“मेरे मन में प्रश्न ही प्रश्न है। मैं अवश्य गुरुकुल आऊँगी। अभी मुझे जाना होगा, मदरसा जाने का समय हो गया।”

गुल कल की भाँति दौड़ गई, कल की भाँति ही भीनी रेत पर अपने पदचिह्नों को अंकित कर गई। केशव उसे देखता रहा, समुद्र की तरंगें उन पदचिह्नों को आज भी मिटा गई।
केशव समुद्र के भीतर गया, तैरने का प्रयास करने लगा। डुबकीयां लगाई। पुन: तैरने का प्रयास। पुन: दुबकियाँ। थक गया। बैठ गया तट पर।
सूरज की किरणें तीव्र हो गयी। ठंडी हवा अपनी शीतलता त्यागने लगी। दूर मंदिर की धजा मंद मंद लहराती दिखी।
‘यह मंदिर। भगवान कृष्ण का मंदिर। दवारका में आकर वह द्वारिकाधीश बन गए। कितना सुंदर तथा भव्य मंदिर है यह। गुल ने यही मंदिर पर प्रश्न किया था- किसका है यह मंदिर? और मौलवी क्रोधित हो गए थे। इस प्रश्न में क्रोधित होने की कौन सी बात थी?’
‘रहें होंगे उसके अपने कारण। यह मंदिर है सुंदर। एक बार तो देखना है इस मंदिर को। एक बार कृष्ण के दर्शन भी करने हैं मुझे।’
‘मन करता है मंदिर जाने का? द्वारिकाधीश के दर्शन करने का?’
‘ऐसी कोई तीव्र इच्छा तो नहीं है। कभी अवसर मिला तो चला जाऊँगा।’
‘तब गुल को भी साथ ले जाना।’
‘गुल को? ले तो चलूँगा किंतु कहीं मेरे साथ मंदिर चलने से मौलवी जी क्रोधित हो गए तो?’
केशव को कोई उत्तर नहीं सूझा।
“ हे कृष्ण!” केशव के मुख से शब्द निकल पड़े। लौट गया वह। मंदिर जाने का, गुल को मंदिर साथ ले चलने का विचार भी केशव के मन से लौट गया।

24

एक नूतन प्रभात क्षितिज के गर्भ में जन्म ले रहा था। केशव के मन में भी कुछ जन्म ले रहा था। क्षितिज में जो जन्म ले रहा था वह शाश्वत था, केशव के मन में वह आज प्रथम बार जन्म ले रहा था। सम्भव है कि वह अंतिम बार भी हो, सम्भव है कि वह भी शाश्वत हो जाय।
वह कन्दरा की शिला के समीप गया, रुक गया। उसने सभी दिशाओं में देखा। एक विहंगावलोकन किया। संतुष्ट नहीं हुआ। प्रत्येक दिशा को ध्यान से देखने लगा। कुछ समय पश्चात वह दूसरी कन्दरा के समीप जाकर खड़ा हो गया। स्थिर सा, अकर्मण्य सा।
“केशव, वहाँ क्या कर रहे हो?” गुल के शब्दों ने गुल के भाव विश्व को आंदोलित किया। उस विश्व को त्याग कर वह वास्तविक विश्व में प्रवेश कर गया, जहां गुल उसके सामने खाड़ी थी। उसके शब्दों में कोई प्रश्न था, वही प्रश्न उसके मुख पर भी था।
“केशव, वहाँ क्या कर रहे हो? कहाँ हो तुम? तुमने आज तुम्हारा स्थान बदल लिया, आसन भी बदल लिया। मैं जो हूँ तुम्हें तुम्हारे वही आसान पर होने की प्रतीक्षा करती रही। किंतु तुम तो यहां आसन लगाए हो।”
केशव हंस दिया।
“ऐसे हँसो नहीं।”
“क्यूँ? क्या हो गया भला?”
“तुम ऐसे हंसते हो तो मुझे लगता है कि तुम मेरा उपहास कर रहे हो। मुझे तुम्हारी चिंता हो रही है और तुम हो कि मेरी चिंता की, मेरी ही उपेक्षा कर रहे हो?”
“शांतम पापम, शांतम पापम। गुल, शांत हो जाओ। इतनी उग्रता कहाँ से आ गई?” केशव गुल के समीप गया। उसकी आँखों में देखकर बोला, “मैं कभी तुम्हारा उपहास नहीं कर सकता। ना ही तुम्हारी उपेक्षा।”
“किंतु तुम्हें तुम्हारे स्थान पर न देखा तो मुझे चिंता होने लगी। तुम भी …।”
“चिंता अब तो छोड़ो। अब तो मैं तुम्हारे सम्मुख हूँ।”
केशव ने एक स्मित दिया, गुल उस स्मित में बह गई।
“ठीक है। किंतु आज तुम यहाँ अपने स्थान पर क्यूँ नहीं थे? तुमने गीत गाए? तुमने सूर्य की बंदना की? अर्घ्य दिया? अथवा

किसी प्रतिमा की भाँति बस खड़े ही रहे?"
"अरे बाप रे। तुम तो किसी निष्ठुर आचार्य की भाँति प्रश्न कर रही हो, डाँट रही हो। यदि तुम मेरी आचार्य होती तो ...?"
"तुम प्रश्नों के उत्तर नहीं देते हो। मेरे प्रश्नों की उपेक्षा कर देते हो। ऐसा क्यूँ?" केशव के मुख पर स्मित आ गया। मोहक स्मित!
"तुम तो कहते थे ना कल कि हमारे यहाँ प्रश्न किए जाते हैं, उनके उत्तर दिए जाते हैं। प्रश्न करना सम्मान की बात है। यही हमारी शिक्षा पद्धति है। यही कहा था ना तुमने? बोलो?"
"जी, मैंने यही कहा था मित्र गुल।" केशव ने हाथ जोड़ नत मस्तक किया।
"तो मेरे प्रश्नों के उत्तर दो। मुझे उत्तर की ही अपेक्षा है, तुम्हारे स्मित से भरे उपहास की नहीं।" गुल गम्भीर हो गई।
"यदि उत्तर भी हो, स्मित भी हो तो?" केशव ने वही मोहक स्मित दिया। गुल पुन: बह गई उस स्मित में। उसके अधरों पर भी स्मित आ गया।
"सुनो गुल, तुम ठीक कह रही हो। आज मैं वहाँ अपने स्थान पर नहीं था। मैंने आज कोई गीत नहीं गाए। ना ही सूर्य की बंदना की और नहीं अर्घ्य दिए। मैं बस यहीं खड़ा रहा, किंतु किसी निश्चल, निर्जीव प्रतिमा की भाँति नहीं। एक जीवंत व्यक्ति की भाँति मैंने अपने भीतर अनेक स्पंदनों का अनुभव किया। अनेक चेतनाओं से मेरा परिचय हुआ। मैं पूर्ण स्थिर था किंतु मेरे आसपास सब गतिमान था, प्रवाहित था। यह चेतना, यह स्पंदन, यह प्रवाह, यह गति। इन सबका अनुभव किया है मैंने आज।" केशव ने गुल के भावों को देखा। वहाँ नए प्रश्नों ने जन्म ले लीया था। किंतु वह स्थिर सी केशव को सुन रही थी।
"एक प्रभात जब जन्म लेता है तो, तुम्हें ज्ञात है, वह अपने साथ क्या क्या लेकर आता है? हमने कभी इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया।"
"क्या क्या लेकर आता है यह प्रभात?"
"यह में वर्णन नहीं कर सकता।"
"क्यूँ? तुम कहते हो कि तुमने उसका अनुभव किया है। तो कहो ना?"
"हां मैंने उसका अनुभव किया है। देखो यह अनुभव शब्द भी मिथ्या है। वास्तव में वह अनुभव नहीं है, अनुभूति है।"
"अनुभव तथा अनुभूति में कोई अंतर नहीं है। कोई भेद नहीं है इन दोनों शब्दों में। यदि तुम उसे अनुभूति कहते हो तो अनुभूति ही सही, किंतु उस अनुभूति का वर्णन करो। मुझे उत्सुकता है उसे सुनने की।"
"तुम्हारी उत्सुकता का सम्मान करता हूँ मैं। परंतु यह बात सहज नहीं है, जटिल है।"
"तो?"
"मुझे दो बातें कहनी है। एक, प्रत्येक शब्द का अर्थ भिन्न होता है, स्वतंत्र होता है। अनुभव तथा अनुभूति भिन्न शब्द हैं, अर्थ भी भिन्न है। दूसरा, अनुभव का वर्णन किया जा सकता है, अनुभूति का नहीं। जब हम किसी विषय का वर्णन करते हैं तब हम हमारे पास उपलब्ध शब्दों का उपयोग करते हैं। हमारे शब्दकोश में शब्दों की संख्या सीमित है। अनुभूति असीम होती है। हम सीमित से असीमित को व्यक्त करने का प्रयास करते हैं। क्या यह उचित है?"
केशव रुका, दूर समुद्र की तरंगों को उठते देखता रहा। मौन गुल केशव के शब्दों की प्रतीक्षा करने लगी।
"एक और बात। हम जब किसी बात को शब्दों के द्वारा व्यक्त करते हैं तब शब्दों के चयन में विशेष ध्यान देना होता है। किंतु होता यह है कि हम जो भी शब्द प्तत्क्षण याद आ जाए उस शब्द का ही प्रयोग कर लेते हैं। अधिकांश वह शब्द प्रयोग उचित नहीं होता है। अनुचित शब्द प्रयोग से हमारी बात का मूल भाव, मूल मर्म ही नष्ट हो जाता है। जैसे अभी अभी मैंने किया था, प्रथम मैंने अनुभव कहा था, किंतु अब मैं उसे अनुभूति कह रहा हूँ। हमें ऐसे उपक्रम से बचना होगा।"
"किंतु तुम यह तो कह सकते हो कि वह अनुभव,नहीं अनुभूति सुंदर थी, अद्भुत थी, अनुपम थी।"
"आनंदप्रद थी, अलभ्य थी, अलौकिक थी, अद्वितीय थी, अवर्णनीय थी। यही ना?"
"हां केशव, यही। तुम यह अब तो कह सकते थे।" गुल ने केशव के मुख को अपनी दृष्टि का केंद्र बिंदु बना दिया। केशव के अधरों पर स्मित आ गया।
"नहीं, गुल। हमें ऐसा नहीं करना चाहिए। यह अनुचित है।"
"तुम यह उचित है, यह अनुचित है, आदि अपना निर्णय तो बता देते हो किंतु उसका तर्क नहीं देते। बिना तर्क सुने, समझे मैं तुम्हारी कोई बात स्वीकार नहीं करती।"
"तो तर्क भी सुन लो। ध्यान से सुनना। अब मैं जो तर्क देने जा रहा हूँ वह अत्यंत गहन है, गम्भीर भी। तनिक भी ध्यान भंग होगा तो पूरे मर्म को चुक जाओगी। क्या तुम इसके लिए तैयार हो?"
गुल के अधरों पर स्मित आ गया।

"तो चलो मेरे साथ, समुद्र के भीतर चलो।"
दोनों समुद्र के भीतर गए।
"बस यहीं रुक जाओ। इन तरंगों को देखो। इसे देखकर तुम क्या कहोगी?"
गु ल तरंगों को देखने लगी, विचार कर ने लगी। मन ही मन शब्दों को रच ने लगी।
"यह तरंगें अत्यं त चंचल है। हैं ना केशव?"
"अवश्य, यह तरंगें चंचल तो है ही।"
"तो मैंने उसका वर्णन उचित किया ना?" गुल प्रसन्न हो गई। मुख पर विजय के भाव आ गए।
"उचित तो है ही किंतु अपूर्ण भी है। क्या तरंगें मात्र चंचल ही होती है?"
"अपूर्ण? तरंगें चंचलतो होती है। और क्या होता है इन तरंगों में?"
"तरंगों में सातत्य होता है, अविरत ता होती है, अल्प जीवी होती है।"
"यह सब भी हम वर्णन कर सकते हैं।"
"क्या क्या वर्णन करोगी? एक ही तरंग के अनेक रूप होते हैं, अनेक गुण होते हैं। उन्हें देखकर
प्र त्येक व्यक्ति के भीतर जो भाव उत्पन्न होते हैं वह भी भिन्न भिन्न होते हैं। तरंगों के भाव, रूप, गु ण आदि असीमित है । शब्द सीमित है। पुन: हम सीमित से असीमित को व्यक्त करने की चेष्टा करते हैं। वह अपूर्ण रह जाती है। पूर्ण वर्णन सम्भव ही नहीं है किसी अनुभूति का।"
"हमारी भाषा में इतने सारे अलंकार हैं। क्या वह असीमित को व्यक्त करने में समर्थ है?"
"अलंकार। भाषा के अलंकारों की भी मर्यादा है। जब हम कहते हैं कि यह समुद्र सुंदर है, उसकी ध्वनि कर्णप्रिय है, आदि आदि। तब हम एकअपराध करते हैं।"
"अपराध? हम तो समुद्र के गुणों से उसकी प्रशंसा करते हैं। किसी की प्रशंसा अपराध कैसे हो गई?"
"यह सब बताऊँगा। किंतु इस समय नहीं। उचित समय आने दो।"
"कब आएगा वह समय? आज कीइस क्षण उचित नहीं है?"
"प्रतीक्षा करो।"
"मैं करूँगी।"
"तुम्हें मदरसा नहीं जाना है क्या?"
"ओह, मैं तो भूल ही गई। मैं जाती हूँ।"
"किंतु जाते जाते मेरे एक प्रश्न का उत्तर ....।"
केशव के शब्द गुल के कानों तक पहुँचने से पूर्व ही समुद्र की ध्व नि में विलीन हो गए। गुल के पद चिह्न भीगी रेत पर अंकित हो गए। तरंगों ने उसे मिटा दिया।

25

नए प्रभात की सुगंध की अनुभूति करते हुए केशव गुरुकुल से समुद्र की तरफ़ जा रहा था। सूर्योदय के साथ जो अनुभूति कल हुई थी उस रस का पान वह आज भी करना चाहता था। वह प्रसन्न था। सूर्योदय की अनेक आशाएँ, अपेक्षाएँ लिए वह कन्दरा के समीप आ गया। अंधकार अभी भी अपने अस्तित्व का संघर्ष कर रहा था। क्षण प्रति क्षण वह परास्त होता जा रहा था। किंतु अभी भी प्रकाश ने उस पर विजय प्राप्त नहीं की थी।
वह अपने निश्चित स्थान पर, शिला पर आसन ग्रहण करने के लिए आगे बढ़ा, किंतु ठहर गया। उस शिला पर कोई बैठा था। कोई मानव आकृति वहाँ पहले से ही स्थान ग्रहण कर चुकी थी। उसने स्वयं को रोका। प्रकाश इतना नहीं था कि वह आकृति को पहचान सके। उसने ऐसा प्रयास भी नहीं किया। उस आकृति की स्थिति में व्यवधान किए बिना ही वह दूर चला गया। किसी दूसरी कन्दरा पर जाकर सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगा।
समय अपनी स्वाभाविक गति से चलता रहा। पूर्व में सूर्योदय हो गया। अपने साथ सूर्य अनेक विषय, अनेक आनंद, अनेक सम्भावनाओं, अनेक आशाओं, अनेक अपेक्षाओं तथा अनेक अनुभूति को लेकर आया।
केशव ने उस अनुभूति का आनंद लेने का प्रयास किया। कुछ सीमा तक उसे वह प्रसन्नता भी मिली। किंतु वह आज की अनुभूति से संतुष्ट नहीं था।
सूर्य जब पूर्ण रूप से उदय हो गया तो केशव ने उस कन्दरा की शिला पर बैठी आकृति की तरफ़ देखा। वह शिला रिक्त थी। उस आसन पर कोई नहीं था।
'उस शिला पर कोई तो था। एक आकृति को मैंने अवश्य ही देखा था। तो कहाँ गई वह आकृति?'
'केशव, वह तुम्हारा भ्रम भी हो सकता है। हो सकता है कि वहाँ कोई था ही नहीं। तुम्हारे मन में कोई आकृति थी और तुम अंधकार में उसी आकृति को उस शिला पर देखने लगे हो। हो सकता है इसी कारण तुम्हें भ्रम जो गया हो।'
'नहीं। भ्रम का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता यहाँ। अंधकार कितना भी गहन हो मैं मेरी इस शिला को देखने में भूल नहीं कर सकता।'

‘तुम्हारी शिला?’
‘हां, मेरी शिला। वह शिला मेरी ही है। मैं कितने समय से उस पर बैठता हूँ। मेरे उपरांत वहाँ अन्य कोई नहीं बैठता इतने समय से। तो वह मेरी ही हुई ना?’
“केशव, यह मेरा है ऐसे भ्रम में हमें नहीं रहना चाहिए।”
गुल के शब्दों ने केशव को अचंभित कर दिया।
“गुल, तुम? और तुमने मेरे मन के भीतर चल रहे द्वन्द को कैसे सुन लिया?”
“हां, केशव मैं। तुम्हारे भीतर चल रहे संवाद को मैंने सुन लिया। क्यूँकि कभी कभी हमारे भीतर चलते संघर्ष की ध्वनि इतनी तीव्र होती है कि हमारे उपरांत अन्य कोई भी उसे सुन लेता है। इसमें आश्चर्य करने की कोई बात ही नहीं है, केशव।”
केशव गुल के मुख को देखता रहा। केशव के मुख पर अनेक विस्मय नृत्य कर रहे थे। वह दुविधा में था।
“केशव, क्या बात है? इतने सारे विषय को अपने मुख पर पहने हुए हो। किस दुविधा में हो?”
“कल जब तुम जा रही थी तब मेरे पास एक प्रश्न था।”
“तो पूछ डालो उसे। किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो?”
“किंतु अब मेरे पास कुछ अन्य प्रश्न भी है।”
“यदि मेरे वश में होगा तो मैं उसके उत्तर दूँगी”
“यदि नहीं होगा तो क्या करोगी?”
“तो मुझे मौन ही रहना होगा। यही उचित होगा ना, केशव?”
“कदाचित यही उत्तम मार्ग है।”
“तो पूछ लो, केशव।”
“कल ही मेरे मन में प्रश्न था कि कई दिवसों से मैं देख रहा हूँ, तुम्हारी भाषा, भाषा में प्रयोग होते शब्द कुछ भिन्न ही है। जब हम प्रथम बार मिले थे तब जो भाषा तुम बोल रही थी वह सामान्य व्यक्ति की भाषा थी। किंतु अब तुम जो भाषा बोल रही हो वह ....।”
“वह भाषा गुरुकुल की भाषा है, यही ना?”
“तुम तो गुरुकुल नहीं आती। तो यह भाषा?”
“केशव तुम भूल रहे हो। यह सत्य है कि मैं तो गुरुकुल नहीं आती। किंतु गुरुकुल स्वयं ही मेरे पास आता है।”
“वह कैसे?”
“कितना सरल है इसका उत्तर !”
“कभी कभी मैं सरल बातों से अनभिज्ञ हो जाता हूँ।”
“मैं तुम्हारा उससे परिचय करवा देती हूँ, केशव। विगत अनेक दिवसों से मेरे अब्बू, क्या कहते हो तुम्हारी गुरुकुल की भाषा में उसे? तात। हैं ना? आप उसे तात ही कहते हो ना?”
“हां, पिता को तात ही कहते हैं।”
“मेरे तात श्री गुरुकुल आते हैं। गुरुकुल में रहकर वह सबको सुनते हैं। तुम्हें तो ज्ञात है कि गुरुकुल में जिस स्थान पर मेरे तात श्री कार्य करते हैं वहाँ गुरु के शब्द, विद्यार्थी के शब्द अनायास ही कानों पर सुनाई देते हैं। वह उसे सुनते हैं, समजने का प्रयास करते हैं। उसे याद रखते हैं। जब घर आते हैं तब वह गुरुकुल की सभी बातें मुझे कहते हैं। मैं उसे ध्यान से सुनती हूँ। उनके शब्दों को सुनती हूँ, उसके अर्थों के विषय में तात से पूछती हूँ। वह मेरे प्रश्नों के उत्तर देते हैं।”
“यह तो मैंने कभी सोचा ही नहीं था।”
“सोचा तो तुमने यह भी नहीं है कि तुम जिसे प्रतिदिन मिलते हो वह तुमसे भी कुछ सिख सकती है।”
“तो क्या तुम मुझसे भी ...?”
“इसमें आश्चर्य क्यूँ हो रहा है?”
“तो क्या इस प्रकार कोई मनुष्य सिख सकता है?”
“क्यूँ नहीं? मनुष्य चाहे तो किसी से भी, कहीं भी, किसी भी रूप में सिख सकता है। सीखने के लिए सबसे उत्तम माध्यम श्रवण है। आप भी ऐसे ही सीखते हो ना, गुरुकुल में। तात तो कहते थे कि यह सुनते हुए सीखने की पद्धति तो युगों से चली आ रही है। वेद, शास्त्र, पुराण आदि इसी परम्परा से सिखाए जाते हैं।”
“यह तो आश्चर्य की बात है कि मुझसे भी कोई सिख लेता है। यह सत्य है की वेदों के ज्ञान की परम्परा श्रुति तथा स्मृति की ही रही है। तुम्हें तो इतना सारा ज्ञान है। मैं तो यही समझ रहा था की...।”
“गुल नाम की एक कन्या केवल समुद्र के तट पर विचरने को ही आती है। उसे इस मंत्रों में, इस ज्ञान में कोई रुचि नहीं है।

वह तो बस मदरसा जाती है, वहाँ जो कुछ सिखाया जाता है वह सीखती होगी। गुरुकुल का ज्ञान, शास्त्रों का ज्ञान उसके लिए नहीं है।"
"तुम्हारे भीतर ज्ञान की इतनी तीव्र तृषा होगी उसका मुझे कभी ज्ञान ही नहीं हुआ। मैं इसके लिए दोषी हूँ।"
"इसमें किसका भी दोष नहीं है। मुझे भी यह ज्ञात नहीं रहा कि कब मुझे इन बातों में रुचि होने लगी, कब मेरी भाषा अनायास ही बदल गई। यह परिवर्तन स्वयं ही हो गया। यह तो संगति का प्रभाव है केशव।"
"तुम्हारे इस नए रूप का स्वागत करता हूँ।"
"धन्यवाद केशव। तुम्हें अभी एक अन्य रूप का भी स्वागत करना होगा।"
"अब कौन सा अन्य रूप है?"
"वही रूप जिसे तुम उस शिला पर ढूँढ रहे हो।"
"उस शिला पर? वहाँ एक आकृति थी जब मैं यहाँ आया था। उस शिला पर जो मेरा आसन रहा है सदा से, उस पर वह आकृति बैठी थी।"
"उस समय गहन अंधकार था। तो तुमने उसे वहीं बैठे रहने दिया। तुमने उसे वहाँ से उठाया नहीं।"
"ऐसा मैं कैसे कर सकता हूँ? वह शीला पर मैं सदैव बैठता अवश्य ही हूँ किंतु वह मेरी सम्पत्ति नहीं है। वह आकृति मेरे आने से पूर्व ही वहाँ स्थान ग्रहण कर चुकी थी। वह किसी अवस्था में स्थिर थी। मैं उसकी उस स्थिति में व्यवधान नहीं डालना चाहता था। तो मैं यहाँ इस शिला पर बैठ गया। किंतु वह आकृति अब वहाँ नहीं है। कहाँ गई वह आकृति?"
"वह तुम्हारे सम्मुख ही है केशव।"
"मेरे सम्मुख तो तुम हो। तो क्या...?"
"वह आकृति मैं ही थी।"
"तुम थी वहाँ? मैं तो समझा कि कोई अन्य व्यक्ति, कोई अज्ञात यात्रिक़ वहाँ है।"
"क्या तुम्हें यह ज्ञात होता कि वह व्यक्ति मैं हूँ, गुल है, तो भी तुम उस अवस्था में व्यवधान नहीं डालते?"
"कदाचित नहीं। कदाचित हां।"
"हां अथवा ना?"
"दोनों सत्य है अथवा दोनों मिथ्या है। अथवा एक सत्य है, एक मिथ्या है। यह सब छोडो, गुल। यह बताओ कि इतने सवेरे सवेरे तुम क्यूँ आयी थी? और यही शिला पर क्यूँ बैठ गई थी? तुम कहीं अन्य स्थान पर भी...।"
"अन्य स्थान पर भी बैठ सकती थी किंतु हो सकता है कि उस स्थान पर तुम्हारा ध्यान जाए ही नहीं।"
"किंतु आने का प्रयोजन तो कहो।"
"कल तुमने कहा था कि सूर्योदय के साथ आने वाला प्रभात अपने साथ कितनी सारी बातें लेकर आता है। और तुमने यह भी कहा था कि उसे शब्दों में वर्णित करने से अच्छा होगा कि स्वयं उसकी अनुभूति करें। बस यही अनुभूति के लिए मैं सूर्योदय से पूर्व चली आयी।"
"मेरे आने से ही पूर्व चली आइ। सूर्योदय की इस अनुभूति के लिए तुम्हारी इस उत्कंठा को मेरा वंदन।" केशव ने दो हाथ जोड़ गुल को वंदन किया।
"गुल, तुमने आज सूर्योदय देखा क्या? उसकी अनुभूति की?"
"हां केशव। मैंने सूर्य को उदय होते हुए देखा। आकाश के बदलते रंगों को देखा। अंधकार से प्रकाश होते हुए देखा। सूर्योदय की अनुभूति को देखा। उसे मेरे भीतर मैंने बंद कर लिया है।"
"तो इस अनुभूति से तुम प्रसन्न हो।"
"पूर्ण रूप से प्रसन्न हूँ।"
"किंतु आज की अनुभूति से मैं प्रसन्न नहीं हूँ।" केशव ने एक दीर्घ श्वास लिया।
"ऐसा क्यूँ हुआ? क्या तुम अपनी शिला पर किसी अन्य को देखकर उस विचार में खो तो नहीं गए थे? क्या तुम उस बात से विचलित थे?"
"नहीं गुल। ऐसी बातों से विचलित नहीं होता हूँ मैं। किंतु कल जो अनुभूति हुई थी ऐसी अनुभूति आज नहीं हो सकी।" केशव मौन हो गया। गुल विचार में पड़ गई। एक प्रलंब विचार के पश्चात गुल बोली।
"कल जो अनुभूति हुई थी वह सहज थी, अनायास थी। आज तुमने उसे प्रयत्न पूर्वक प्राप्त करने की चेष्टा की है। तो आज की इस अनुभूति की कक्षा कल की उस अनुभूति की कक्षा से उच्च तो नहीं हो सकती। तुम अपेक्षाएँ लेकर चले थे। उस अपेक्षा से वास्तविकता की तुलना करने लगे। जब तुलना होती है तो निराशा ही होती है। तुम्हें यह तुलना के पाप से बचना था।

प्रत्येक प्रभात अपने साथ कुछ नूतन बात लेकर आता है। वही नाविन्य ही हमारे आकर्षण का कारण होता है। यदि यह नवीनता ही नहीं रही तो प्रकृति एकविधता में बंध जाएगी। एकविधता में कभी सौंदर्य नहीं होता। प्रकृति को किसी अपेक्षा विहीन ही देखो। किसी तुलना से परे रखो। एकविधता से मुक्त रखो। यही इसका वास्तविक सौंदर्य है।"
गुल के मुख पर स्मित था। वह सूर्य को देख रही थी। केशव उसे देख रहा था।
"केशव इस सूर्य को देखो। वह तो प्रति दिन ही अपनी झोली में कितना कुछ लेकर आता है? किंतु मनुष्य उस के प्रति ध्यान ही नहीं देता। वह तो बस उलझा रहता है अपनी ही समस्याओं में, अपने ही विचारों में, अपनी ही चिंताओं में।"
"तो क्या तुम उस अनुपम सौंदर्य का पान कर सकी?"
"हां, यही तो मेरा उद्देश्य था। मैंने उस रस का अमृत पान किया है आज।"
"तो वह कैसा था? वर्णन कर मुझे बताओ।"
"नहीं केशव। तुम्हारा कहना सत्य था कि ऐसे सौंदर्य का पान ही होता है, वर्णन नहीं होता। मैं इस सीमित से असीमित को व्यक्त नहीं कर सकती।" गुल के अधरों पर मोहक स्मित था।
उस स्मित को साथ लिए गुल घर चली गई, रेत पर अपने पदचिह्नों को अंकित करती हुई। देर तक केशव उन पदचिन्हों को देखता रहा। आज समुद्र की लहरों ने उसे मिटाने की चेष्टा नहीं की।

26

केशव जब शिला के समीप पहुँचा तब गुल उस शिला पर बैठी थी। आज केशव ने उसे आकृति नहीं माना।

“केशव, तुम्हें आज भी इस शिला पर बैठने का अवसर नहीं मिलेगा।”
“तो क्या?”
“तुम नीचे कन्दरा में जाओ। मैंने तुम्हें कहा था ना कि कंदरा में रहकर तुम यदि उन मंत्रों को सुनोगे जो इस शिला पर बैठ कर कोई उच्चार करता है तो वह एक अद्भुत अनुभव होता है। मैंने उस अनुभव को प्राप्त किया है। मैंने तुम्हें वचन दिया था कि एक दिवस मैं यहाँ से मंत्रों का गान करूँगी और तुम इस कन्दरा में जाकर उसे सुनोगे। तुम्हें इस बात का स्मरण है ना?”
“मुझे स्मरण है।”
“तो जाओ, कन्दरा में जाओ। मेरे मंत्रों के गान का आनंद लो।”
“किंतु, गुल तुम ....।”
“क्या ? किंतु क्या?”
“तुम्हें मंत्र आते हैं, किंतु उनके उच्चार का एक नियम होता है। क्या तुम इस नियम से परिचित हो? यदि हम मंत्रों के शुद्ध उच्चार नहीं करते तो मंत्रों के अर्थ बदल जाते हैं। और ऐसा करना मंत्रों का ...।” “मैंने जो कुछ भी सिखा है तुमसे ही सिखा है। तुम्हारी शिक्षा में जो होगा वही मैं प्रकट करूँगी।”
“किंतु तुम मुझे यह सुनाना क्यूँ चाहती हो?”
“इस के दो लाभ है। एक, तुम कन्दरा में उठते इस ध्वनि तथा प्रतिध्वनि से परिचित होंगे। दूसरा, तुम्हें भी यह समझने का अवसर मिलेगा कि तुम जो उच्चार कर रहे हो, मंत्र गान कर रहे हो वह कितना शुद्ध है। क्यूँ कि मेरा मंत्र गान तुम्हारे ही गान का प्रतिध्वनि होगा। इस प्रकार तुम अपनी ही शिक्षा की कसौटी भी कर सकोगे। यदि आवश्यक हुआ तो सुधार भी कर लोगे।”
“बात तो तुम ठीक कर रही हो। मैं अभी जाता हूँ कन्दरा के भीतर।” केशव चला गया।
गुल ने प्रथम ओम् के नाद का उच्चारण किया। वह अविरत ओम् का जाप करती रही। भीतर कन्दरा के, केशव उसे सुनता रहा। शिला से उठता ध्वनि कन्दरा के भीतर प्रवेश करते हुए प्रतिध्वनित होने लगा। एक एक नाद शुद्ध था, सुंदर था, मधुर था। सुनते सुनते केशव उसमें मग्न हो गया। उसने आँखें बंध कर ली। उस ध्वनि-प्रतिध्वनि से रचित मधुर सृष्टि में स्वयं को डुबो दिया। जैसे वह किसी समाधि में हो। उस नाद के गुंजन ने उसे अलौकिक आनंद प्रदान किया।
पश्चात कुछ समय के, गुल ने ओम् के नाद का जाप सम्पन्न किया। वह कन्दरा के भीतर गई। वहाँ अभी भी नाद का प्रतिध्वनि सुनाई दे रहा था। उसने देखा कि केशव नेत्र बंद किए बैठा है। वह उसे देखती रही। धीरे धीरे प्रतिध्वनि शांत हो गया। केशव ने आँखें खोली। सम्मुख गुल को पाया।
“तुम यहाँ?” केशव के मुख पर विस्मय था।
“हां मैं। तुम्हें कैसा लगा मेरा मंत्र नाद? कहीं कोई त्रुटि हो तो कहो।”
“त्रुटि तो कुछ नहीं है। किंतु यह कहो कि तुम यहाँ थी तो वह नाद कौन कर रहा था?”
“वह नाद मेरा ही था। तुम जो सुन रहे थे वह विज्ञान के कारण था। वेदों के उपरांत विज्ञान भी ज्ञान ही होता है।”
“विज्ञान मैंने भी सिखा है। बस आज परख भी हो गई। अब ओम् के नाद के अतिरिक्त कौन से मंत्र का जाप करोगी?”
“अब मैं जो मंत्र का जाप करूँगी उसे ध्यान से सुनना। सूर्य का उदय होने जा रहा है। तुम यहीं बैठ कर सुनो।” गुल शीघ्रता से कंदरा छोड़ कर शिला पर बैठ गई।
गुल ने अपने मधुर कंठ से मंत्रोच्चार प्रारम्भ किया –
ऊँ ऐही सूर्यदेव सहस्त्रांशो तेजो राशि जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहणार्ध्य दिवाकर:।।
ऊँ सूर्याय नम:,
ऊँ आदित्याय नम:,
ऊँ नमो भास्कराय नम:।
गुल ने पाँच बार इस मंत्र का जाप किया। ध्वनि से प्रतिध्वनि होते हुए वह केशव ने सुना। अनेक बार उसकी प्रतिध्वनि कन्दरा में केशव को सुनाई देती रही। धीरे धीरे उसका शमन हो गया। गुल कन्दरा के भीतर आ गई।
“मेरे इस मंत्र गान में कोई त्रुटि तो नहीं थी, गुरु जी।”
“नहीं, कोई त्रुटि नहीं थी। तुम तो पूर्ण शुद्ध रूप से मंत्र गान करती हो। इतना शुद्ध मत्रोच्चर तो हमारे कई सहपाठी भी नहीं कर सकते जो गुरुकुल में अध्ययन करते हैं, कुलपति जी के मुख से सुनते रहते हैं।”
“इसमें चकित होने की बात नहीं है, केशव। मैं तुमसे सुनकर सिख गई। तुम्हारे मंत्र यदि अशुद्ध होते तो मेरे मंत्र भी शुद्ध नहीं होते।”

“इस मंत्र के उपरांत अन्य कौन सा मंत्र सिखा है तुमने?”
“तुम ओम् जाप के पश्चात यही मंत्र बोलते हो, इस शिला पर बैठ कर। मुझे इसके उपरांत कुछ नहीं आता। इसके उपरांत कितने मंत्र होते हैं सिखने के लिए?”
“संस्कृत ग्रंथों में असंख्य मंत्र है।”
“तो तुम्हें वह सब मंत्र आते हैं? मुझे भी सिखाओ ना वह सब।”
“मुझे अनेक मंत्र आते हैं। किंतु वह केवल अगाध समुद्र की एक बुंद जितने ही हैं। गुरुजी कहते हैं कि यदि कोई मनुष्य जीवनभर इन मंत्रों को सिखने की चेष्टा करता रहे तो भी वह सभी मंत्र नहीं सिख सकता।”
“मुझे उस अगाध समुद्र के एक बिंदु से क्या क्या सिखा सकते हो?”
“तुम्हें इन मंत्रों में रुचि है, मुझे इस बात का कभी ध्यान ही नहीं रहा। तुम सदैव मंत्र को गीत कहा करती थी। यह मेरा दोष है कि मैं तुम्हारी इस पिपासा को समझ नहीं सका।”
“स्वयं को दोष ना दो, केशव। दोष तो मेरा भी है कि मैंने कभी मेरी इस इच्छा को प्रकट ही नहीं किया। मैं मंत्र तथा गीत का भेद नहीं समझ सकती थी। किंतु मेरे तात ने मुझे वह बताया तब से मेरी रुचि मंत्र सिखने में जाग गई। तभी से मैंने इस कन्दरा में रहकर तुमसे एक मंत्र सिख लिया। क्या तुम मुझे मंत्र सिखाओगे?”
“मैं गुरु तो नहीं ही किंतु मैं प्रयास करूँगा।”
“तुमने मुझे प्रसन्न कर दिया, केशव।” केशव ने गुल के मुख मण्डल पर उन रेखाओं को देखा। केशव ने स्मित दिया, गुल ने भी।
“केशव, मेरी इन बातों में मैं यह भूल ही गई कि तुम्हें कंदरा के भीतर प्रतिध्वनि सुनकर कैसी प्रसन्नता मिली?”
“प्रसन्नता? नहीं तो।”
“तो क्या मेरा मंत्र गान इतना कर्कश था?”
“मेरा तात्पर्य यह नहीं था।”
“तो तुम मेरे मंत्र को सुनकर प्रसन्न क्यूँ नहीं हुए?”
“मेरा पूरा ध्यान तुम्हारे मंत्रों की शुद्धि -अशुद्धि पर था। ऐसे में मैं मंत्रों की प्रतिध्वनि से रचित संगीत का आनंद लेना भूल गया।”
“तो मैं ऊपर जाती हूँ, पुन: मंत्रोच्चार करती हूँ।”
“नहीं, अभी नहीं। अभी तो इस कंदरा को देखो। ईसकी संरचना देखो। अपने आप स्वयं इसमें एक सौंदर्य का सर्जन हुआ है। यह एक तरह से तो पाषाण ही है। किंतु इस पाषाण में भी इतना सौंदर्य, इतना लावण्य है जो मुझे आकर्षित कर रहा है। मुझे इसे ध्यान से देखना है। मुझे इस पूरी कन्दरा को देखना है।”
केशव कन्दरा के भीतर जाने लगा।
“केशव, रुको।”
“तुम भी मेरे साथ चल रही हो, गुल? चलो आ जाओ।”
“नहीं, मैं नहीं आ रही हूँ। तुम्हें भी जाने से रोक रही हूँ।”
“क्यूँ?” प्रश्न को लेकर केशव गुल के सम्मुख खड़ा हो गया।
“केशव, तुम भी ना, इतने वर्षों से समुद्र के तट पर रहते हो किंतु समुद्र को ज्ञात नहीं कर सके। समुद्र के व्यक्तित्व को समझा नहीं है तुमने।”
“क्या तात्पर्य है तुम्हारा?”
“अभी समुद्र के पानी को देखो। धीरे धीरे वह बढ़ रहा है। समुद्रवेला का समय हो रहा है। समुद्रवेला के समय समुद्र का यह पानी इस कन्दरा को भर देता है। जब तक समुद्रवेला रहती है, तब तक ना तो कोई इस कन्दरा के भीतर जा सकता है ना ही कोई भीतर से बाहर आ सकता है। वह समुद्र जल कन्दरा के भीतर तक जाता है। तुम्हें ज्ञात है कि यह कन्दरा कितनी गहन है? सुना है यह अत्यंत गहन है। इसका अंत ही नहीं। कहीं हम इसके भीतर रहे तो भीतर ही रह जाएँगे। इस अंतहीन कन्दरा में अभी जाना उचित नहीं होगा। हमें लौट जाना होगा।”
“क्या वास्तव में यह कन्दरा अंतहीन है? तभी तो मुझे इसके अंत तक जाना ही होगा। मैं तो चला। तुम्हें आना हो तो आ सकती हो, जाना चाहो तो जा सकती हो।”
केशव कन्दरा के भीतर जाने लगा। गुल दौड़ती हुई केशव के मार्ग में जाकर खड़ी हो गई।
“मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। मेरी बात मान लो।” गुल केशव के मार्ग को रोके खड़ी हो गई।
“तुम मेरा मार्ग क्यूँ रोक रही हो? मुझे तो जाने दो।”

“केशव, यह कन्दरा में आगे गहन अंधकार हो जाएगा। हो सकता है हवा भी ना मिले। ऊपर से, भीतर अनेक समुद्र जीव भी रहते होंगे। कोई जीव-जंतु तुम्हें दंश दे सकता है। तुम्हें कुछ भी हो सकता है। क्यूँ इन छोटी छोटी बातों को तुम समझ नहीं रहे हो? क्यूँ स्वयं को नष्ट करने की जिद लिए हो?”

केशव गुल की बातें सुनकर रुक गया। कुछ क्षण विचार कर बोला, “ठीक है। तुम कहती हो तो मैं रुक जाता हूँ। चलो, हम लौट जाते हैं।”

केशव लौटने लगा। गुल भी उसके पीछे लौट गई।

27

“गुल, आज मैं तुम्हें मंदिर ले चलता हूँ। तुम चलोगी मेरे साथ?”
“क्या तुम मुझे उस मंदिर ले चलोगे?” गुल ने दूर कृष्ण के मंदिर की तरफ़ संकेत करते हुए पूछा।
“मुझे उस मंदिर ले चलो। जब से उस मंदिर को देखा है तब से मेरा मन कर रहा है उसे देखने को। चलो चलें?”
“गुल, चलते हैं। किंतु उस मंदिर नहीं, हम दूसरे मंदिर जा रहे हैं।”
“दूसरा मंदिर? किस मंदिर की बात कर रहे हो।”
“तुम चलो तो मेरे साथ। मैं तुम्हें एक ऐसे मंदिर में ले चलता हूँ जो समुद्र के भीतर है।”
“किंतु मुझे तो कृष्ण का वही मंदिर देखना है।” गुल ने पुन: उस भव्य मंदिर की तरफ़ संकेत किया।
“गुल, वह भगवान द्वारिकाधीश का मंदिर है, जो द्वारका नगरी में है। तुम्हें ज्ञात है कि हम समुद्र तट पर हैं, जो मंदिर से दूर है। अभी वहाँ नहीं जा सकते।”
“तो कब जा सकते हैं? आज नहीं तो कल जा सकते हैं? तुम मुझे वहाँ ले चलोगे केशव?”
“उस द्वारकाधिश के मंदिर जाने का मेरा भी मन है। किंतु ना जाने क्यूँ कोई मुझे रोक रहा है।”
“क्या गुरुकुल तुम्हें रोक रहा है? अथवा कुलपति जी रोक रहे हैं?”
“गुरुकुल के सभी सहपाठी वहाँ जाते हैं। कुलपति जी भी मुझे वहाँ जाने को प्रेरित कर रहे हैं।”
“तो समस्या क्या है? अन्य कौन रोक रहा है तुम्हें वहाँ जाने से?”
“मेरा मन ही नहीं होता है उस द्वारिकाधीश का दर्शन करने को। कोई है जो मुझे रोक रहा है।”
“कौन है वह?”
“स्वयं भगवान द्वारिकाधीश। यह कृष्ण, यह वासुदेव, यह मुरलीधर स्वयं मुझे रोक रहा है, गुल।”
“केशव, तुम मेरा उपहास कर रहे हो?”
“ऐसा तुम्हें क्यूँ लग रहा है?”
“जिसे तुम ईश्वर कहते हो, सारा विश्व उसे भगवान मान्यता है, जो मंदिर में मूर्ति बन खड़ा है वह कृष्ण स्वयं तुम्हें उसके दर्शन के लिए आने से रोक रहा है? यह बात उपहास नहीं तो और क्या है? क्या कोई ईश्वर किसी को रोकता है कभी? क्या कोई मूरत कभी ऐसा कर सकती है? केशव, तुम उपहास करना छोड़ दो और मुझे मंदिर ले चलो अथवा कह दो कि तुम मुझे वहाँ नहीं ले जाना चाहते हो।” गुल ने अपनी अप्रसन्नता प्रकट की, क्रोध भी।
“तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी अप्रसन्नता उचित है गुल। किंतु मैं सत्य कह रहा हूँ।”
“तुम्हारा नाम केशव ही है ना?”
“मेरे नाम पर संदेह?”
“कृष्ण के अनेक नाम है। उसे श्याम भी कहते हैं। उसे केशव भी कहते हैं।”
“ओह, यह तो मैं भूल ही गया था। केशव भी कृष्ण का ही नाम है।”
“सुना हैं कृष्ण बड़ा ही चालाक था। कहीं कहीं तो वह कपट भी कर लेता था। तुम भी तो कहीं ...।”
“नहीं गुल। मैं कोई कपट नहीं कर रहा। कृष्ण का व्यक्तित्व अत्यंत विशाल है। उसे केवल कपटी कहना ही उचित नहीं है।”
“कृष्ण का चरित्र तुम्हें कितना ज्ञात है, केशव? मुझे उसके चरित्र के विषय में कहो। मुझे उसका चरित्र आकर्षित कर रहा है।”
“कदाचित अंश मात्र भी नहीं जान सका हूँ उस महानायक के चरित्र को। वह विराट है, मैं वामन हूँ। वह व्यापक है, मैं पामर। उसका चरित्र मुझे भी आकर्षित कर रहा है, वर्षों से। मैं वर्षों से इस चरित्र का अध्ययन करने का यत्न कर रहा हूँ किंतु विफल ही रहा हूँ। जब तक मैं उस चरित्र से पूर्ण रूप से परिचित नहीं हो जाता, मैं उस मंदिर में नहीं जा सकता।”
“अर्थ तो यही निकलता है कि तुमने कृष्ण को पढ़ा है, समझा भी है। हो सकता है तुम्हारा यह यत्न अपूर्ण हो। किंतु कुछ तो मुझसे अधिक ज्ञान रखते हो तुम कृष्ण के विषय में।”
“गुल, अपूर्ण ज्ञान तो अज्ञान से भी अधिक भयावह होता है। वह हमें मार्ग से भटका देता है।”
“तो पूर्ण ज्ञान किससे मिलेगा? मुझे भी इस पूर्ण ज्ञान में रुचि हो रही है। क्या गुरुजी हमें यह ज्ञान नहीं दे सकते?”
“मैंने यह प्रयास भी कर देख लिया। मैंने गुरुजी से यही आग्रह किया था।”
“तो उन्होंने क्या कहा?”
“जब मैंने उसे ऐसा आग्रह किया तो वह कुछ नहीं बोले। लम्बे समय तक मौन हो गए। मैं उनके उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा किन्तु वह मौन ही रहे। किसी गहन विचार में डूब गए थे वह। मैंने भी मन बना लिया था कि जब तक वह हां नहीं कहते

मैं भी वहीं खड़ा रहूँगा, प्रतीक्षा करता रहूँगा। "
"तो क्या वह मान गए? वह क्या बोले?"
"लम्बे समय पश्चात जब उसकी विचार यात्रा सम्पन्न हुई तो उसने अपने नेत्र खोले। मुझे अपने सम्मुख पाते ही वह चकित हो गए। मेरे मुख पर वही प्रश्न था जिसका वह उत्तर नहीं दे रहे थे।"
"उसने क्या कहा? क्या किया?"
"वह बोले –
'वत्स, जिस ज्ञान को मैंने प्राप्त नहीं किया उसे मैं नहीं दे सकता। तुम्हें स्वयं ही उसे पाना होगा।'
इतना कहते हुए वह उठ कर चले गए। मैं वहीं खड़ा रहा, सोचता रहा। जब भोजन का समय हुआ तो एक सहपाठी मुझे भोजन कक्ष ले गया।"
"तो तुमने क्या किया?"
"तब से मैं स्वयं ही उस ज्ञान के मार्ग पर चलने का अभ्यास कर रहा हूँ।"
"तो क्या तुम मुझे भी उस मार्ग पर अपने साथ चलने की अनुमति देते हो?"
"क्या तुम्हें भी कृष्ण के चरित्र में रुचि है?"
"हमारे मदरसा में अन्य धर्म की बातें नहीं बताई जाती है, ना सिखाई जाती है। किंतु जब से मुझेउस मंदिर का आकर्षण हुआ है तब से मुझे उस भगवान ने भी आकर्षित किया है। एक दिवस मैंने तात को भी पूछा उसने मुझे गुरुकुल से एक पुस्तक लाकर दिया। उसमें कृष्ण का बाल चरित्र है। मैं उसे पढ़ती गई, मेरी रुचि बढ़ती गई। यह रुचि अब तीव्र हो गई है। क्या तुम मेरी सहायता करोगे?"
"सहायता तो तुम्हें स्वयं करनी होगी। किंतु हम इस मार्ग पर साथ साथ चल सकते हैं।"
"कितनी दूर तक? क्या हमें हमारा लक्ष्य मिलेगा?"
"दोनों प्रश्नों के उतर से मैं अनभिज्ञ हूँ।"
मौन हो गया केशव। समुद्र की ध्वनि को सुनता रहा। गुल केशव के मौन भंग की प्रतीक्षा करने लगी।
"तोहम मंदिर चलें?" केशव ने मौन भंग किया। वह चलने लगा।
"मंदिर तो नगर की तरफ़ है, तुम किस दिशा में जा रहे हो?"
केशव चलता रहा, गुल उसके पीछे चलती रही। केशव रुक गया। गुल भी।
केशव ने स्मित के साथ कहा," गुल, समुद्र के भीतर उस मंदिर को देखो।" केशव ने हाथ से मंदिर की दिशा में संकेत किया। गुल ने उसे देखा।
समुद्र तट से, समुद्र के भीतर, तीन सौ मीटर दूर एक मंदिर दिखाई दिया । एक श्वेत धजा समुद्र की पवन से मंद मंद लहरा रही थी। तट तथा मंदिर के मध्य समुद्र का पानी था।
"समुद्र के भीतर मंदिर! यह तो अद्भुत है। किसका मंदिर है यह? क्या यह भी कृष्ण का मंदिर है?"
"नहीं, यह महादेव का मंदिर है। भगवान शिव का मंदिर है।"
"यहाँ तो पानी है। उस मंदिर तक इस समुद्र को पार कर कैसे जाएँगे?"
"तुम उस मंदिर में जाना चाहती हो?"
"अवश्य। किंतु कैसे जाऊँगी? क्या कोई अन्य मार्ग है? मुझे उस मंदिर में ले चलो केशव।"
"अन्य कोई मार्ग तो नहीं है। यदि पानी के मार्ग को पार करने का साहस हो तो हम मंदिर तक जा सकते हैं।"
"मुझे भय लगता है।"
"समुद्र की बेटी को समुद्र से भय कैसा?"
"समुद्र की बेटी? मैं?"
"जिसका जन्म समुद्र के तट पर हुआ हो, जिसका बालपन इसी तट पर बिता हो, जिसका तारुण्य समुद्र की तरंगों के साथ व्यतीत हो रहा हो, जिसके यौवन की प्रतीक्षा स्वयं यह सागर कर रहा हो, उसे समुद्र की बेटी ही कहना उचित होगा ना?"
"इस दृष्टि से तो मैं समुद्र की बेटी ही हूँ।" गुल के मुख पर आत्म विश्वास की रेखाएँ प्रकट हो गई।
"मैं साहस रखती हूँ इस समुद्र को पार करने का।"
दोनों उतर पड़े समुद्र के भीतर। तट के समीप पानी गहरा न था। समुद्र की लहरें तट पर आते आते मंद हो जाती थी। दोनों उसे पार करते आगे बढ़े। धीरे धीरे समुद्र की गहराई बढ़ने लगी। लहरों का बल बढ़ने लगा। दोनों स्वयं को सम्भालते हुए आगे बढ़ने लगे।
दोनों मध्य से भी अधिक मार्ग पार कर चुके थे। पानी कटी से ऊपर आ गया था। एक एक चरण सम्भालकर चल रहे थे।

समुद्र की तरंग आती थी, संतुलन पर प्रहार करती थी। प्रयत्न से दोनों संतुलन बनाए रखते थे, आगे बढ़ते रहते थे। केशव आगे था, गुल पीछे।
एक बड़ी तीव्र तरंग आयी। केशव को असंतुलित कर गई। वह गिर गया। तरंग के साथ तट की तरफ़ प्रवाहित होने लगा। केशव तथा तट के बीच गुल थी। उसने तट की तरफ़ बहते केशव के लहराते उपवस्त्र को पकड़ लिया। केशव की गति रुक गई। वह सम्भल गया, उठा। साहस जुटाया। चल पड़ा मंदिर की तरफ़। गुल भी।
मंदिर के समीप एक बड़ी शिला थी। दोनों वहाँ तक आ गए। दोनों ने शिला को पकड़ लिया। कुछ समय तक दोनों वैसे ही खड़े रहे। समुद्र की तरंगें आती थी, दोनों पर प्रहार करती थी। दोनों उससे बचते थे। तरंगें परास्त होकर तट की तरफ़ चली जाती थी। गुल ने केशव की तरफ़ देखा। केशव ने उसके मुख मण्डल पर जन्मे प्रश्नों को पढ़ लिया।
"कुछ समय तक हमें ऐसे ही रहना है। मैं इस शिला पर चढ़ने का प्रयास करता हूँ। तुम इस शिला को पकड़े रहना।"
केशव ने शिला का निरीक्षण किया। एक तरफ़ से प्रयास करते हुए वह शिला पर चढ़ गया। उसने गुल को हाथ दिया। गुल भी शिला पर आ गई।
"यह स्थान सुरक्षित है।"
"किंतु मंदिर कैसे जाएँगे?" गुल ने समुद्र की जलराशि को देखते हुए कहा।
"गुल, पीछे देखो। हम मंदिर तक आ गए हैं।"
गुल ने पीछे देखा। शिला मंदिर से जुड़ी हुई थी। सम्मुख मंदिर था।
"ओह। हम मंदिर आ गए।" गुल के मुख पर एक नूतन आभा थी। किसी लक्ष्य की प्राप्ति की प्रसन्नता थी, विजय का उल्लास था।
"इन शिलाओं के मार्ग पर कुछ चरण चलते ही भगवान शिव के दर्शन हो जाएंगे। मंदिर की तरफ़ चलें?" केशव ने गुल से कहा जो किसी अन्य विचारों में थी।
गुल समुद्र को देख रही थी।
'इतना विशाल समुद्र, इतनी अथाह जल राशि। कभी ऐसा नहीं देखा। यह तो मेरे लिए अज्ञात ही था। दूर दूर तक जल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।'
वह समुद्र की तरंगों को देखती रही। वह अनिमेष दृष्टि से देखती रही। केशव ने उसे देखा। गुल की तन्मयता को देखता रहा, अनुभव करता रहा। गुल के मुखमंडल पर उठते भावों को वह निहारता रहा। उन भावों में एक अदम्य मुग्धता थी, अदम्य विस्मय था, कौतुक था, कुतूहल भी था। भावों का वह मिश्रण अद्भुत था, अनन्य था, अवर्णनीय था, असीमित था।

गुल की उस अवस्था में हस्तक्षेप करना केशव को अनुचित लगा। वह बस उसे निहारता रहा। वह समुद्र को निहारती रही। समय की रेत धीरे धीरे सरक रही थी। सूरज अब निकल चुका था। समुद्र से आता समीर अब मंद हो गया था, किंतु अभी भी शीतल था। उस शीतलता से भी गुल अनभिज्ञ थी। वह केवल समुद्र से जुड़ी थी। अन्य किसी बात, किसी वस्तु उसे प्रभावित नहीं कर रही थी।
गुल तथा समुद्र के बीच जो एकरूपता थी, जो तादात्म्य था, सहसा वह खंडित हो गया।
श्वेत पंखियों का एक विशाल वृंद उड़ता हुआ समुद्र की तरफ़ से आ गया। वह सभी कुछ बोल रहे थे अपनी वाणीमें। उस वाणी ने गुल का ध्यान भंग किया। एक को छोड कर वह दूसरे पर ध्स्थिर हो गया। ध्यान का इस परिवर्तन सहज था। वह इन श्वेत पंखियों को निहारने लगी। वह उड़ रहे थे, कभी समुद्र के भीतर चले जाते थे, डुबकी लगाकर समुद्र से बाहर

निकल आते थे, उड़ने लगते थे। कभी समुद्र के तल को स्पर्श करते हुए, कभी उससे थोड़ा सा अंतर रखते हुए, कभी ऊँचे, अत्यंत ऊँचे उड़ रहे थे। पंखियों की यह क्रीड़ा भी आकर्षक थी। उस आकर्षण में वह डूब गई।
“बच्चों, आरती का समय हो गया है। क्या आप आरती में सम्मिलित होना चाहोगे?”
केशव ने पुजारी के शब्दों को सुना, गुल ने नहीं सुना।
“महाराज, हम आरती में अवश्य सम्मिलित होंगे। मैं गुल को लेकर आता हूँ।”
पुजारी मंदिर में चले गए। केशव गुल के समीप गया, “गुल, चलो आरती के दर्शन करते हैं।” गुल ने अर्ध मन से सुना। वह समुद्र को वैसे ही निहारती रही। केशव ने कुछ क्षण प्रतीक्षा की। गुल पर कोइ प्रभाव नहीं पड़ा।
केशव को घंटनाद सुनाई दिया। आरती का प्रारम्भ हो गया ।
‘मुझे गुल को लेकर जाना चाहिए। आरती के साथ कभी दर्शन नहीं किए होंगे। इस अनुपम क्षण का अनुभव गुल को करवाना ही चाहिए। मैं उसे मंदिर के भीतर ले चलता हूँ।’
“गुल, आरती प्रारम्भ हो चुकी है। चलो दर्शन करते हैं।” गुल अभी भी समुद्र की लीला में खोई हुई थी। उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।
कुछ क्षण विचार करने के पश्चात केशव ने गुल का हाथ पकड़ लिया और उसे मंदिर की तरफ़ ले गया। गुल ने कोई प्रतिरोध नहीं किया किंतु उसकी दृष्टि अभी भी समुद्र पर थी। जब वह मंदिर के भीतर प्रवेश कर गई तब कहीं उसकी दृष्टि का सेतु समुद्र से टूटा।
गुल ने स्वयं को समेटा। मंदिर के भीतर उसे जो भी दृष्टिगोचर हो रहा था उसे वह देखने लगी। एक ही क्षण में उसका ध्यान आरती के आलोक पर पड़ा।
एक पात्र में अनेक दिए प्रज्ज्वलित थे। उसमें से उठती मंद मंद अग्नि शिखाएँ गुल के ध्यान का केंद्र बन गई। पुजारी उस पात्र को गोल गोल घुमा रहे थे। कभी वह ऊपर तो कभी नीचे ले जाते थे। कभी एक दो क्षण के लिए कहीं स्थिर रखते थे। गुल की दृष्टि उस आलोक का पीछा करने लगी। आलोक के साथ ऊपर, आलोक के साथ नीचे, तो कभी स्थिर होने लगी। वह तेज पुंज उसे आकृष्ट कर रहा था। उसमें कुछ बात तो थी जो गुल को अपनी तरफ़ खिंच रही थी। कुछ अनन्य था, कुछ अद्वितीय था उस आलोक में जो गुल ने उससे पूर्व कभी नहीं देखा था, ना ही अनुभव किया था।
‘अग्नि सदैव जलता है। उसके सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक वस्तु को भस्म कर देता है। किंतु यह अग्नि ! यह अग्नि नष्ट करने वाला नहीं प्रतीत होता है। कितना तेज़ है तथापि कितना सौम्य है यह अग्नि। इस अग्नि से मुझे भय नहीं हो रहा है। यह मुझे प्रसन्न कर रहा है। यह अग्नि मेरा मित्र होगा। मेरा ही नहीं, इस सारे संसार का भी मित्र होगा।’
“हे मित्र अग्नि, मैं तुम्हें वंदन करती हूँ।” गुल ने सहज ही दो हाथ जोड़ दिये, आँखें बंद कर ली।
उसके कानों ने घंटनाद भी सुना। उस नाद ने भी उसे प्रसन्नता दी। उसने आँखें बंद ही रखी। मन ही मन अग्नि को देखती रही, घंट नाद को सुनती रही।
गुल के लिए यह अनुभव अपूर्व था, अनुपम था, आनन्दमय था। वह उस क्षण के आनंद का रस पान करती रही, उस क्षण में डूब गई।
धीरे धीरे घंटनाद मंद होने लगा। आरती की गति भी मंद होने लगी।अंतत: आरती पूर्ण हुई, घंट नाद सम्पन्न हुआ। पुजारी ने आरती का जल सब पर छिड़का। जल के इस स्पर्श से गुल की समाधि भंग हुई। उसने आँखें खोली। सामने शिवलिंग था। महादेव तथा गुल के बीच कोई नहीं था। ना पुजारी, ना आरती, ना अग्नि शिखा। वह शिवलिंग को देखती रही, उसे वह मनभावन लगी। एक अलौकिक प्रवाह गुल के भीतर प्रवाहित हो गया। उसके अधरों पर स्मित प्रकट हो गया। कुछ क्षण तक शिवलिंग से गुल का तादात्म्य हो गया। जब वह भंग हुआ तब उसने मंदिर को ध्यान से देखा।
एक कोने में आरती पड़ी थी। उसकी अग्नि शिखाएं शांत हो गई थी। मंद गति से जल रही थी। मंदिर में पुजारी नहीं थे। वह केशव को खोजने लगी। केशव भी मंदिर के भीतर नहीं था। वह मंदिर से बाहर आ गई। केशव तथा पुजारी दोनों वहीं थे।
“केशव, तुम अकेले ही मंदिर से बाहर आ गए? मुझे वहीं छोड़ दिया? मुझे भी साथ क्यूँ नहीं ले आए?” गुल के प्रश्नों का उत्तर केशव ने नहीं दिया। वह मौन खड़ा रहा, समुद्र को निहारता रहा। वह प्रतीक्षा करती रही। उसका धैर्य टूट गया। पुन: प्रश्न करने लगी।
पुजारी ने गुल की अधीरता देखी, उत्तर दिया।
“बेटी, जब कोई ईश्वर के ध्यान में मग्न हो जाता है तो उसकी उस अवस्था में विक्षेप नहीं डालते।”
गुल पुजारी के उत्तर को समझने का प्रयास करने लगी। उसके मुख मण्डल पर जन्मी रेखाओं से प्रतीत हो रहा था कि वह विफल हो गई है।
“तुम आँखें बंद कर ऐसी अवस्था में थी जिसे शास्त्र समाधि कहता है।”
“यह समाधि क्या होती है?”

“यह एक दुर्लभ क्षण होती है जो बड़े बड़े ज्ञानी ध्यानी के भाग्य में भी क्वचित् होती है।”
“कैसी होती है यह क्षण?” गुल उत्सुक थी।
“गुल, मंदिर के भीतर जब आँखें बंद कर तुम खड़ी थी तब तुम कहाँ थी?”
“केशव, तुम भी विचित्र सी बातें करने लगे हो।” गुल हंस पड़ी।
“क्या तात्पर्य है तुम्हारा?”
“जब मैं मंदिर के भीतर थी तो मंदिर के भीतर ही थी। कैसा प्रश्न करते हो कि मंदिर के भीतर थी तब मैं कहाँ थी? विचित्र बात ही तो है ना यह?”
केशव के साथ पुजारी भी हँस पड़े। गुल ने दोनों के मुख को, दोनों के हास्य को देखा। उसमें कोई उपेक्षा नहीं थी, ना ही उपहास था। गुल भी हंस पड़ी।
“बेटी, जब हम शरीर से एक स्थान पर होते हैं तब आवश्यक नहीं कि मन से भी हम उसी स्थान पर हों। हमारा मन बड़ा चंचल होता है। वह वहाँ नहीं रहता जहां हम शारीरिक रूप से होते हैं। वह प्राय:: अन्य स्थान पर दौड़ जाता है। शरीर से मन की कौन जाने क्या शत्रुता है कि वह कभी भी शरीर के साथ नहीं रहता।”
पुजारी की बात को आगे बढ़ाते हुए केशव ने कहा, “मन का यही स्वभाव है। अब कहो कि मंदिर के भीतर जब तुम खड़ी थी तब तुम्हारा मन कहाँ था? क्या वह तब भी तुम्हारे साथ मंदिर के भीतर ही था?”
“कहाँ था वह तो मैं नहीं कह सकती किंतु मेरा मन मंदिर के भीतर नहीं था।” गुल ने कहा।
“उस क्षणों में तुम्हें क्या अनुभव हो रहा था?”
“उस क्षण मुझे लग रहा था कि मैं.... नहीं उस क्षण तो मैं .... नहीं नहीं।” गुल स्वयं को स्पष्ट करने का प्रयास करने लगी, उस क्षण में जाने का प्रयास करती रही। उस क्षण का अनुभव व्यक्त करने का यत्न करने लगी। किंतु कुछ भी स्पष्ट नहीं हो रहा था।
“कहो, बेटी। कहाँ था तुम्हारा मन? क्या कर था वह? क्या कह रहा था वह? उस क्षण को व्यक्त करो, बेटी।”
“मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है इस विषय में। कुछ क्षण पूर्व की क्षणों की जैसे विस्मृति हो गई हो। ऐसा क्यूँ होता है?”
“कुछ तो स्मरण होगा। कुछ अनुभव तो हुआ होगा।”
“कुछ अद्वितीय अनुभव था, किंतु मुझे ठीक से कुछ भी स्मरण नहीं है। बस इतना स्मरण है कि मैंने आरती की इस ज्योत को देखा था, आँखें बंद की थी।”
गुल रुकी।
“कहो बेटी, कहो।”
“उसके पश्चात एक विशाल तेज पुंज मेरे सम्मुख था। किसी ऊँचे पर्वत जैसा, किसी विशाल समुद्र जैसा, जैसे यह आरती की ज्योत स्वतः बढ़ती जाती हो। दसों दिशाओं में वह तेज पुंज था। मैं उसके भीतर थी। किंतु मैं भयभीत नहीं थी। उस तेज पुंज के मध्य कोई आकृति थी।”
गुल रुकी। केशव कुछ बोलना चाहता था किंतु पुजारी ने उसे संकेतों से रोका।
“धीरे धीरे वह आकृति मेरे समीप आने लगी, उसने मुझे स्पर्श किया और उस तेज पुंज में वह विलीन हो गई। धीरे धीरे तेज पुंज भी शांत होता गया। जैसे उस अग्नि पुंज पर वर्षा गिरी हो। जब मैंने आँखें खोली तब मैं मंदिर के भीतर ही थी। मेरे शरीर पर जल के कुछ बिंदु थे। क्वचित् उस वर्षा का जल ही मेरे शरीर पर था।” गुल पुन: रुक गई। केशव तथा पुजारी मौन ही रहे।
“मैंने आँखें खोली तब आप दोनों ही मंदिर में नहीं थे।”
“जो नहीं था उसकी चिंता ना करो, जो था तुम्हारे पास उसकी अनुभूति का आनंद लो।”
“क्या था मेरे पास? मुझे तो कुछ भी स्मरण नहीं हो रहा है।”
“बेटी, उस मंदिर को देख रही हो?”
पुजारी जी ने द्वारिकाधीश मंदिर की तरफ़ संकेत किया।
“कृष्ण का वह मंदिर?”
“उस कृष्ण ने भी अर्जुन को अपने विराट स्वरूप का दर्शन कराया था। किंतु उस क्षण के पश्चात अर्जुन को भी उस क्षण का कोई स्मरण नहीं रहा।”
“तो क्या गुल को ईश्वर के उस स्वरूप का दर्शन हुआ है जिसे चतुर्भुज रूप कहते हैं?” केशव की जिज्ञासा जागृत हो गई।
“यह सम्भव है, नहीं भी है। निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।”
“यह चतुर्भुज स्वरूप, यह विराट स्वरूप क्या होता है?” गुल की जिज्ञासा भी जागृत हो गई।

“कृष्ण का, ईश्वर का एक ऐसा स्वरूप जिसका वर्णन शास्त्र भी नहीं कर सकते तो हम मनुष्यों की तो कोई क्षमता ही नहीं है।”

29

गुल ने पुजारी की आधी बात ही सुनी, वह समुद्र को निहारने लगी।
समुद्र से उड़ता हुआ एक पंखी गुल के समीप आ गया। उसकी चांच में कुछ था। गुल उसे ध्यान से देखने लगी। उसकी चांच में एक मछली थी जो जीवित तो थी किंतु मृत्यु से जीवन के लिए संघर्ष कर रही थी। उस पंखी ने उस मछली को नीचे रख दिया। मछली अभी भी संघर्ष कर रही थी। गुल पंखी की तरफ़ दौड़ी। गुल के पगरव से पंखी उड़ गया, मछली वहीं छोड़ गया।
गुल ने कुछ क्षण मछली को देखा, उसे अपने हाथों से उठाया और समुद्र के भीतर फेंक दिया। वह समुद्र के भीतर गई, पानी से बाहर निकलकर गुल की तरफ़ देखा, जैसे वह अपने जीवन दान के लिए गुल का धन्यवाद कर रही हो। वह समुद्र में कहीं चली गई। गुल समुद्र के उस बिंदु को निहारती रही। वह पंखी कुछ विचित्र सी ध्वनि करता हुआ गुल के ऊपर उड़ता रहा। कुछ ही क्षण में अनेक पंखी आ गए, गुल के ऊपर उड़ने लगे।
गुल उसे देखकर भयभीत हो गई। वह दौड़ी, मंदिर के भीतर चली गई। केशव भी मंदिर के भीतर गया। पुजारी ने उड़ते हुए क्रोधित पंखी को दाने डाले, वह सब शांत हो गए, दाना खाने लगे।
“शांत हो जाओ बेटी, महादेव के शरण में हो तुम, सुरक्षित हो तुम।” पुजारी ने मंदिर के भीतर प्रवेश करते हुए कहा। पुजारी के शब्दों ने गुल को शांत कर दिया।
“यह पंखी क्या चाहते थे?” स्वस्थ होते हुए गुल ने पूछा।

“गुल, अभी हमें लौट जाना चाहिए। अधिक समय व्यतीत हो चुका है।”
“केशव, मेरे प्रश्न का उत्तर दो।”
“इस प्रश्न का उत्तर तो मैं तुम्हें कल भी दे दूँगा। किंतु ...।” कहते हुए केशव बाहर आ गया। पुजारी तथा गुल भी बाहर आ गए। दोनों ने प्रश्न भरी दृष्टि से केशव को देखा।
“देखी, वहाँ तट पर देखो। जो भिड़ दिख रही है वह पर्यटकों की नहीं है।”
“कौन हैं वह सब?” गुल ने सहजता से पूछा।
“तुम्हारे समुदाय के लोग हैं। हमें, विशेष रूप से तुम्हें, खोजने के लिए आए हैं।”
“केशव का कहना उचित है। इतना अधिक समय हो गया है और तुम ना तो घर लौटी हो ना ही मदरसा गई हो। उन्हें आशंका हो सकती है कि कहीं तुम समुद्र के भीतर डूब तो नहीं गई।”
“किंतु मैं तो यहाँ हूँ।”
“यह तुम्हें, मुझे तथा पुजारी जी को ज्ञात है, उन्हें नहीं। हमें लौट जाना होगा।”
“तो चलो लौट जाते हैं, उन्हें बता देते हैं कि मैं यहाँ सुरक्षित हूँ। चलो।”
गुल चलने लगी। केशव हँसता रहा, वहीं ठहर गया।
“अब चलो भी। तुम हंस क्यूँ रहे हो?”
“बेटी, अभी लौटना सम्भव नहीं है।”
“क्यूँ?”
“समुद्र के पानी ने हमें घेर लिया है। हमें पानी के उतरने तक प्रतीक्षा करनी होगी।”
“हम इसी पानी से होकर आए थे। इसी पानी से चले जाते हैं। चलो, केशव।”
“नहीं गुल, हम जब आए थे तब पानी का स्तर थोड़ा ही था। अभी समुद्र अपनी पूर्ण वेला पर है। इस समय पानी का स्तर अत्यंत अधिक है। उसे पार करना असम्भव है। हमें प्रतीक्षा करनी होगी।”
“किंतु मेरे परिवार वाले मेरे लिए चिंतित हो रहे हैं। मुझे जाना है।” गुल ने ज़िद कर ली।
“प्रतीक्षा के उपरांत हमारे पास कोई विकल्प नहीं है बेटी।”
गुल रुक गई। एक शिला पर बैठ गई। चिंतित हो गई। प्रतीक्षा करने लगी।
समय मंद गति से व्यतीत हो रहा था अथवा समुद्र का पानी मंद गति से उतर रहा था। दोनों ही अवस्था गुल के लिए असहनीय थी।
प्रतीक्षा अपेक्षा से अधिक लंबी होती जा रही थी। इतनी प्रलंब प्रतीक्षा का यह प्रथम अवसर था गुल के लिए। वह अपना धैर्य खो रही थी। स्वयं पर क्रोधित हो रही थी। स्वयं के साथ साथ वह क्रोधित थी केशव पर, पुजारी पर, पंखियों पर, समुद्र पर तथा समय पर भी। किन्तु गुल के क्रोध से इनमें से कोई प्रभावित नहीं था। यह सब अपनी अपनी गति पर चल रहे थे, प्रतीक्षा भी कर रहे थे।
गुल की इस मनोस्थिति को पुजारीजी ने परख लिया। वह कोई उपाय सोचने लगे।
‘इस मंदिर से तट तक जाने का एक गुप्त मार्ग है। मुझे उसका संज्ञान है। उस मार्ग से मुझे गुल तथा केशव को तट तक ले जाना चाहिए.... ।’
‘हाँ, वह मार्ग तो है किन्तु... ।’
‘किन्तु क्या?’
‘उस मार्ग का प्रयोग इस समय करना उचित होगा क्या?’
‘कदाचित।’
‘कदाचित नहीं, स्पष्ट कहो।’
‘तो सुनो। उस मार्ग के उपयोग हेतु यह समय उचित नहीं है।’
‘क्यूँ?’
‘उस गुप्त मार्ग का, उस गुफा पथ का उपयोग सामान्य परिस्थिति में करना निषेध है। गुरुजी ने जो कहा था उसक स्मरण करो।’
‘क्या कहा था?’
‘जब जीवन मृत्यु का संकट आ पड़े तभी इस मार्ग का प्रयोग करना।’
‘तो?’
“तो क्या यह समय किसी के जीवन मृत्यु के संकट का है?’

'नहीं।'
'तो उस विचार को त्याग दो। प्रतीक्षा करो।'
पुजारी ने प्रतीक्षा करने का निश्चय कर लिया।
कुछ समय व्यतीत होने पर भी समुद्र का पानी नहीं उतरा तो गुल का क्रोध स्वत: उतर गया। धीरे धीरे मन शांत होने लगा। वह शांत हो गई। भीतर मौन ने जन्म ले लिया। जैसे जैसे भीतर मौन का प्रभाव बढ़ता गया, उसे उस परिवेश की ध्वनि सुनाई देने लगी।
वह ध्वनि थी समुद्र की लहरों की, बहती हवा की, गगन में उड़ रहे पंखियों के पंखो की, पंखियों के कलरव की, मंदिर की लहराती ध्वजा की। वह ध्वनि थी स्वयं के साँसों की, शिवजी की लिंग पर टपक रहे जल कणिकाओं की, हवा में उड़ रहे अपने केश की, स्वयं अपने ही ह्रदय के स्पंदनों की।
गुल उन ध्वनियों में खो गई। उन ध्वनियों के मिश्रण मे एक अनन्य नाद था। एक संगीत था। वह कर्ण प्रिय था। जैसे किसी वेणु का नाद हो।गुल उस नाद में खो गई।
"गुल, चलो चलें?" केशव के शब्दों ने गुल को जागृत कर दिया।
"कहाँ जाना है हमें?"
"अपने अपने घर।"
"कुछ समय पश्चात चलें?"
"गुल, तुम भी कभी कभी ऐसी बातें कर लेती हों कि...।"
"कैसी बातें?"
"ऐसी बातें जो समझ से परे हो।"
"मैंने ऐसा क्या कह दिया?"
"गुल, जब समुद्र का पानी अपने यौवन पर था तब तुम घर जाने के लिए उतावली थी। हम कहते थे कि प्रतीक्षा करो। तब तुम हम पर क्रोधित हो गई थी। अब जब पानी उतर रहा है और हम घर जाने के लिए कह रहे हैं तो तुम रुकने को कह रही हो। क्या यह बातें ...।"
"हाँ, यह बातें विचित्र है। चलो छोड़ो उसे। चलो घर चलें।"
गुल मंदिर से बाहर निकल समुद्र में उतर गई।
"गुल, रुको। पानी अभी भी पूरा उतरा नहीं है। हमें सतर्क रहना होगा।"
तीनों समुद्र पार करने पानी के भीतर उतर गए।
"बेटी, समुद्र का उतरता पानी अधिक भयप्रद होता है।"
"वह कैसे?"
"उतरता पानी तीव्र गति से समुद्र के भीतर जाता है तब वह अपने साथ सभी को ले जाता है। अपनी गहनता मेँ वह सब को डुबो देता है।"
"मनुष्यों को भी?"
"समुद्र की गहनता की तुलना मेँ मनुष्य अत्यंत तुच्छ है।"
गुल रुक गई।
"क्यूँ रुक गई?"
"मेरे भीतर किसी भय ने जन्म ले लीया है।"
"धैर्य तथा साहस रखो। चलते रहो। केशव का हाथ पकड़ लो।"
केशव रुक गया। गुल की आँखों मे देखा। उन नयनों मे अनिर्णयकता के भाव थे। केशव ने हाथ बढ़ाया, गुल ने पकड़ लिया। समुद्र पार हो गया।
तट पर अनेक व्यक्तियों की भीड़ थी। उनमें गुल के परिवार के तथा समाज के व्यक्ति थे तो कुछ अज्ञात व्यक्ति भी थे। गुल को, केशव को तथा पुजारी को देखते ही उन व्यक्तियों के मुख पर प्रसन्नता, क्रोध तथा अन्य भावों ने जन्म ले लिया।
"पुजारी, कहाँ ले गए थे गुल को? क्या किया तुमने गुल के साथ? यह लड़का वहाँ क्या कर रहा था?" भीड़ से प्रश्न उठने लगे।
"गुल, कहाँ थी तुम? यहाँ कैसे आ गई? इन दोनों ने तुम्हारे साथ क्या क्या किया?" भीड़ नए प्रश्नों के साथ उग्र हो गई। इतने सारे प्रश्न से गुल स्तब्ध हो गई। उसे कोई उत्तर ना सुझा, वह मौन ही रही। उसके मौन से भीड़ अधिक उत्तेजित हो गई।

“पकड़ लो इन दोनों को। मारो इन दोनों को। हमारी बेटी के साथ अवश्य ही कोई दुष्कर्म किया होगा इन काफिरों ने। तभी तो गुल कुछ बोल नहीं पा रही।”
भीड़ मेँ से कुछ व्यक्ति केशव तथा पुजारी पर प्रहार करने हेतु आगे बढ़ गए। केशव इस स्थिति से स्तब्ध हो गया, पुजारी पूर्ण स्वस्थ थे, शांत थे। मुख पर धैर्य था।
एक व्यक्ति ने पुजारी पर प्रहार कर दिया। पुजारी ने उसका हाथ पकड़ लिया। उसकी पकड़ इतनी सशक्त थी कि वह व्यक्ति के हाथ मेँ पीड़ा होने लगी। वह दुखी हो गया।
“जब तक सत्य का ज्ञान ना हो तब तक इस प्रकार दुसाहस कोई ना करें। अन्यथा विपरीत परिणाम भुगतने होंगें।” पुजारी ने उस व्यक्ति को अपनी पकड़ से मुक्त किया।
“प्रथम सत्य जान लो। तत पश्चात उचित लगे वह करना।”
पुजारी का यह स्वरूप देखकर भीड़ का उन्माद मंद हो गया।
“बेटी, तुम्हारे साथ जो हुआ वह इस भीड़ को कहो। निर्भय होकर कहो।”
गुल ने कुछ समय लिया। बोली, “मेरे साथ ऐसा कुछ भी नहीं हुआ जो आप कल्पना कर रहे हो। इन दोनों ने मुझे कोई कष्ट नहीं दिया। मैं मेरी इच्छा से ही उस मंदिर मेँ गई थी। वहाँ मैंने भगवान शिव के दर्शन किए। मुझे प्रसन्नता मिली। यदि आप भी उस शिव का दर्शन करोगे तो आप को भी यही अनुभव होगा। एक बार अवश्य वहाँ जाना।” गुल के शब्दो ने एक उन्माद को शांत कर दिया, दूसरे नए उन्माद को जन्म दे दिया।
“तुम्हारी बेटी भी तुम्हारी भांति गुरुकुल के प्रभाव में आने लगी है। विधर्मियों के साथ रहते हुए तुम दोनों अपने मझहब से भटक रहे हो।” भीड़ ने जो कहना था, कह दिया।
गुल ने तथा उसके पिता ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। भीड़ एक एक कर टूट गई।

30

एक नया प्रभात अपने सौंदर्य को लेकर आगमन करने की तैयारी कर रहा था। उस क्षण अनायास ही आकर्षित होती हुई गुल भड़केश्वर महादेव के मंदिर के प्रति चलने लगी। तट पर आकर रुक गई।
‘मुझे मंदिर तक जाना है किन्तु आज भी समुद्र का जल स्तर कल की भांति अधिक है। इसने मंदिर को अपने बाहुपाश में घेरे रखा है।’ वह इधर उधर देखने लगी।
‘क्या कोई मार्ग नहीं इस जल स्तर के उपरांत उस मंदिर तक जाने का? कोई तो अन्य मार्ग अवश्य होगा। मुझे खोजना होगा उस मार्ग को।’
‘मैं जाना चाहती हूँ किन्तु कोई मार्ग नहीं दिख रहा। कैसे जाऊँ?’
‘कल तो तुम समुद्र के इसी जल को पार कर मंदिर गई थी। तुम्हें इस मार्ग का अनुभव है। आज भी तुम उस मार्ग से मंदिर जा सकती हो।’
‘कल की बात भिन्न थी। आज स्थिति भिन्न है। कल मेरे साथ केशव था, कल मुझे पानी की गहराई का आभास न था। कल मैं ऐसे दु:साहस के परिणाम से परिचित नहीं थी। मैं तो बस चल पड़ी थी केशव के सहारे। किन्तु... ।’
‘किन्तु क्या?’
‘आज मैं परिणाम से परिचित हूँ। आज ऐसा दु:साहस करने का साहस नहीं है मुझ में।’
‘यदि तुम साहस नहीं करोगी तो मंदिर की आरती का आनंद कैसे प्राप्त करोगी? उस अनुभूति से वंचित हो जाओगी।’
‘यदि मुझे तैरना आता तो मैं अवश्य ही यह साहस कर लेती।’
गुल को किसी के अट्टहास्य की ध्वनि सुनाई दी। वह मुड़ी।
“केशव तुम? तुम ऐसे हंस क्यूँ रहे हो? कहाँ थे अब तक?”
“मैं तो कब से यहीं हूँ, तुम्हारे पिछे, तुम्हारी बातें सुन रहा था।”
“मेरी बातें? मैं तो मन ही मन बातें कर रही थी। तो तुमने कैसे सुन ली?”
“तुम अपनी बातों में इतनी मग्न थी की तुम्हें यह भी ज्ञात नहीं रहा कि तुम मन ही मन नहीं किन्तु प्रकट रूप से बोल रही थी।”

“अ च्छा? तो यह कहो कि इसमें हंसने जैसी क्या बात थी? तुम मेरी सहायता करने के स्थान पर मेरा उपहास कर रहे हो?”
“गुल, कोई किसी की सहायता नहीं कर सक्ता। अपने मार्ग पर, अपने लक्ष्य तक हमें स्वयं ही जाना पड़ता है और वह भी अकेले। कोई किसी के साथ जीवन भर नहीं रहता।”
“ज्ञान की बातें ना करो। यह कहो कि मेरा उपहास क्यूँ हो रहा है?”
“उपहास ना करूँ तो क्या करूँ?”
“क्या तात्पर्य है तुम्हारा?”
“गुल, तुम समुद्र के तट पर जन्मी हो। यहीं अभी तक का जीवन व्यतीत किया है। इतनी आयु हो जाने पर भी तुम्हें तैरना नहीं आता! क्या यह उपहास का विषय नहीं है?”
“तैरना तो तुम्हें भी …।”
“नहीं आता था। किन्तु अब आता है।”
“क्या तुम सत्य कह रहे हो?”
“क्या कोई संदेह है? तो लो, देख लो।”
केशव समुद्र के जल प्रवाह में कूद पड़ा। गुल ने उसे रोकना चाहा किन्तु वह आगे बढ़ गया था। देखे ही देखते वह मंदिर तक जा पहुंचा।
मंदिर से केशव ने हाथ हिलाकर गुल का अभिवादन किया।
‘केशव मुझे आमंत्रित कर रहा है। किन्तु …छोड़ो। मैं कहाँ जा सकती हूँ। मैं यहीं तट पर ही प्रतीक्षा करती हूँ।’ वह एक शीला पर बैठ गई।
“आरती का समय हो गया है। घंट नाद भी हो रहा है। आरती दिखाई नहीं दे रही है। केवल नाद सुनकर ही मन मनाना पड़ेगा। यह कैसे क्षण है प्रभु?”
एक अंतराल के पश्चात केशव आया।
“तुम अभी भी यहीं बैठकर मेरी प्रतीक्षा कर रही हो?”
गुल ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।
“गुल, यह पुष्प ले लो। आरती का पुष्प है। तुम्हारे लिए ही लाया हूँ।” गुल ने पुष्प को देखा, पुष्प लिया, मस्तक पर चढ़ाया और समुद्र में प्रवाहित कर दिया।
“गुल, चलो चलें।” केशव चलने लगा। गुल वहीं बैठी रही। केशव लौट आया।
“अच्छे बालक क्रोध नहीं किया करते। चलो मान जाओ।”
“बात क्रोध की नहीं है केशव।”
“कुछ कहो तो …।”
“क्या क्या कहूँ? मेरे मन में एक साथ अनेक बातें चल रही है जिसके कारण मेरा मन उद्विग्न है।”
“कहो, कह दो वह सब बातें।”
“एक तो मुझे तैरना नहीं आता। दूसरा यह समुद्र आरती के समय ही इतनी अधिक जल राशि लेकर क्यूँ आ जाता है?”
“अन्य कोई बात?”
“है। कल उस पंखी ने जो पाप किया था। उस बात का कोई समाधान नहीं हो रहा है। मेरा मन अत्यंत विचलित है इस समय।”
कुछ क्षण विचार करने के पश्चात केशव ने कहा, “चलो, प्रत्येक बात का समाधान खोजते हैं, एक एक करके।”
केशव गुल के समीप जा बैठा। गुल ने कोई प्रतिभाव नहीं दिये, वह मौन ही रही। केशव प्रतीक्षा करता रहा गुल के मौन भंग होने का।
“केशव?”
“हाँ।”
“क्या किसी मौन में कोई समस्या का समाधान हो सकता है?”
“हाँ भी, नहीं भी।”
“?”
“जब हम मौन हो जाते हैं तब हमें जो ध्वनि सुनाई देती है वह ध्वनि हमारे भीतर की होती है, इस प्रकृति की होती है। इसी ध्वनि को हम अभी सुन रहे थे।”
“तो?”

“उस ध्वनि को ध्यान से सुनो तो समस्या का समाधान संभवत: प्राप्त हो सकता है। हमें उन ध्वनियों के संकेतों को पकड़ना होगा।”
“तो ठीक है, मैं मौन हो जाती हूँ। लो।”
“मैं भी।”
मौन अवस्था में दोनों को अरबी समुद्र की ध्वनि सुनाई देने लगी। गुल ने उस ध्वनि पर ध्यान केन्द्रित किया। वह ध्वनि धीरे धीरे स्पष्ट होती गई, अन्य ध्वनियाँ शांत होने लगी।
“गुल, मेरे समीप आओ। मेरे भीतर आओ। यदि तुम मुझे समर्पित हो जाओगी तो मैं तुम्हें तैरना सीखा दूँगा। मुझ पर विश्वास करोगी तो मैं तुम्हें डूबने नहीं दूंगा।” गुल सुनती रही। वह ध्वनि अधिक तीव्र होती गई।
“आओ, मेरे भीतर आओ। आओ... आ जाओ...।”
“कौन हो तुम? तुम मुझे पुकार रहे हो, अपनी तरफ खिंच रहे हो, मुझे आमंत्रित कर रहे हो। तुम हो कौन?”
“मैं समुद्र हूँ।”
गुल उठी, समुद्र की तरफ चलने लगी। समुद्र के भीतर प्रवेश कर गई। तरंगों ने उसे गिरा दिया। वह उठी, पुन: चलने लगी। लहरों ने पुन: गिरा दिया। वह पुन: उठी, स्वयं को संतुलित करते करते हाथ पैर हिलाने लगी। तरंगों का प्रतीकार करने लगी। परास्त होती रही किन्तु प्रयास करती रही।
अंतत: गुल ने तरंगों पर विजय प्राप्त कर ली। प्रवाह से सामंजस्य हो गया। प्रवाह के साथ प्रवाहित होने लगी। तरंगों से मित्रता कर ली। समुद्र से गुल का संघर्ष समाप्त हो गया। वह समुद्र की तरंगों के साथ क्रीडा करने लगी। मन से समुद्र का भय दूर हो गया।
जब वह थक गई तो तट पर आ गई। केशव वहीं प्रतीक्षा कर रहा था। गुल के मुख पर जो भाव थे उसे देख कर केशव प्रसन्न हो गया। केशव उठा। दोनों रेत पर चलने लगे। एक बिन्दु पर आकर गुल घर चली गई। अपने पदचिन्हों को रेत पर छोड़ गई। केशव ने उन पद चिन्हों को देखा।
“गुल जब भी विदा लेती है, इसी प्रकार पदचिन्हों को छोड़ जाती है। समुद्र की तरंगें उसे मिटा देती है। किन्तु आज यह पदचिन्ह भिन्न ही प्रतीत हो रहे हैं, भिन्न भाषा बोल रहे हैं। कुछ भिन्न संकेत दे रहे हैं। मुझे इन संकेतों का अर्थ समझना होगा।”
केशव लौट गया गुरुकुल।

31

आनेवाले नए प्रभात की सुगंध वहां व्याप्त थी। गुल तथा केशव प्रतिदिन की भांति तट पर थे, समुद्र की जलराशि को देख रहे थे। जल राशि के उस पार महादेव थे जो आमंत्रित कर रहे थे। दोनों ने उस मंदिर को देखा, एक दूसरे को देखा, आँखों ने संकेत दिये और दोनों कूद पड़े समुद्र की जल राशि में। कुछ ही क्षणों में दोनों महादेव की शरण में आ गए।
मंदिर प्रवेश से पूर्व ही गुल रुक गई। केशव भी। गुल मुड़ी, समुद्र की उस लहरों को देखने लगी जिसे पार कर वह अभी अभी यहाँ आई थी।
समुद्र अपनी सहज गति से प्रवाहित था। तरंगें तट पर जाती थी, वहीं समाप्त हो जाती थी। कुछ तरंगें समुद्र में पुन: समा जाती थी। एक नि:स्पृह संत की भांति समुद्र अपने कार्य में, अपनी सहज गति में व्यस्त था। गुल उसे निहारती रही।
“क्या देख रही हो गुल?”
“क्या?... मैं...? क्या...?” गुल का उत्तर खंडित था।
“गुल, क्या बात है?”
”मैं समुद्र को निहार रही हूँ।”
“कोई विशेष बात है?”
“तभी तो। देखो इसे। अभी अभी हमने इसे परास्त किया है। किन्तु इसकी गति तो देखो। इसके प्रवाह को तो देखो। इसकी

भाव भंगिमाओं को तो देखो। जैसे इस पर हमारे विजय का तथा अपने पराभव का कोई प्रभाव ही ना पड़ा हो। क्या यह समुद्र कोई संत है?"
केशव हंस पड़ा।
"वह समुद्र है, मनुष्य नहीं। यह विजय, यह पराभव आदि शब्द हमारे मनुष्यों के शब्दकोश के शब्द हैं। समुद्र इतना विराट है कि वह ईन शब्दों से प्रभावित नहीं होता।"
"तो?"
"समुद्र की यह विशेषता भी है तथा महानता भी। वह हमें अवसर देता है कि हम उसके प्रवाह से, उसकी तरंगों से, उसकी विशालता से, उसकी गहनता से सामंजस्य बना लें। यदि हम ऐसा कर लेते हैं तो वह स्वयं ही हमारी रक्षा करता है। किन्तु यदि हम उसे परास्त करने का भाव रखेंगे तो वह निमिष मात्र में हमें परास्त कर देगा। हमारे अस्तित्व को ही समाप्त कर देगा।"
केशव ने समुद्र को प्रणाम किया, "हे महासागर, मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ। गुल, समुद्र का अभीवादन करो।"
गुल ने उपेक्षा की। वह मंदिर के भीतर चली गई। आरती, पूजा, दर्शन आदि संपन्न हुआ।
"चलो लौट चलें?" गुल के प्रश्न के उत्तर में केशव समुद्र में कूद गया। गुल भी।
समुद्र की जल राशि अभी भी भरपूर थी। दोनों उसे पार करने लगे। केशव सरलता से तट के प्रति गति कर रहा था। तरंगों ने उसे सहज गति प्रदान की थी।
प्रयास करने पर भी गुल उस सहज गति को प्राप्त नहीं कर पा रही थी। वह जैसे ही तट के प्रति गति करती, तरंगें उसे तट से दूर ले जाती। वह प्रयास करती, कुछ अंतर आगे बढ़ती तो तरंगें उसे विपरीत दिशा में प्रवाहित कर देती। गुल के सभी प्रयास विफल होते गए।
केशव तट पर पहुँच गया। मुड़कर देखा तो गुल अभी भी वहीं थी, मंदिर के समीप। केशव ने उसे संकेत से तट पर आने को कहा। किन्तु गुल अपने प्रयासों में इतनी व्यस्त थी कि केशव के संकेतों को देखने का उसके पास अवसर ही नहीं था। स्वयं को समुद्र के प्रवाह से सुरक्षित करने का संघर्ष करती रही।
केशव ने ऊंचे स्वर में कहा, "गुल, तट पर आ जाओ। समुद्र के भीतर अधिक समय रहना असुरक्षित होता है। शीघ्र ही आ जाओ।"
केशव के शब्द तरंगों की ध्वनि में ही विलीन हो गए।
'गुल मंदिर की शीला से आगे क्यूँ नहीं बढ़ रही? मैं उसे तट तक आने को कह रहा हूँ किन्तु वह सुनती ही नहीं। मेरे शब्द उस तक नहीं जा रहे हैं। उसका ध्यान कहाँ है? मैं कुछ क्षण प्रतीक्षा कर लेता हूँ। हो सकता है वह कुछ समय पश्चात आ जाए।'
केशव तट पर प्रतीक्षा करने लगा।
'गुल आगे नहीं बढ़ रही है। कहीं कोई समस्या तो नहीं आ रही गुल को?' केशव गुल को ध्यान से देखने लगा।
'यह क्या? गुल शीला पर क्यूँ बैठ गई? उसे तट पार आने का मन ही नहीं क्या? इस प्रकार तट पर बैठी रहेगी तो तट पर कब आएगी? कब घर जाएगी? कहीं कोई नई समस्या को आमंत्रित तो नहीं कर रही? मुझे उसे शीघ्र ही तट पर लाना होगा।'
गुल को लाने के लिए केशव समुद्र में कूद पड़ा।
"गुल, समुद्र से इतना मोह उचित नहीं। चलो, घर चलो।"
"केशव। मैं भी घर जाना चाहती हूँ। किन्तु ...।"
"यह स्मरण रहे कि हम धरती के जीव हैं, समुद्र के नहीं। हमें यह मोह त्याग कर घर चलना होगा।"
"चलना तो है ही।"
"तो चलो, किसने रोका है तुम्हें?"
"इस समुद्र ने।"
"समुद्र कभी किसी को नहीं रोकता।"
"तुम नहीं मानोगे, केशव। किन्तु यही सत्य है। मैंने सभी प्रयास किए थे किन्तु समुद्र मेरे मार्ग में व्यवधान डालता रहा। प्रत्येक प्रयास पर वह मुझे तट से विपरीत दिशा में धकेल देता है। प्रयास करते करते थक गई हूँ। क्या बैर है इस समुद्र को मुझ से। तुम ही कहो ऐसे में मैं घर कैसे जाऊँगी?"
"ऐसा तो नहीं हो सकता। गुल, तुम कहीं मिथ्या तो नहीं कह रही?"
"मैं सत्य कह रही हूँ, मेरी सहायता करो। मुझे घर लौटा दो।"

केशव विचारने लगा।
“केशव, तुम सुन रहे हो? मेरी सहायता करो।” गुल के मुख पर भय, वेदना, चिंता तथा आशा के मिश्र भाव थे।
“शांत हो जाओ, गुल। तुम मेरे साथ चलो। मैं जो कहूँ वह करोगी?”
“तुम जो कहोगे वह सब कुछ करूंगी। किन्तु मुझे यहाँ से ले चलो।”
“गुल, समुद्र से क्षमा मांग लो उसकी प्रार्थना कर लो। वह अवश्य तुम्हारी सहायता करेग।”
“समुद्र से क्षमा? प्रार्थना? ... केशव...।”
“यही एक मात्र उपाय है बेटी।” पुजारी के शब्द गुल के कानों पर पड़े।
“विचार ना करो गुल। समुद्र से प्रार्थना करो। वह बड़ा ही कृपालु है।”
गुल ने अनायास ही आँखें बंद कर ली। हाथ जोड़ वंदन किया तथा मन ही मन क्षमा मांगने लगी।
“गुल। आँखें खोलो। समुद्र ने तुम्हें क्षमा कर दिया है।”
गुल ने आँखें खोल देखा। समुद्र का पानी जो कुछ क्षण पूर्व बड़ी ऊंची तरंगों के कारण भयावह लग रहा था वह अब शांत हो चुका था। तरंगें मंद गति से बह रही थी। समुद्र के गर्जन में अब सुमधुर संगीत सुनाई दे रहा था। यह सब देखकर गुल के नयनों से अश्रु बनकर प्रसन्नता बहने लगी।
तीनों व्यक्ति समुद्र पार कर तट पर आ गए। गुल घर के प्रति दौड़ गई। रेत पर वही परिचित पदचिन्ह छोड़ गई। उन पदचिन्हों को मिटाने का आज समुद्र ने कोई प्रयास नहीं किया। केशव कभी समुद्र को तो कभी उन पदचिन्हों को देखता रहा। पुजारी केशव को देखते रहे।
“गुरुकुल लौट जाओ, केशव।” वह लौट गया।

32

“मंदिर में मेरे साथ उन पंखियों ने अनुचित व्यवहार किया था, केशव। उनकी क्या मनसा थी?”

“विशेष कुछ नहीं, केवल भोजन चाहते थे।”
“किंतु मछलियाँ किसीका भोजन नहीं हो सकती। वह पंखी मांसाहार कर रहा था, मछली को मार रहा था। मैंने उस पंखी से उस मछली को मुक्त करवाया। मछली का जीवन बचाया। ठीक ही तो किया था मैंने। वह पंखी पापी था। पापी से मैंने किसी जीव की रक्षा की। यह तो करना ही था। वह पंखी को दंड मिलना चाहिए था।”
“नहीं, उन पंखियों का भोजन मछली ही होता है। तुमने उसका भोजन छिन लिया तो क्रोध करना स्वाभाविक ही है।”
”वह पापी है। केशव, वह पापी ही है।”
“तुम ऐसा क्यूँ कह रही हो?”
“मांसाहार पाप नहीं तो और क्या है? क्या पंखियों को किसी जीव की हत्या करने का अधिकार है?”
“पंखियों का यही भोजन है। मछली खाना पंखियों के लिए सहज है। इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है।”
“केशव, मछली पकड़ना अनुचित है, पाप है। तुम्हीं ने ही मेरे पिता को उस पाप से मुक्त करवाया था। तो कहो ना कि यह पाप है।”
“गुल, वह पाप नहीं है। पंखियों का मछली पकड़ना, उसे खाना पाप नहीं है।”
“केशव, यह कैसी बात कर रहे हो तुम? मेरे पिता जब मछलियाँ पकड़ रहे थे तो तुमने ही उसका विरोध किया था। कितना सुंदर तर्क दिया था, स्मरण है तुम्हें? उसी तर्क पर कहो कि पंखी पापी है। कहो, केशव कहो।” गुल विह्वल हो गई।
“गुल, ईश्वर ने उनके लिए यही भोजन बनाया है। मनुष्य की बात भिन्न है।”
“यह कैसी भिन्नता है?” गुल केशव की बात से असहमत थी।
“इस संसार में कुछ भी एक समान नहीं होता।”
“सत्य भी नहीं?”
“सत्य हम समझते हैं इतना सरल, सहज नहीं होता।”
“तो क्या सत्य जटिल होता है?”
“सत्य से अधिक जटिल कुछ भी नहीं।“
“मुझे तो इस सत्य से भी अधिक जटिल तुम लग रहे हो, तुम्हारे विचार लग रहे हैं। मैं तुम्हारे विचारों को नहीं मानती।”
“तो क्या चाहती हो तुम?”
“कुछ नहीं। मैं तुमसे बात ही नहीं करना चाहती। मैं चली जाती हूँ घर।”
“जैसा तुम उचित समझो।” गुल अपने भीतर, अपने साथ अनेक प्रश्न, अनेक संशय लेकर चली गई। केशव ने उसे नहीं रोका।

32

अनेक प्रभात व्यतीत हो गए। केशव समुद्र तट पर नित्य ही आया करता था। उसे प्रतीक्षा रहती थी गुल की। किन्तु गुल नहीं आती थी। दिवसों की प्रतीक्षा अब महीने में बदल गई। किन्तु गुल तट पर नहीं आई। केशव ने किसी से पुछने की चेष्टा भी नहीं की। वह मौन ही प्रतीक्षा करता, मौन ही मन को मना लेता, मौन ही गुरुकुल लौट जाता। इस मौन में छिपी संवेदना समुद्र से अज्ञात नहीं थी। समुद्र, केशव के इस मौन को समझ रहा था तथापि वह भी मौन रहा। वह भी प्रतीक्षा करता रहा। केशव की मौन प्रतीक्षा में वह अपने मौन से सहायता करता रहा।

++++++

एक नूतन प्रभात अवनि पर प्रवेश करने को सज्ज हो रहा था। केशव समुद्र तट पर बैठा था किन्तु उसका मुख समुद्र की दिशा में, पश्चिम दिशा में नहीं था। समुद्र के प्रति उसकी पीठ थी। वह पूर्व दिशा में देख रहा था, सूर्य के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे प्रतीत हो रहा था कि सूर्य आज उदय होने में विलंब कर रहा था। किन्तु वह पूर्ण धैर्य से प्रतीक्षा कर रहा था। सुदूर पूर्वाकाश में कुछ बादल थे जो अनेक रंग बदल रहे थे।कभी लाल, कभी पीला, कभी नारंगी तो कभी गुलाबी रंग धारण कर रहे थे। उन बादलों की छाया में अनेक पंखी उड रहे थे। वह सब मौन ही उड़ रहे थे। कोई ध्वनि नहीं कर रहे थे। समुद्र की तरंगें शांत थी। हवा मंद गति से प्रवाहित हो रही थी। समय भी मंद गति से गति कर रहा था। यह सब मौन थे, पूर्णत: मौन, पूर्णत: शांत।
सब कुछ स्थिर था। इतनी स्थिरता, इतनी अचलता इससे पूर्व केशव ने ना ही देख़ी थी, ना ही अनुभव की थी। वह भी इसी स्थिरता में घुल गया, स्थिर हो गया। स्थिर प्रतिमा की भांति अपलक दृष्टि से, अनिमेष आँखों से सूर्योदय की प्रतीक्षा करने

लगा। एक एक क्षण मौन व्यतीत हो रही थी, मंद गति से व्यतीत हो रही थी। सूर्य क्षितिज से अभी दूर था।
उस स्थिरता मे, उस अचलता में, उस नि:शब्दता में सहसा एक शब्द घोष हुआ।
ओम्।
पुन: शब्द घोष हुआ।
ओम्।
पुन: पुन: शब्द घोष होता रहा।
ओम्। ओम्। ओम्। ओम्।
इस नाद से सब कुछ आंदोलित हो गया। स्थिरता में तरंग उत्पन्न हो गए। अचलता चलित होने लगी। नि:शब्दता में नाद ध्वनित-प्रतिध्वनित होने लगा। हवा गतिमान हो गई। पंखी गान करने लगे। स्थिर बादल चलित होने लगा। समय का वह क्षण जैसे किसी तंद्रा से जागा हो, चलने लगा। समुद्र में तरंगे बहने लगी। मौन भंग हो गया।
केशव ने इन सभी परिवर्तनों का अनुभव किया, अनिमेष आँखें क्षण भर के लिए बंद हुई, पुन: खुल गई।
ओम् का नाद अभी भी हो रहा था। उस स्वर से प्रकट हो रही मधुर सुगंध का स्पर्श होने लगा।
"यह स्वर गुल का है, यह सुगंध गुल की है। निश्चित ही वह यहाँ उपस्थित है।"
गुल केशव के सन्मुख आ गई। पूर्वाकाश तथा केशव के मध्य वह बाधा बनकर खड़ी हो गई। केशव ने स्मित से स्वागत किया। गुल कुछ कहने की चेष्टा कर रही थी कि केशव ने संकेतों से उसे मौन रहने को कहा। गुल चिड गई, उसे कहना था, बोलना था किन्तु केशव उसे रोक रहा था। उसने पुन: यत्न किया, केशव ने पुन: रोका। पूर्व दिशा में उदित होने वाले सूर्य के प्रति संकेत किया।
गुल ने पूर्व दिशा में दृष्टि की। वह मौन हो गई। पूर्व दिशा के अनुपम द्रश्य के संमोहन पाश में बंध गई।
सूर्य के आगमन की क्षण आ रही थी। प्रकाश की तीव्रता में वृध्धी होने लगी। क्षण क्षण आकाश रंग बदलने लगा। किसी चंचला की भांति आकाश उत्साहित था। क्षितिज से उड़ता हुआ एक पंखी समुद्र की तरफ आने लगा। अवनि को सूर्य के आगमन की सूचना देने आ रहे प्रहरी जैसा लग रहा था वह पंखी।
निमिष मात्र में पूर्व दिशा में एक वक्राकार आकृति द्रश्यमान हो गई। सूर्य की वह प्रथम छवि थी। किसी अंगूठी जैसा आकार था। लाल रंग वाली वह आकृति क्षण क्षण विकसित हो रही थी। क्षण भर में अर्ध वक्राकार आकृति से आकाश प्रकाशित हो गया।
स्थिर द्रष्टि से केशव तथा गुल उसे देख रहे थे। किन्तु सूर्य गतिमान था। पूर्ण रूप से वह आकाश में प्रवेश कर गया। उसने लाल रंग त्याग दिया था तथा पीला रंग धारण कर लिया था। दिशाएँ देदीप्यमान हो गई। अनेक पंखी उड़ने लगे, कलशोर करने लगे।
गुल उस क्षण में स्थिर हो गई। मुग्धा सी देखती रही। मन में उठ रहे विचार शांत हो गए। कुछ भी कहने को मन नहीं हुआ। दूर एक वृक्ष की डाल पर कुछ पंखी जा बैठे। वृक्ष के पर्ण जागृत हो गए। उसने गुल को भी जागृत कर दिया। उसका संमोहन भंग हुआ। अनेक बार उसने अपनी आँखें बंद की, खोली। अंतत: वह किसी स्वप्नावस्था से जागी। उसने केशव को देखा। केशव के मुख पर अनुपम प्रसन्नता थी।
"केशव।" गुल के शब्द ने केशव को प्रवाहित कर दिया।
"कहो, गुल। अब जो कहना चाहते हो वह कह सकती हो।"
"कितने दिवसों से हम इसी स्थान पर सूर्योदय से भी पूर्व आते रहें हैं।"
"मैंने इन दिवसों की गिनती नहीं की है।"
"केशव, मैं उन दिवसों की संख्या नहीं पूछ रही हूँ।"
"तो क्या कह रही हो?"
"यही कि इतने दिवसों से हम यहाँ आते रहे हैं। हम कई काम करते रहे हैं। किन्तु हमारी द्रष्टि समुद्र के प्रति ही रहती थी। हमने सदैव पश्चिम दिशा में ही ध्यान केन्द्रित किया। इसी अवस्था में पूर्व दिशा में सूर्य उग जाता था। हमने कभी इस घटना को आज से पूर्व नहीं देखा। ऐसा क्यूँ?"
"गुल, मैं तो विगत अनेक दिवसों से इस घटना का साक्षी रहा हूँ। सूर्योदय का अनुभव करता रहा हूँ।"
"किन्तु मैं तो आज ही इस घटना का अनुभव कर रही हूँ।"
"इतने दिवसों के अंतराल के पश्चात जो तुम आई हो।"
"तुम ठीक कह रहे हो केशव। इन दिवसों में मैं … ।" गुल को रोकते हुए केशव ने कहा, "उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस समय हम सूर्योदय की घटना के आनंद में मग्न हैं। हम उस विषय में ही बात करें तो?"
"अवश्य, केशव। आज मैंने कदाचित प्रथम बार ही सूर्योदय देखा है।"

“देखा?”
“नहीं। नहीं। प्रथम बार अनुभव किया।”
“कैसा रहा यह अनुभव?”
“यह अनुभव तो .... ऐसा अनुभव तो.... ।” गुल उचित शब्दों को बोलने में विफल रही।
“कहो, गुल। मैं सुनने को उत्सुक हूँ।”
कुछ क्षण विचार कर गुल बोली, “न होगा यह मुझ से। उसे कहने हेतु मेरे पास शब्द नहीं है। शब्दों के पास ऐसी संभावना कहाँ कि वह भावनाओं को व्यक्त कर सके?” गुल रुक गई। केशव उसे देखता रहा।
”केशव, मुझे इस प्रकार ना देखा करो। एक तो मेरे पास शब्द नहीं है और तुम इस प्रकार मुझे देख रहे हो।”
“ठीक है, तो अब मैं तुम्हें नहीं किन्तु सूर्य को देखता हूँ, समुद्र को देखता हूँ।” केशव ने द्रष्टि हटा ली।
“अब ठीक है?”
“धन्यवाद, केशव। मुझे कहना है कि सूर्य जब उदय होता है तब कितनी सारी अनुभूतियाँ होती है । उस समय यह संसार निंद्रा में खोया होता है। यदि कोई व्यक्ति एक बार इस क्षण की अनुभूति कर लेगा तो वह कभी भी एक भी सूर्योदय को चूकेगा नहीं।”
“तुम प्रत्येक सूर्योदय की साक्षी बनोगी?”
“कोई संदेह?”
“स्वागत है आपका।”
“धन्यवाद केशव। किन्तु मेरे प्रश्न का उत्तर दो। विगत दिवसों में हमारा ध्यान सूर्योदय के प्रति क्यूँ नहीं गया?”
“उत्तर सरल है, सहज भी।”
“तो कहो ना।”
“हम समुद्र तट के निवासी हैं। समुद्र विशाल, अटल तथा अडग है। किसी भी समय वह इसी स्थान पर रहता है। यह स्वाभाविक है कि हम समुद्र के प्रभाव में रहते हैं। सूर्य भी विशाल है किन्तु वह प्रतिक्षण चलित रहता है।”
“अर्थात समुद्र का प्रभाव सूर्य के प्रभाव से अधिक है।”
“यह निष्कर्ष अनावश्यक है। बस इतना समझ लो कि जो अधिक निकट होता है उसका प्रभाव अधिक होता है।”
“बस, इतनी सी बात?”
“हाँ, गुल।”
“केशव, तूम मेरे प्रत्येक संशय का समाधान कर देते हो। मेरे प्रश्नों के उत्तर अत्यंत सरलता से देते हो।”
“इस प्रसंशा के लिए धन्यवाद।”
“केवल धन्यवाद? कुछ और कहो।”
“मुझे कुछ नहीं कहना। तुम्हें कुछ कहना हो तो कहो।”
“तुम पुछोगे नहीं कि इतने दिवसों से मैं क्यूँ नहीं आई? मैं कहाँ थी? कुछ तो पूछ लेते तुम?”
केशव ने मौन स्मित दिया। गुल उसका अर्थ समझ नहीं पाई।
“केशव कुछ बोलो ना। इस प्रकार तुम्हारा मौन रहना मुझे विचलित कर रहा है।”
“इतनी सारी अनुभूतियों के उपरांत ऐसे प्रश्न करना, ऐसी उत्कंठा प्रकट करना उचित है क्या?”
“क्यूँ?”
“यह मोह है। मोह बंधन है। हमें ऐसे मोह से, ऐसे बंधन से बचना होगा।”
“केशव, तुम निष्ठुर हो अथवा स्थितप्रज्ञ?”
“मुझे विदित नहीं है। मैं विगत समय में रुचि नहीं रखता। मेरे लिए यह वर्तमान ही रुचिकर है।”
“इस वर्तमान में क्या रुचिकर है श्रीमान?”
“सब कुछ रुचिकर है। जैसे कि इस क्षण तुम यहाँ हो। तुम्हारे साथ अभी अभी हमने सूर्योदय की अनुभूति की है। इस क्षण हम समुद्र की ध्वनि को सुन रहें हैं। दूर मंदिर की धजा हवा की लय पर कोई संगीत सुना रही है। यह क्षण....।”
“हाँ, यह सब रुचिकर है।”
“कुछ ही क्षण में मंदिर में आरती होगी। घंटनाद एक नयी रुचि उत्पन्न कर देगा। हमें उसका आनंद लेना होगा। तो मंदिर चलें?”
“मंदिर चलने की इच्छा तो है किन्तु मन रोक रहा है। मंदिर के नाम से मन में आशंका उत्पन्न हो जाती है।”
“कैसी आशंका?”

“दो है। एक, उन पंखियों का मांसाहार मुझे अभी भी व्यथित कर रहा है। दूसरा, कहीं पुन: समुद्र में भटक ना जाऊं? नहीं केशव, मैं मंदिर नहीं आ रही। तुम जाना चाहो तो जा सकते हो।” गुल शीला पर बैठ गई।
“गुल, तुम्हारी दोनों आशंकाएं निरधार है। एक, समुद्र ने तुम्हें क्षमा कर दिया है। दो, पंखियों के मांसाहार तथा पापाचार की बात। पाप तथा पुण्य कभी निरपेक्ष नहीं होते। व्यक्ति, समय तथा परिस्थिति के सापेक्ष में ही इसका मूल्यांकन करने पर ही ज्ञात होगा कि वह पाप है, पुण्य है अथवा कुछ भी नहीं है।”
“वह कैसे?”
“मनुष्यों के लिए प्रकृति ने भोजन के अनेक विकल्प प्रदान किए हैं। हम फल, अन्न आदि ग्रहण कर सकते हैं, उसे उगा सकते हैं, उसे पका सकते हैं। पशु-पंखी आदि को यह विकल्प उपलब्ध नहीं है। अत: वह मांसाहार करते हैं। बड़ा जीव छोटे जीव को मारता है। यह प्रकृति की रचना है। यही प्रकृति का क्रम है।”
“ईस क्रम को बदल देना चाहिए।”
“प्रकृति के क्रम को कैसे बदला जा सकता है?”
“यह कार्य हम जैसे मनुष्यों को करना होगा।”
“हमें? कैसे?”
“हमें इन पशु पंखियों को अन्न खिलाना होगा। समय के एक अंतराल के पश्चात संभव है कि प्रकृति की यह व्यवस्था बदल जाय। प्रकृति सदैव परिवर्तनशील होती है।”
“गुल, इस विषय पर तुम इतना अधिक सोच सकती हो? तुम्हारे इस विचार ने एक नयी दिशा का संकेत दिया है। हमें इस प्रस्ताव पर कार्य करना होगा।”
“तो इस क्षण से ही प्रारम्भ करते हैं।”
“चलो, मंदिर चलते हैं।”

33

केशव मंदिर की दिशा में चलने लगा, गुल भी।
मंदिर तथा तट के मध्य जलराशि न्यूनतम थी। दोनों ने चलते हुए उसे सरलता से पार कर लिया।
गुल सीधे ही मंदिर के भीतर चली गई। भगवान के सन्मुख रखे चावल मुट्ठी में भरकर वह प्रांगण में चली आई। समुद्र में दूर कहीं पंखी उड़ रहे थे, गुल को उन पंखियों की प्रतीक्षा थी।
गुल ने अपनी मुट्ठी खोल दी। सारे चावल बिखेर दिये। एक कोने में जाकर वह खड़ी हो गई। प्रतीक्षा करने लगी।
‘आज मुझे ईन पंखियों से कोई भीती नहीं है। मैं इन सभी से मित्रता करूंगी। वह भी यहाँ आएंगे, चावल के दाने खाएँगे, तत् पश्चात मेरे साथ मैत्री कर लेंगे।’ गुल मन ही मन बात करती रही।
एक पंखी उड़ता हुआ प्रांगण में आया। वह चावल के दानों को देखता रहा। गुल उसे देखती रही।
‘इन दानों को देखकर यह पंखी के मन में कौन से भाव उत्पन्न होते होंगे? कुतूहल होगा अथवा कौतुक? मुझे उसके मुख को देखना चाहिए, मुख पर कैसे भाव होंगे?’
‘गुल, तुम यह देख नहीं सकोगी।’
‘क्यूँ?’
‘यह पंखी है, मनुष्य नहीं, मनुष्यों के मुखभावों को तो मनुष्य समज लेता है किन्तु इन जीवों के मुखभावों को समजने में मनुष्य असमर्थ रहा है।’
‘कोई बात नहीं, वह भी मैं सीख लूँगी।’
‘तब तक इस पंखी को निहारते रहो गुल।’
वह पंखी को निहारने लगी। वह पंखी कुछ क्षण उन दानों पर चलता रहा। वह उड़ गया। गुल उसे उड़कर जाते हुए देखती रही।
‘यह तो चला गया । एक भी दाना नहीं खाया इसने!’
वह पंखी दूर समुद्र में उडते अनेक पंखियों के समूह में जुड़ गया। गुल उन पंखियों को देखती रही। सहसा उसके कानों पर

आरती की ध्वनि पड़ी। उसे मन हुआ कि मंदिर के भीतर दौड़ जाउं और आरती में मग्न हो जाऊं। उसने अपने चरण मंदिर के प्रति उठाए ही थे कि दो तीन पंखी प्रांगण में आ गए। गुल ने अपने चरण रोक लिए। वह ऊन पंखियों का अवलोकन करने लगी।
पंखी चावल के दानों पर चलने लगे। वह कभी चलते थे तो कभी रुक जाते थे।
'कितने चंचल हैं यह पंखी! इनकी चंचलता मेरा मन मोह रही है। मुझे आकृष्ट कर रही है। यदि वह सब इन दानों को भी खाने लगे तो इससे अधिक मोहक इस जगत में कुह नहीं होगा।'
पंखियों ने एक भी दाना नहीं खाया। सभी उड गये। अपने समूह में जुड़ गए।
'यह भी उड गए। एक दाना भी नहीं खाया। क्या वह अपने स्वभाव का त्याग नहीं करेंगे? मेरी अपेक्षा के विपरीत हो रहा है। क्या मुझे आशा छोड़ देनी चाइए?'
अपने विचारों से परास्त होती हुई गुल मंदिर के भीतर चली गई। मंदिर में आरती चल रही थी। उसने अपने उद्विग्न मन को आरती में लगाकर शांत करने का प्रयास किया, विफल रही। आरती सम्पन्न हो गई किन्तु मन शांत नहीं हुआ। वह मंदिर से बाहर चली गई। प्रांगण में जाते ही वह मंदिर के भीतर लौट आई।
"क्या हुआ गुल?" केशव ने पूछा, "इस प्रकार लौट क्यूँ आई? मैं भी तो देखूँ कि बात क्या है।" केशव बाहर जाने लगा।
गुल ने उसे रोक लिया,"बाहर का द्रश्य यहीं खड़े रहते हुए देखो। कोई ध्वनि ना करना। पगरव भी नहीं। बस देखते रहो।"
केशव के मुख पर अनेक प्रश्न आ गए जिनके उत्तर गुल के हाथों के संकेतों में थे। वह रुक गया। बाहर देखने लगा।
प्रांगण में वही श्वेत मांसाहारी पंखियों की टोली थी जो चावल के दानों को खा रही थी। पंखी उल्लास से भरे थे, प्रसन्न होकर कलरव कर रहे थे। गुल उसे मुग्धता से देख रही थी, प्रसन्न हो रही थी। केशव उस प्रसन्नता के भावों को निहारने लगा।
"गुल, क्या बात है? तुम इतनी प्रसन्न क्यूँ हो?"
"केशव, इन पंखियों को देखो। चावल के दानों से अपनी क्षुधा को तृप्त कर रहे हैं। कितना मनोहर द्रश्य है यह!"
"इस मनोहर द्रश्य को समीप से देखते है। चलो।"
"नहीं केशव। हमारे पगरव से पं खी उड जाएँगे। दूर से ही कुछ दृश्यों की मनोहरता का अनुभव करना उचित होता है। सौन्दर्य के समीप जाने से कभी कभी सौंदर्य अधिक दूर हो जाता है। कभी कभी तो वह सदा के लिए खो भी जाता है।"
केशव बाहर के द्रश्य को भीतर से दे खने लगा । अनेक पंखीदाना खा रहे थे। इ धर उधर घूम रहे थे। उनके कलरव में प्रसन्नता थी। कुछ ही क्षण में सभी दाने समाप्त हो गए। कुछ क्षण दानों को खोजते हुए पंखी प्रांगणमें घूमते रहे, उड़ते रहे। जब उन्हें स्पष्ट हो ग या कि कोई भी दाना नहींबचा है, सभी समुद्र की दिशा में उड गए। गुल तथा केशव प्रांगण में आ गए। पंखी दूर गगन में उड रहे थे।
"केशव।" केशव ने गुल को देखा। उसके मुख पर विजयी भाव थे।
"कहो।"
"केशव, इन पंखियों को देखा? प्रकृति के नियम से वह मांसाहारी है। किन्तु आज इन पंखियों ने चावल के दाने खाये हैं। व ह शाकाहारी बन गए हैं। प्रकृति के नियम को बदल दिया हैं इन पंखियों ने। जैसे मेरे पिता ने एक ही क्षणमें मांसहार त्याग दिया थावैसे ही इन पंखियों ने भी आज से मांसाहार त्याग दिया है।"
"यह अर्ध सत्य है गुल। पंखियों ने चावल के दाने अवश्य खाये हैं किन्तु मांसाहार त्याग दिया है यह कहना उचित नहीं है।"
केशव कह रहा था तभी एक पंखी अपनी चांच में एक मछली को लेकर प्रांगण में आ गया। केशव ने तथा गुल ने उसे देखा। दोनों ने एक दूसरे को देखा। गुल क्षोभ करने लगी, पंखी पर कृध्ध हो गई। वह दौड़ गई, पंखी को उड़ा दिया।
"शांत हो जाओ, गुल। प्रकृति के नियम स्थायी होते हैं। हमें उसे बदलने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। हम उसे बदल नहीं सकते।"
"केशव, मैं दुखी हूँ। तुम्हारे इन शब्दों नेमुझे अधिक दुखी कर दिया है। अब मुझे कुछ नहीं कहना।" वह मौन हो गई। मौन रहते हुए दोनों ने जल पार किया, तट पर आ गए। मौन ही गुल घर की तरफ चल दी। केशव उसके पदचिन्हों को देखता रहा, मौन रहकर ।

34

घर से जब गुल निकली तो रात्रि का अंतिम प्रहर अपने अंतकाल में था।
“इतने अंधकार में कहाँ जा रही हो? प्रतिदिन जिस समय तुम समुद्र तट पर जाती हो वह समय आने में अभी समय है।” गुल के पिता ने गुल को रोका।
“जी, लौटकर बताऊँगी।” गुल के चरण अधीर थे। वह दौड़ गई। समुद्र के तट पर आ गई।
समुद्र को अंधकार में निहारती, नीरवता में समुद्र को सुनती वह भड़केश्वर मंदिर की तरफ गति करने लगी। समुद्र की ध्वनि में एक लयबध्ध संगीत था। उस लय में वह मग्न थी। कुछ क्षण पश्चात वह लय खंडित हो गया।
‘यह ध्वनि समुद्र की लय से भिन्न है। कैसी है यह ध्वनि?’ गुल ने अपनी गति रोक ली। उसने ध्वनि के उद्गम को खोज लिया, उस पर ध्यान केन्द्रित करने लगी।

'उस बिन्दु पर कुछ गतिमान है जो समुद्र की इस लय को भंग कर रहा है। कोई आकृति है वहाँ पर। क्या हो सकता है, इस समय? कोई जीव? कोई वस्तु? कोई नौका? इतने अंधकार में कुछ भी स्पष्ट नहीं हो रहा है। मैं क्या करूँ? रुक जाऊं? प्रकाश होने तक प्रतीक्षा करूँ? नहीं... नहीं। जिस कार्य हेतु मैं घर से चली हूँ मुझे उसे पूर्ण करना होगा। मुझे यहाँ रुकना नहीं है। मैं चलती हूँ।'

वह चली। कुछ दूरी पर पुन: रुक गई। वह उस उद्गम बिन्दु के समीप थी। उसने उसे ध्यान से देखा।

'यह तो मानव आकृति है। कोई व्यक्ति समुद्र में स्नान कर रहा है। कौन होगा इस समय?' गुल के मन में अनेक विचार, अनेक तर्क, अनेक प्रश्न, अनेक उत्तर जन्मे तथा मृत भी हो गए। वह कोई निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाई। इसी अवस्था में उसने उस बिन्दु को वहीं छोड़ दिया, मंदिर की तरफ चल पड़ी। पानी पार किया, मंदिर में आ गई।

उस समय मंदिर में कोई नहीं था। वह मंदिर के भीतर गई, शिवलिंग के समीप गई, हाथ जोड़े और बोली, "हे शिव शंकर, हे महादेव, मेरा वंदन स्वीकार करो। आज मैं आप को समर्पित चावल के सभी दाने आपसे मांग रही हूँ। मैं इसे ले जाती हूँ। मुझे इसकी अनुमति दें। मेरा यह अपराध क्षमा करें।" गुल ने नतमस्तक वंदन किया। शिवलिंग के समीप पड़े चावल के सभी दाने लेकर प्रांगण में आ गई। सभी दाने वहीं पर बिखेर दिये।

"अब मुझे प्रतीक्षा के उपरांत कोई काम नहीं है।"

गुल प्रांगण के एक कोने में चली गई। भीत के सहारे खड़ी हो गई। मन के सभी विचारों को शांत करने लगी, विराम देने लगी। वह उस वर्तमान की क्षण में लौट गई। वह क्षण अनुपम था। उस क्षण में एक अकथ्य- अकल्पय अनुभूति थी ऐसा वह अनुभव कर रही थी।

उसने समग्र दिशाओं में दृष्टि डाली। उसे कुछ भिन्न ही प्रतीत होने लगा। वह स्वयं से बातें करने लगी

"यह समुद्र पूर्णत: शांत है, स्थिर है। जैसे अभी भी वह निंद्रा में हो। यह लहरें भी आलसी व्यक्ति की भांति मंद गति से तट की तरफ प्रवाहित हो रही है। तट पर जाकर जैसे सो जाती है। इन में न कोई उमंग है ना कोई चंचलता है, ना ही कोई ध्वनि है। जैसे तट पर जाने की परंपरा को निभा रही हो।"

गुल ने गहन श्वास लिया।

"समुद्र की भांति यह हवा भी ऊर्जाहिन है। हवा है तो सही किन्तु निस्तेज, निष्प्राण व्यक्ति की भांति स्थिर है। कभी कोई एक मंद लहर गति करती आती है तो पुन: शांत हो जाती है। यह मंद लहर जब मेरे तन को स्पर्श करती है तभी प्रतीति होता है कि मैं जीवंत हूँ। अन्यथा मैं भी प्रतिमा सी स्थिर खड़ी हूँ।मेरा चेतन, मेरे प्राण कहाँ है? किसने हर लिया है यह सब मुझसे? मैं इस प्रकार स्थिर क्यूँ हूँ? मेरे भीतर की शक्ति कहाँ चली गई? यह क्या हो रहा है मुझे? मैं स्थिर खड़ी क्यूँ नहीं रह पाती? मुझे इस भीत का आश्रय लेना होगा।"

गुल ने भीत को पकड़ लिया।

"यह भीत मेरे हाथों से सरक रही है। यह भी मुझे सहारा नहीं दे पा रही। मुझे बैठ जाना होगा।"

वह बैठ गई। आँखें बंद कर ली। सब कुछ स्थिर हो गया। जड़ सा स्थिर।

"मेरे चारों तरफ यह कैसा अंधकार छाया है? यह तमस किसी गहन सागर की भांति मुझे अपने भीतर डुबो रहा है। मैं गहन, अधिक गहन तमस में खींची जा रही हूँ। एक तीव्र प्रवाह में बही जा रही हूँ। मुझे इसे रोकना होगा, प्रतीकार करना होगा। अन्यथा यह तमस मुझे नष्ट कर देगा। नहीं, मुझे प्रकाश की ज्योति को पाना होगा। तमस के इस प्रवाह को, इस गति को रोकना ही होगा। क्या मैं रोक पाऊँगी? कदाचित मुझ में इतना साहस नहीं है। किन्तु मैं प्रयास करूंगी, मैं तमस की इस गति का प्रतिरोध करूँगी। मैं, मैं...।"

गुल ने आँखें खोल दी। सम्मुख वही स्थिरता थी। कोई जीवन नहीं, कोई गति नहीं। समुद्र की मंद लहरों की शुष्क ध्वनि के अतिरिक्त सब कुछ स्थिर था, शांत था।

गुल ने गगन की तरफ देखा।

"यह गगन भी स्थिर है। इतने तारें, इतने नक्षत्र भरे हैं तेरे आँगन मे फिर भी तुम स्थिर क्यूँ हो, गगन? क्या तुम में भी कोई चेतना शेष नहीं बची? गतिमान हो ऐसा एक मेघ भी नहीं है तुम्हारे पास? तुम भी निष्प्राण हो गगन, निष्प्राण।"

"यहाँ कितने अधिक पंखी उड़ा करते थे। इस समय यह सब कहाँ चले गए? अभी तक एक भी पंखी उड़कर यहाँ नहीं आया। हे पंखिओं, आ जाओ। तुम्हारे भोजन के लिए मैंने इस प्रांगण में इतने सारे चावल बिखेर दिये हैं। तुम्हें ज्ञात है? यह चावल तुम्हारे लिए मैंने स्वयं महादेव से मांग लिए हैं। तुम सब आ जाओ, इस चावल को खाओ।अपनी चंचलता से इस अनंत स्थिरता को परास्त कर दो। अपनी मधुर ध्वनि से इस शांति को भंग कर दो। अपनी उपस्थिती से मेरे इस एकांत को नष्ट कर दो। आओ...आओ।"

वह पुकारती रही किन्तु कोई नहीं आया।

"हे महादेव! यह कैसी स्थिरता है? यह कैसी शांति है? यह कैसा अंधकार है? यह निस्तेज,निष्प्राण तथा ऊर्जाहीन क्षणों को तुम कैसे सह लेते हो? इस एकांत में मुझे जीवन के किसी संकेत नहीं दिख रहे। क्या इस निर्जनता का सर्जन भी तुमने ही किया है?

हे महादेव,यदि तुम में कोई चेतना शेष रही हो तो तुम इस स्थिरता को जीवन से भर दो। तुम्हें ज्ञात है कि तुम्हारी यह धजा भी निश्चेत हो गई है? देखो इसे, कैसी सोई हुई है? इसे तो उत्तुंग होकर लहराना होता है किन्तु यह तो थक गई है। उसमें भी कोई प्राण नहीं बचे। यदि तुम चाहो तो तुम अपनी इस धजा को तो जीवंत कर सकते हो। करो, हे महादेव, इस धजा को तो जीवंत करो।"

गुल धजा को देखती रही। अनेक क्षण व्यतीत हो गए किन्तु धजा में कोई प्राण संचार नहीं हुआ। वह निराश हो गई।

"महादेव, तुमसे ना होगा यह। इस एकांत को, इस शांति को, इस निश्चेत को, इस स्थिरता को मुझे ही भंग करना पड़ेगा, मुझे ही नष्ट करना पड़ेगा। मुझे मेरी शक्तियों को संचित करना होगा, उसका प्रयोग करना होगा।"

35

गुल बलपूर्वक उठी। चारों दिशाओं में द्रष्टि डाली। कहीं कुछ भी नहीं बदला था। सभी दिशाओं में वही शून्यता व्याप्त थी।

"यह कैसी शून्यता है? शिक्षक कहते थे कि शून्य का कोई मूल्य नहीं होता। शून्य स्वयं मे शून्य ही होता है। अनेक शून्य साथ मिलकर भी शून्य ही रहते हैं। तुम सत्य कह रहे थे, शिक्षक। तुम्हारी यह बातें उस समय मुझे समज नहीं आ रही थी, किन्तु अब सब समज आ रहा है। यह शून्यता भी मूल्यहिन है। यहाँ भी अनेक शून्य साथ मिले हुए हैं। सागर, लहरें, हवा, तट , धजा, मंदिर, पंखी, दिशा, तमस, एकांत, स्थिरता तथा स्वयं महादेव भी। सब शून्य है। सब एक साथ मिले हैं किन्तु अंतत: शून्य। शून्य... शून्य.... शून्य...। तुम सब केवल शून्य हो। कोई मूल्य नहीं तुम्हारा, कोई मूल्य नहीं।"

गुल ने गहन श्वास लिया, मौन हो गई, स्थिर हो गई। समग्र स्थिरता के साथ वह भी एकाकार हो गई। पुन: संचार करने का यत्न किया गुल ने।

"शिक्षक ने यह भी तो कहा था कि शून्य का मूल्य चाहे शून्य ही हो किन्तु बिना शून्य के भी किसी अंकों का मूल्य भी शून्य समान ही होता है। शून्य का मूल्य शून्य होते हुए ही अमूल्य है, यदि शून्य का स्थान परिवर्तित हो जाय तो। शून्य का स्थान ही स्वयं अपना तथा अन्य अंकों का मूल्य निर्धारित करता है। शून्य को किसी अंक के आगे नहीं किन्तु पीछे रखना है। बस इतना करने से मूल्य वृद्धि हो जाएगी।

ओह... अर्थात इस शून्यता में मुझे किसी एक अंक की आवश्यकता है जो इस शून्य का मूल्य वृद्धि कर दे। मुझे इस शून्यता को महत्व नहीं देना है, मुझे किसी अंक को महत्व देना होगा। उस अंक के पीछे... नहीं... नहीं, इस शून्यता के आगे, इतने अधिक शून्य के आगे मुझे किसी एक अंक को जोड़ना होगा। बस इतनी सी बात? पश्चात इसके यह शून्य कितने अमूल्य हो जाएंगे। मुझे बस एक अंक की ही आवश्यकता है।

किन्तु यह अंक क्या है? कौन है? कहाँ है? कैसे मिलेगा? यदि मिल भी जाये तो उसका प्रयोग कैसे करूंगी? यह गणित, यह अंक, यह शून्य का ज्ञान तो कभी किसी शिक्षक ने नहीं दिया। कैसे ढूँढ पाऊँगी मैं उस अंक को?"

वह उस अंक के विषय में विचार करने लगी। वह गगन को ताकने लगी। गगन स्थिर था। किन्तु उस स्थिर गगन में भी प्रकाश की ज्योत नियमित रूप से आ रही थी, जा रही थी। प्रत्येक 20 सेकण्ड्स के पश्चात ज्योति पुंज आता था, क्षणिक प्रकाश देता था और विलीन हो जाता था। गुल का ध्यान उस प्रकाश पर पड़ा। उसने प्रकाश के उद्गम की दिशा में देखा।

"ओह, यह तो दीवादांडी है। समुद्र के तट पर वर्षों से स्थिर खड़ी इस दिवाडांडी के प्रकाश के सहारे कितने जलयान रात्री में भी समुद्र के भीतर रहते हुए भी दिशा का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। समुद्र से धरती के अंतर का अनुमान लगा लेते हैं। समुद्र के यात्रियों का मार्गदर्शन कर रही इस दीवादांडी के इस प्रकाश पर मेरा ध्यान क्यूँ नहीं गया। इस स्थिरता में भी यह प्रकाश तो गतिमान है। मैं इस गति को देखना, समजाना कैसे चूक गई? यह प्रकाश मुझे नयी आशा दे रहा है। मुझे जिस अंक की खोज है उसमें वह मेरी सहायता अवश्य करेंगा।"

गुल ने कुछ क्षण विचार किया। वह स्वयं से बोली, " वह अंक अन्य कोई नहीं है, मैं ही स्वयं हूँ। मैं ही बनूँगी वह अंक। इतने सारे शून्य के आगे मैं खड़ी रहूँगी अंक बनकर।"

गुल चलने लगी। मंदिर के भीतर गई। वहाँ पड़े शंख को उठाया, उसे बजाने लगी। शंखनाद से हवा आंदोलित हो गई। उसने समग्र वातावरण को आंदोलित कर दिया। क्षणों से जो स्थिर थी वह स्थिरता भंग हो गई। सब कुछ प्रवाहित होने लगा।

समुद्र चेतनवंत हो गया। लहरें जाग गई। जागकर गतिमान हो गई। हवा बहने लगी। धजा निंद्रा से जागी, लहराने लगी। एकांत, स्थिरता, दिशा आदि सब जागृत हो गए। दूर कहीं से उड़ते हुए पंखी आने लगे। प्रांगण में बिखरे चावल के दाने खाने लगे।

सब कुछ, जो क्षण पूर्व निस्तेज - निष्प्राण था, जीवंत हो गया। एक मात्र तमस स्थिर था। कदाचित वह सूर्योदय की प्रतीक्षा में था।

गुल प्रसन्न हो गई, नाचने लगी। सब कुछ भूल कर नाचती रही।

गुल के नृत्य को देखकर पंखी प्रसन्नता से कलरव करने लगे। उस मधुर ध्वनि से गुल उत्साहित हो गई। अब वह उस कलरव के ताल पर नृत्य करने लगी। कुछ पंखी गुल के समीप आ गए, गुल के नृत्य को ध्यान से देखने लगे।

एक पंखी ने अपना एक पाँव उठा लिया, कूदने लगा। अन्य पंखी भी इसी प्रकार कूदने लगे। गुल जैसे नाच करती थी, पंखी

भी उसे देखकर उसी प्रकार नाचने का प्रयास करने लगे। पंखी तथा गुल का समूह नृत्य होने लगा। जो पंखी नाच नहीं सकते थे, नाच नहीं रहे थे, नाचने-न-नाचने की दुविधा में थे वह सब एक साथ जुड़ गए। एक शिस्तबद्ध दीर्घा में खड़े हो गए। प्रेक्षक बन कर उस नृत्य को देखने लगे।
मंदिर के प्रांगण में एक अद्भुत द्रश्य था। जैसे किसी रंगमंच पर नृत्य हो रहा हो तथा प्रेक्षक दीर्घा में दर्शक इस नृत्य का आनंद ले रहे हो। यह रंगमंच भी कैसा? जिसे कोई सीमा नहीं, कोई भीत नहीं, कोई छत नहीं, कोई जवनिका नहीं। ऊपर विशाल-असीम गगन तो एक तरफ अतल-गहन समुद्र। दर्शकों मे पंखी, गगन, हवा, दिशा, मंदिर, समुद्र, धजा, तारे, नक्षत्र, मेघ तथा महादेव स्वयं।

36

एक अन्य दर्शक भी उस नृत्य को देख रहा था। प्रांगण के एक छौर पर मौन खड़ा था वह। गुल के नृत्य से वह अभिभूत था। गुल के साथ नृत्य कर रहे पंखियों को देखकर वह साश्चर्य प्रसन्न था। गुल के नृत्य की एक एक भाव भंगिमाओं को वह रुचिपूर्वक देख रहा था।
'कितना निर्बाध, कितना सहज, कितना उन्मुक्त, कितना उत्कट भाव से भरा नृत्य है यह!' वह मन ही मन बोल उठा।
वह उसे देखते ही जा रहा था। स्वगत बोले जा था, 'ऐसा नृत्य कभी किसी ने किया होगा क्या? किसने? कब? कहाँ? कैसे? किसने देखा होगा? अभी तक प्राप्त शिक्षा में ऐसे नृत्य के विषय में कभी नहीं सुना। अनेक राज नर्तकियों की कथा सुनी है। अप्सराओं – गन्धर्वों के नृत्यों से भी परिचय है। किन्तु ऐसे नृत्य का किसी भी पुस्तक में उल्लेख नहीं है। यह नृत्य स्वयं में अनूठा है, अनुपम है, प्रथम है, उत्कृष्ट है। गुल, तुमने एक नए युग को जन्म दिया है। इस युग के आरंभ का मैं साक्षी हूँ। हे ईश्वर, मैं तेरा धन्यवाद करता हूँ कि तुमने इस क्षण को मेरे जीवन में स्थान दिया। हे समय, हो सके तो इस क्षण को सदैव के लिए रोक लो। मुझे ज्ञात है कि मैं काल गति से विपरीत मांग कर रहा हूँ किन्तु मांगना मेरा अधिकार है, मेरी मांग उचित हो अथवा अनुचित हो। संभव हो तो इस क्षण पर स्थिर हो जाओ, समय।'
समय ने केशव की बात नहीं मानी। वह नहीं रुका- चलने लगा। समय के चलते ही गुल का नृत्य रुक गया। पंखी भी रुक गए। शांत रहकर नृत्य का आनंद ले रहे दर्शक पंखियों की तंद्रा भंग हो गई। वह मंद मंद ध्वनि करने लगे। धीमे धीमे वह

ध्वनि तीव्र होता गया।
एक पंखी उड़ता हुआ गगन में चला गया। समुद्र के ऊपर उड़ने लगा। उसे देखकर दूसरा पंखी भी उड़ गया। तीसरा, चौथा, पाँचवा... पंखी उड़ने लगे। उड़ रहे श्वेत पंखीयों की गुल के समक्ष भिंत रच गई। एक एक कर सभी पंखी समुद्र की तरफ उड़ गए। दृष्टि के सन्मुख से श्वेत भिंत हट गई। भिंत के उस पार उसे सब स्पष्ट दिखने लगा।
वहां कोई था जो उसे देख रहा था। वह सकुचाई, संभली तथा उसे देखने लगी। वह अनिमेष नयनों से गुल को देख रहा था। गुल उसके नयनों के झपकने की प्रतीक्षा करने लगी। क्षण व्यतीत हो रहे थे किन्तु वह वैसे ही स्थिर था। गुल का धैर्य अधीर हो गया। वह उसके समीप गई।
“श्रीमान, नृत्य सम्पन्न हो चुका है। सभी दर्शक भी उड़ गए हैं। समय का वह क्षण व्यतीत हो चुका है, काल में बदल चुका है। कृपा कर के वर्तमान के इस क्षण में प्रवेश करने का कष्ट करें।”
“नहीं नृत्यांगना, वह क्षण काल नहीं हुआ है। वह क्षण अभी भी मेरे सन्मुख उसी नृत्य, उसी ताल, उसी संगीत, उसी भावों को लेकर खड़ा है। मेरे लिए जैसे वह क्षण स्वयं ही स्थिर हो गया हो। वहाँ देखो, उस बिन्दु पर देखो। तुम अभी भी वहाँ नृत्य कर रही हो, सभी पंखी तुम्हारे साथ है। दर्शक दीर्घा में बैठे असंख्य पंखियों को देखो।”
उसने दूर किसी एक बिन्दु पर संकेत किया। गुल ने उस बिन्दु को देखा। वहाँ एक ज्योति थी। वह आरती की शलाका थी। सम्पन्न की हुई आरती की ज्योत लेकर पुजारी मंदिर के प्रांगण में खड़े थे। उस ज्योत के प्रकाश में गुल ने उस आकृति को पहचान लिया।
“श्रीमान केशव, यहाँ कोई नृत्य नहीं हो रहा है। नृत्य की उस व्यतीत हो गई आभा से मुक्त होकर देखो। तुम्हारा भ्रम निरस्त हो जाएगा। वहाँ जो है वह आरती की प्रज्जवलित ज्योत ही है जो अपने आलोक से तुम्हें आकर्षित कर रही है। वहाँ पुजारी भी है, ध्यान से देखो केशव।”
केशव ने समय की उस क्षण को तोड़कर, छोडकर वर्तमान में प्रवेश किया।
“ओह। अनुपम, अद्भुत, अकल्पनीय, अद्वितीय क्षण! मैं तेरा धन्यवाद करता हु।”
“केवल उस क्षण का धन्यवाद क्यों? मेरा भी तो ...।”
“तुम्हारा भी। किन्तु क्षण का धन्यवाद सर्वप्रथम करना होता है।”
“ऐसा क्यूँ?”
“स्वयं समय ही ऐसी क्षणों का सर्जन करता है। यह भिन्न बात है कि ऐसी क्षणों के लिए समय किसका चयन करता है, किसे माध्यम बनाता है। तुम भाग्यशाली हो कि समय ने उस क्षण के लिए तुम्हें पसंद किया। भाग्यशाली मैं भी हूँ क्यूँ कि समय ने उस क्षण का मुझे साक्षी बनाया। भाग्यशाली वह पंखी भी है जो उस क्षण का हिसा बने।”
“भाग्यशाली तो मैं भी हूँ, केशव, गुल।” पुजारी ने कहा।
“वह कैसे ? आप तो महादेव जी की आरती में व्यस्त थे।”
“नहीं। आज मैंने ना तो घंटनाद किया, ना शंखनाद किया ना ही महादेव जी की आरती की।”
“तो यह आरती, यह ज्योत? यह क्या है?” केशव तथा गुल दोनों ने प्रश्न किया।
“आज मैंने नृत्य कर रही गुल की आरती उतारी है। मुझे उसमें मां पार्वती की प्रतीति हो रही थी। मैंने आरती तैयार कर ली थी। मैं आरती का प्रारम्भ करने ही जा रहा था कि मेरे भीतर से किसी ने मुझे आदेश दिया कि बाहर जाओ, गुल की आरती उतारो। आदेश का पालन करते हुए मैं बाहर आ गया। मैंने मां पार्वती की आरती उतारी।”
“ओह, ईश्वर। तेरी लीला सभी तर्कों से परे है। कोई नहीं समझ पाया इसे।” केशव ने हाथ जोड़े, नत मस्तक किया। गुलने तथा पुजारी ने भी वही किया। सभी मंदिर के भीतर गए। महादेव जी के दर्शन किए। आरती की। गुल ने घंट बजाया, केशव ने शंख। पश्चात, सभी तट पर लौट गए।

37

“अंततः तुमने उन पंखियों को मित्र भी बना लिया, शाकाहारी भी।” केशव ने मौन तोड़ा।
“यह अर्ध सत्य है, केशव।” गुल ने प्रतिभाव दिया।
“तो कहो पूर्ण सत्य क्या है?”
“पूर्ण सत्य यह है कि पंखी मेरे मित्र बन गए है किन्तु शाकाहारी बने कि नहीं यह निश्चित करना उचित नहीं होगा। मंदिर के प्रांगण में डाले दानों को उन्होने अवश्य खाये हैं किन्तु उससे उनकी क्षुधा तृप्त नहीं हो सकती। दिवस भर कभी भी वह समुद्र से मछलियां खाएँगे, खा सकते हैं। उनका पूर्ण रूप से शाकाहारी बनना मुझे संभव नहीं लगता।”
“तुम प्रयास करती रहो, तुम अवश्य सफलता प्राप्त करोगी।”
“मेरे प्रयासों की सफलता तब होगी जब इन पंखियों की सारी जन संख्या शाकाहारी बने। यदि मैं कुछ पंखियों को पिंजर में बंद रखूँ, अनेक दिवसों तक केवल शाकाहारी भोजन ही दूँ, तब कहीं वह पंखी शाकाहारी बन सकते हैं। किन्तु वह उसी कुछ पंखियों के लिए संभव है जो पिंजर में बंद हो। इतने विशाल पंखी समुदाय को शाकाहारी बनाना संभव ही नहीं।”
“एक काम कर सकते हैं हम।यदि हम अधिक मात्रा में दाना डालें तो उतनी मात्रा में वह मछलियों का शिकार नहीं करेंगे। इस प्रकार कुछ मछलियों का जीवन रक्षण हो सकता है।”
“यह उत्तम विचार है।” गुल प्रसन्न हो गई।
“केशव, प्रातः काल में तुम कवचित ही इस मंदिर में आते हो। जब भी आते हो, बड़े विलंब से- सूर्योदय के पश्चात ही आते हो। ठीक है ना?”
केशव ने मुक सम्मति दी।
“तो आज सूर्योदय से पूर्व ही मंदिर में कैसे आ गए?”
“हाँ, मैं यह बात बताना ही भूल गया। कल गुरुजी ने एक बात काही थी।”
“कौन सी बात, केशव?”
“ऋषि मुनि सदैव ब्राह्म मुहूर्त में निंद्रा का त्याग कर देते थे तथा तारा स्नान करते थे। पश्चात उसके वह सभी पुजा, यज्ञ आदि कर्म करते थे।”
“ब्राह्म मुहूर्त का ज्ञान तो है मुझे किन्तु यह तारा स्नान क्या होता है?”
“गगन के तारे अस्त हो उससे पूर्व, तारों तथा नक्षत्रों के सानिध्य में जो स्नान्न किया जाता है उसे तारा स्नान कहते है।”
“तुमने गुरुकुल में तारा स्नान कर लिया तथा मंदिर को चल पड़े?”
“नहीं गुल। मैंने ऐसा नहीं किया। तारा स्नान किसी बंद स्नान गृह में नहीं किया जाता।”
“ऐसा क्यूँ? कहाँ होता है तारा स्नान?”
“मैंने कहा ना कि तारा स्नान तारों-नक्षत्रों की उपस्थिती में उनके सानिध्य में होता है। स्नान गृह के बंद द्वार के कारण तारों तथा नक्षत्रों का सानिध्य नहीं हो सकता। अतः तारा स्नान हमें खुले गगन के तले करना होता है।”
“तो तुमने खुले में स्नान किया? तुम्हें लज्जा नहीं आई?”
केशव गुल की बात सुनकर हंस पड़ा।
“गुल, तुम भी कभी कभी ऐसी बातें करने लगती हो कि... ।”
“यही ना कि मैं अभी अपरिपक्व बालिका हूँ।” गुल भी हंस पड़ी।
“छोड़ो चलो। हम तारा स्नान की बात कर रहे थे। ऋषि मुनियों के काल में वह किसी नदी के तट पर अपना आश्रम रखते थे। तारा स्नान इसी नदी के जल प्रवाह में किया करते थे।”
“किन्तु इस द्वारिका में ऐसी नदी कहाँ है?”
“नदी नहीं है तो क्या हुआ? यह समुद्र तो है ना?”

“तुमने समुद्र में तारा स्नान किया?”
“जी।”
“समुद्र में?”
“हाँ। समुद्र में। यदि नदी नहीं है तो क्या हुआ? समुद्र भी बहता पानी ही है ना?”
“किन्तु समुद्र तो ...।”
“खारा है किन्तु अन्य सभी जलागारों से समुद्र अधिक स्वच्छ होता है।”
“वह कैसे?”
“वह निरंतर बहता बहता रहता है। अत: इसका पानी निर्मल होता है।”
“ठीक है। किन्तु इसमें मेरे प्रश्न का उत्तर कहाँ है? यह कहो कि तुम, मंदिर कैसे आ गए?”
“मैं जब तारा स्नान कर रहा था तब मैंने तुम्हें देखा था। क्षण भर तुम तट पर रुकी थी। पश्चात तुम मंदिर की तरफ चलने लगी। मेरे मन में तभी आश्चर्य ने जन्म लिया, एक कुतूहल जागा- इतने अंधेरे में गुल मंदिर क्यूँ जा रही है? इसी उत्सुकता के कारण मैं तारा स्नान छोड़कर तुम्हारे पीछे पीछे मंदिर आ गया।”
“ओह, तो उस समय समुद्र में तुम थे?”
“जी, मैं ही था।” केशव ने स्मित किया। गुल ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। वह दौड़ गई- घर की तरफ, अपने पदचिन्हों को भीगी रेत पर छोड़ गई।

38

“केशव, कृष्ण का एक नाम केशव भी है ना?” गुल ने पूछा। केशव ने गुल को देखा। वह दूर स्थित मंदिर की धजा को देख रही थी।
“गुल, आज ऐसा प्रश्न क्यूँ?”
“प्रथम मेरे प्रश्न का उत्तर दो पश्चात तुम्हें जो प्रश्न करना हो , करना।”
“कृष्ण, श्याम, मुरली मनोहर, वासुदेव, रणछोड़, पुरुषोत्तम, योगेश्वर, देवकी नन्दन, यदुनंदन, गोपाल, रासबिहारी, गोवर्धनधारी, व्रजेश, ब्रिजबिहारी, गोविंद, ... ।”

केशव बोले जा रहा था, गुल उसे विस्मय से देख रही थी।
“रुको, रुको। रुक जाओ केशव।” केशव रुक गया।
“क्या हुआ गुल?”
“यह क्या कहे जा रहे हो? मेरी समज में कुछ नहीं आ रहा।” मुख पर प्रश्नार्थ लेकर गुल केशव को देखने लगी।
“यह सभी कृष्ण के नाम है। हाँ, केशव भी कृष्ण का ही नाम है।”
“इतने सारे नाम?”
“यह तो कुछ ही नाम बताए जो प्रचलित है। वास्तव में कृष्ण के हजार नाम है।”
“मुझे विश्वास नहीं हो रहा। एक व्यक्ति के एक हजार नाम? यह कैसे संभव हो सकता है?”
“यह विषय संभावना का नहीं है, यह सत्य है। इसमें संभावना की कोई संभावना ही नहीं।”
“किन्तु,... ।”
“यदि तुम्हें इस पर कोई संदेह हो तो मैं प्रमाण दे सकता हूँ।”
“तो दो प्रमाण।”
“मैं तुम्हें कल एक पुस्तक दूंगा। उसमें कृष्ण के सभी नाम दिये हैं। प्रत्येक नाम का अर्थ तथा वह नाम कैसे पड़ा उसकी कथा भी है। तुम उसे पढना। तुम्हें उस पुस्तक पढ़ने में रुचि है क्या?”
“कल वह पुस्तक अवश्य लाना।”
“अवश्य।”
“अब यह बताओ कि तुम्हारे कितने नाम है?”
“मैं कृष्ण नहीं, केशव हूँ। मेरा तो एक ही नाम है।”
“तुम बांसुरी बज़ाना जानते हो?”
“नहीं। क्यों पूछ रही हो?”
“वहाँ दूर खड़े मंदिर को देख रहे हो? कल मैं उसे देख रही थी तब मुझे प्रतीत हुआ कि भगवान द्वारकाधीश स्वयं कृष्ण के रूप में बांसुरी बजा रहे हो। मैं उस बांसुरी की धून से खींची जा रही थी। मैं उस दिशा में चलती रही। चलते चलते मैं कहाँ जा पहुंची, ज्ञात है तुम्हें?”
“नहीं।”
“केशव, जब बांसुरी की धुन बंद हो गई तब मैं उस मंदिर के प्रवेश द्वार पर खड़ी थी।”
“पश्चात क्या हुआ, गुल?”
“कुछ क्षण मैं मंदिर को देखती रही, धजा को देखती रही। मैं स्वत: मंदिर के भीतर प्रवेश कर गई।”
“तुम मंदिर जाकर आई? क्या देखा वहाँ? भगवान के दर्शन किए? क्या क्या अनुभव हुआ वहाँ? कहो, गुल, सब कुछ कहो।”
“नहीं केशव, मैं कुछ नहीं कहूँगी।”
“क्यों? मैं उत्सुक हूँ ।”
“मंदिर के विषय में यदि इतने उत्सुक हो तो तुम स्वयं ही मंदिर क्यों नहीं जाते?”
केशव मौन हो गया। गुल ने कुछ क्षण प्रतिक्षा की किन्तु मौन नहीं टूटा।
“क्या बात है केशव? तुम तो मौन ही हो गए।”
“गुल, मैं भी एक बार मंदिर में गया था।”
“ तो तुमने वह सब कुछ देखा होगा जो मैंने देखा है। तुमने मुझे अभी मंदिर के विषय में जो जो प्रश्न कीये उन सभी का उत्तर स्वयं तुमने देखा है। तो मुझ से यह प्रश्न क़्यों?”
“मेरे मंदिर जाने की घटना अब तो प्राचीन हो गई। जब मैं इस नगरी में आया था तब मंदिर गया था। तत् पश्चात कभी नहीं गया।”
“क्यों? क्या कारण है? तुमने भगवान द्वारकधिसजी के दर्शन तो किए थे ना?”
“दर्शन नहीं कर पाया”
“मंदिर गए और दर्शन नहीं कर पाए? ऐसा कैसे हो सकता है?”
“ मैं यहां संस्कृत पढ़ने आया हूँ, ज्ञान प्राप्त करना मेरा उद्देश्य है। उस समय मैं कुछ भी ज्ञान नहीं रखता था। संस्कृत से कोई परिचय नहीं था। तब मैंने देखा था कि मंदिर में अनेक ब्राह्मण संस्कृत के श्लोकों को - मंत्रों को बड़े आत्मविश्वास भरे स्वर में बोल रहे थे। मैं उन्हें देखता रह गया और भगवान के द्वार बंद हो गए। भगवान शयन करने लगे और मैं दर्शन कर नहीं सका। किंतु ब्राह्मणों के प्रचंड स्वर से जो ध्वनि उत्पन्न हो रही थी वह मुझे प्रेरणा दे रही थी तो साथ साथ मुझे क्षोभ भी हो रहा था।”
“प्रेरणा तथा क्षोभ? दोनों एक साथ?”
“वह ध्वनि मुझे सूचित कर रही थी कि संस्कृत भाषा सशक्त है, ओजस्वी है, प्रभावी है। उसमें लय है, संगीत है, उत्साह है। यही सब मुझे प्रेरित कर रहा था संस्कृत भाषा सीखने को। उसी क्षण मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं भी संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त कर इसी प्रकार भगवान को प्रचंड नाद से मंत्र सुनाऊँगा। मैं भी पंडितों की पंक्तियों में सम्मिलित हो जाऊंगा।”
“यही प्रेरणा से तो तुम इतना ज्ञान प्राप्त कर सके हो। किन्तु क्षोभ क्यों?”
“क्षोभ होने के दो कारण थे। एक, मुझे संस्कृत का, शास्त्रों का कोई ज्ञान नहीं था तथापि ब्राह्मणों की भांति पीताम्बर पहने

रखा था। यज्ञोपवीत भी धारण कर रखा था। किन्तु मैं ज्ञानशून्य था। ब्ब्राह्मणों की भांति परिवेश धारण करने से तो ब्राह्मण नहीं बना जा सकता, पंडित नहींबना जा सक्ता। उस समय मुझे ब्राह्मण होने पर क्षोभ हुआ था।" केशव ने एक नि:श्वास के साथ कहा।
"तथा दूसरा कारण?"
"दूसरा कारण मुझे मेरी पाठशाला तक ले जाता है। कदाचित सभी पाठशाला तक ले जाता है। मैं जहां पढ़ता था वहाँ अंग्रेज़ी के साथ अन्य कई भाषाएँ सिखाई जाती थी- उर्दू भी, फ्रेंच भी। मैंने उर्दू तथा फ्रेंच थोड़ी सीख भी ली थी, मैं उसे बोलने भी लगा था। वह भाषा बोलने में मुझे गर्व होता था। मुझे प्रतीत हो रहा था कि मैं विश्व की सशक्त भाषा का ज्ञान रखता हूँ। किन्तु जब संस्कृत भाषा से परिचय हुआ तो यह ज्ञा त हुआ कि संस्कृ त ही सबसे सशक्त भाषा है , वही अन्य भाषाओं की जननी भी है।"
"इसमें क्षोभ कि क्या बात है?"
"बात यही है कि हमारी पाठशाला में संस्कृत ही नहीं पढ़ाई जाती थी। जैसे संस्कृत का कोई अस्तित्व ही ना हो। वह उपहास का केंद्र, परिहास का विषय बन जाती थी। वह कहते थे किसंस्कृत मृत:प्राय हो गई है। उसमें कोई जीवन ही नहीं है। वह किसी काम की नहीं है। कुछ ही वर्षों में यह भाषा समाप्त हो जाएगी। लुप्त हो जाएगी। उस निष्प्राण भाषा को कोई नहीं सीखता, कोई नहीं सिखाता।"
"इतने समय से संस्कृत सीखने पर अब तुम्हारा क्या अपभिप्राय है?"
"संस्कृत से अधिक प्राणवान कोई भाषा नहीं। उस दिवस के क्षोभ के स्था न पर आज मुझे गर्व हो रहा है।"
"तो तुम अब तो मंदिर जा सकते हो। भगवान के समक्ष अपने प्रचंड स्वर से ओम् का नाद कर सकते हो। किसने रोका है तुम्हें, केशव?"
"गुल, कोई किसी को रोक नहीं सकता। हम स्वयं ही अपने आप कोरोक लेते हैं। हमारे भीतर कोई है जोहमें कुछ करने को प्रेरित करता है तो कुछ करने से रोकता भी है।"
"क्या है वह? कौन है वह ?"
"अनभिज्ञ हूँ मैं उस बात से।"
"तुम्हारे भीतर के उस अज्ञा त को मैं प्रार्थना करती हूँ कि वह तुम्हेंमंदिर जाने की अनुमति दे, प्रे रणादे।" गुल ने हाथ जोड़ लिए, "हे भीतरी केशव, इस केशव को मंदि र जाने की आज्ञा दें, अनुमति दें तथा भगवान के सन्मुख ओम् के नाद का अनुरोध करें।"
" तथास्तु।" दोनों ने किसी अद्रश्य ध्वनि को सुना।
"सुना तुमने केशव? किसीने तथास्तु कहा। उसका अर्थ तो तुम्हें ज्ञात ही है।"
"हाँ, सुना मैंने। उसका अर्थ जानता हूँ मैं तथा तुम्हारे व्यंग का भी।"
"तो कब जा रहे हो मंदिर?"
"शीघ्र ही।"
"मैं भी साथ चलूँगी।"
"तुम अभी तो जा कर आई हो।"
"तो क्या? मैं तो बार बार जाना चहुंगी। तुम ले चलो तो ठीक है नहीं तो ... ।"
"नहीं तो ?"
"मैंने मंदिर जाने का मार्ग देखा है।" गुल हंस पड़ी।
"ठीक है, हम दोनों चलेंगे।"
"तो चलें?"
"अभी?"
"क्यों नहीं?"
दोनों मंदिर की तरफ चलने लगे।
"गुल, मंदिर में क्या क्या देखा कहो। मार्ग में बातें करने से मार्ग कट जाएगा।"
"केशव, मार्ग कोई भी हो कट ही जाता है- प्रतीक्षा करते हुए भी, लक्ष्य की कल्पना करते हुए भी, बातें करते हुए भी, मौन रहते हुए भी।"
दोनों मौन हो गए। मार्ग कटता रहा।

39

मंदिर से पूर्व ही एक श्रद्धालु ने केशव को रोक लिया।
“बेटे, तुम ब्राह्मण हो?”
“हाँ। किन्तु आपको संदेह क्यूँ है?”
“क्यों कि यह पीताम्बर आदि परिधान मैंने अन्य व्यक्तियों में भी देखा है।”
“आप तो व्यक्ति के वस्त्रों के आधार पर निश्चय कर लेते हो कि वह क्या है, कौन है?”
“नहीं, मैं तो बस ... ।”
“चलो छोड़िए। मुझे आप से तर्क वितर्क नहीं करना है।”
केशव उसे वहीं छोडकर जाने लगा।
“बेटे, रुको तो।”
“जी, कहो जो कहना है।” केशव रुक गया।
“क्या तुमने यज्ञोपवीत धारण की हुई है?”
“क्या तात्पर्य है आपका ?”
“मुझे किसी यज्ञोपवीत धारी ब्राह्मण बालक को यह दान करना है।” श्रद्धालु ने हाथों में रखे केले दिखाए।
“ब्राह्मण बालक ही क्यूँ? यदि बालक ब्राह्मण है किन्तु यज्ञोपवीत धारण नहीं किया तो क्या? यदि बालक ने यज्ञोपवीत धारण किया है किन्तु वह ब्राह्मण नहीं है तो क्या?”
“मुझे मेरे गुरुजी ने कहा है कि किसी यज्ञोपवीत धारी ब्राह्मण को यह दान देना है।”
“तो आपने अयोग्य गुरु को पसंद किया है।”
“मेरे गुरु के विषय में ऐसा कैसे कह सकते हो? तुम उसे कभी मिले नहीं हो तो यह मत कैसे बना लिया? वह बड़े ही विद्वान है, महान है, ज्ञानी है, सिध्ध है।”
“आपके गुरुजी की महानता को वंदन। किन्तु जो गुरु बालकों में भेद रखे वह गुरु कैसा? बालक किसी भी वर्ण से हो, उसका बालक होना मिथ्या नहीं हो जाता।”
“तुम तर्क सुंदर कर लेते हो, बालक।”
“इस प्रकार तर्क करना, संवाद करना मेरी रुचि नहीं है।”
“ठीक है बेटे, चलो, यह ले लो। मैं तुम्हें यह केले दान करता हूँ।”
“धन्यवाद महोदय। किन्तु मैं आपके इस दान का सादर अस्वीकार करता हूँ।” केशव ने क्षमा की मुद्रा में हाथ जोड़े।
“तुम मेरा, मेरे इस दान का अपमान कर रहे हो बालक।”
“नहीं श्रीमान, मेरा तात्पर्य यह नहीं है।”
“तो इसे स्वीकार करो, इसे ग्रहण करो।”
“मैं पुन: हाथ जोड़ आपसे क्षमा माँगता हूँ।”
“अर्थात पुन: अपमान?” श्रध्द्धालु क्रोधित हो गए।
“केशव, चलो यहाँ से। हमें ऐसे व्यक्तियों से चर्चा नहीं करनी चाहिए।” अब तक मौन रहकर इन संवादों को सुन रही गुल ने धैर्य खोया।
“ए छोकरी। कौन हो तुम? तुम भी इसके साथ मिलकर मेरा अपमान कर रही हो।”
“नहीं श्रीमान। आपको मान, अपमान तथा सन्मान के भेद ही विदित नहीं है। आपसे वार्तालाप करना व्यर्थ प्रलाप ही होगा। यह तो समय तथा ऊर्जा का व्यय है। केशव, हमें चलना चाहिए।”
“यह छोकरी कौन है जो हमारे मध्य हो रहे वार्तालाप में व्यवधान डाल रही है।”
“यह गुल है, मेरी मित्र। हमारा वार्तालाप तो सम्पन्न हो चुका है। यद्यपि कोई अविवेक हुआ हो तो मैं क्षमा मांगता हूँ।” केशव ने हाथ जोड़ कहा, “अब हमें आज्ञा दें। चलो गुल।”
दोनों चल पड़े। श्रद्धालु उसे देखते रह गया। कई क्षणों के पश्चात उसे ज्ञात हुआ कि केले उसके हाथ में ही रह गए। गुल तथा केशव उसकी द्रष्टि से दूर जा चुके थे।
“अन्य कोई विघ्न आए उससे पूर्व चलो मंदिर चलते हैं।”
“नहीं गुल, अब मंदिर नहीं घर चलते हैं। प्रभु से मिलन के लिए मुझे अभी प्रतीक्षा करनी होगी।”
“ऐसा क्यूँ कह रहे हो?”
“यह जो श्रीमान मिले थे वही प्रभु थे। उसके दर्शन कर लिए तो मैं तृप्त हो गया।”
“केशव, ऐसे शब्दों के प्रयोग से तुम उस व्यक्ति पर व्यंग कर रहे हो। प्रथम तो तुमने केले का दान नहीं लिया, अब उसका उपहास कर रहे हो। क्या यह तुम्हारा अभिमान था? इस प्रकार तुम उसका अपमान नहीं कर रहे थे?” गुल ने प्रश्नों का प्रहार किया।
“प्रत्येक बात के लिए हमारी व्यक्तिगत धारणाएं होती है। अपनी अपनी संवेदनायें होती हैं। यह भिन्नता होना सहज है। प्रत्येक धारणा अपने अपने दृष्टिकोण से सत्य होती है। किन्तु यही अंतिम सत्य नहीं होता।”

"तो सत्य क्या है?"
"सत्य की स्वयं कोई परिभाषा नहीं होती। सत्य स्वयं ही स्पष्ट नहीं होता। वह सापेक्ष होता है। इस घटना का सत्य भी भिन्न है, सापेक्ष है। प्रत्येक घटना का सत्य भिन्न तथा स्वतंत्र होता है।"
"इस घटना का सत्य क्या है, कहो केशव।"
"वह व्यक्ति जब केले का दान कर रहा था तब उसके मन में भाव यह था कि वह अपने समग्र ऐश्वर्य का दान कर रहा हो।
दूसरी बात- वह यह मान रहा था कि लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति तुच्छ होता है।
तीसरी बात- मैं गुरुकुल का विद्यार्थी हूँ। गुरुकुल का प्रत्येक विद्यार्थी 'अयाचक' होता है।"
"अयाचक होने का अर्थ क्या है?"
"जो व्यक्ति किसी से कोई भी वस्तु कि याचना ना करे वह अयाचक कहलाता है।"
"तो तुम अयाचक हो?"
"अवश्य।"
"इस घटना में तुमने कहाँ कोई याचना की थी? वह तो स्वयं ही तुम्हें दे रहे थे।"
"अयाचक व्यक्ति बिना श्रम के कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं करता।"
"ओह।" गुल मौन हो गई।
"किस विचार में खो गई, गुल?"
"यदि कभी मैं तुम्हारे लिए कोई वस्तु लेकर आउं तो तुम उसे ग्रहण करोगे क्या?"
"तुम ऐसा क्यों पूछ रही हो?"
"क्यों कि तुम अयाचक हो।" केशव कुछ कहे उससे पूर्व ही वह घर की तरफ दौड़ गई, केशव गुरुकुल की तरफ।

40

"केशव, क्या तुम बता सकते हो कि इस बंद मुट्ठी में तुम्हारे लिए क्या है?" केशव की विचार यात्रा गुल के शब्दों से भंग हो गई।
"कहो गुल, कैसी हो?"
"यह क्या बात हुई? यह प्रश्न कैसा?"
"यह प्रश्न सहज है।"
"सहज वह होता है जो प्रतिदिन होता हो। जो प्रश्न तुमने पूछा वह सहज कहाँ है?"
"प्रश्न तुमने भी पूछा था। क्या वह सहज था?"
"कोई असहज क्रिया किसी बात अथवा घटना की प्रतिक्रिया भी हो सकती है।"
"इस तर्क का संदर्भ तुम्हारे प्रश्न से कहाँ है?"
"तुम तो विद्वान हो केशव। थोड़े थोड़े ज्ञानी भी होते जा रहे हो। स्वयं उत्तर खोज लो, प्रश्न क्यों करते हो?"
"यही तो समस्या है गुल। मैं ज्यों ज्यों उत्तर खोजने का प्रयास करता हूँ, नए नए प्रश्न जन्म ले लेते हैं। प्रश्नों का जन्म लेना मेरे नियंत्रण में नहीं है।"
"तुम्हारे भीतर क्या चल रहा है? तुम्हारे मन में कोई चिंता प्रतीत होती है, केशव।"
"चलो छोड़ो उसे। कहो, तुम्हारा क्या प्रश्न था?"
"मेरी ईस बंद मुट्ठी में तुम्हारे लिए मैं कुछ लायी हूँ। क्या हो सकता है, कल्पना करो।"
"बंद मुट्ठी में सारा संसार हो सकता है।"
"यदि वह खुल जाय तो?"
"तो उसमें कुछ भी शेष नहीं रहता। शून्य हो जाता है।" गुल ने अनायास ही मुट्ठी खोल दी।
"शून्य!" गुल हंसने लगी।
"मैंने यही कहा था कि खुल गई तो शून्य ही शेष रह जाएगा। देखो तुम्हारी मुट्ठी में कुछ नहीं है।"
"भौतिक रूप से देखा जाये तो मेरी मुट्ठी में कुछ भी नहीं था, ना अभी है।"
"तुम तो कह रही थी कि इस बंद मुट्ठी में तुम मेरे लिए कुछ लाई हो। क्या था वह? कहाँ है वह? यह खाली क्यों है? क्या तुम असत्य कह रही थी?"
"केशव, जो व्यक्ति अयाचक होता है उस के लिए मैं क्या ला सकती हूँ? तुम्हारे लिए इस मुट्ठी में कुछ नहीं है।"
"तो तुमने ऐसा क्यूँ कहा था?"

“बंद मुट्ठी में सारा संसार हो सकता है। यही कहा था तुमने।”
“हाँ, यही कहा था।”
“यह भी कहता ना कि खुल जाये तो शून्य।”
“हाँ, यह भी मैंने कहा था।”
“मेरी इस मुट्ठी में तुम्हारे लिए सारा संसार था।” गुल ने मुट्ठी बंद कर ली, “लो अब सारा संसार है।” गुल के हास्य की ध्वनि समुद्र की तरंगों की ध्वनि से एकरूप हो गई। केशव हंस ना सका।
“केशव, तुम किस गहन विचार में मग्न थे? कौन से प्रश्न, कैसे प्रश्न तुम्हारे भीतर जन्म ले रहे हैं? तुम क्यों इतने उद्विग्न हो?”
केशव गंभीर हो गया। “सुनो गुल। कल रात्रि प्रार्थना सभा में गुरुजी ने एक बात कही जो मुझे चिंता तथा चिंतन करने पर विवश कर रही है।”
“कहो, क्या बात है।”
“गुरुजी ने कहा कि इतने सारे विद्यार्थी हैं इस गुरुकुल में किन्तु एक विद्यार्थी है जो विशेष अध्ययन करेगा, सबसे अधिक शिक्षा प्राप्त करेगा।”
“गुरुजी ने तुम्हारा नाम नहीं लिया होगा। मैं समज गई। तुम इसी कारण चिंतित हो, उद्विग्न हो।”
“नहीं ऐसा नहीं है। गुरुजी ने जिस विद्यार्थी का नाम लिया था वह मैं ही हूँ।”
“वाह। क्या बात है केशव। अभिनंदन।तुम्हारे गुरुजी का यह वचन सत्य होगा।” गुल प्रसन्न हो गई। किन्तु केशव के मुख पर कोई भाव नहीं थे। उसे देखते ही गुल की प्रसन्नता लुप्त हो गई।
“तुम क्यों चितित हो केशव? तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए।”
“मेरा नाम सुनते ही तत्क्षण मैं भी प्रसन्न हुआ था। साथी विद्यार्थियों ने भी अभिनंदन दिये थे। रात्रि भर उसी प्रसन्नता को मन में लिए अनेक स्वप्नों की कल्पना करता रहा। किन्तु प्रात: जागते ही मन पर विपरीत विचार आक्रमण करने लगे।”
“क्या प्रश्न है? कैसे विचार हैं?”
“एक, बाकी विद्यार्थी भी वही शिक्षा ले रहें हैं जो मैं ले रहा हूँ।
द्वितीय, क्या कुछ ऐसा होनेवाला है कि बाकी छात्र शिक्षा पूर्ण ना कर पाएँ?
तीसरा, क्या यह शिक्षा के उपरांत भी कोई अन्य शिक्षा है जो मुझे पूरी करनी होगी? कैसी होगी वह शिक्षा? कौन होंगे मेरे शिक्षक? कैसे होंगे? कहाँ होंगे? क्या मुझे इस नगरी का त्याग करना होगा? यदि एक बार मैंने इस नगरी का त्याग कर दिया तो मैं कब लौटकर इस नगरी में आ पाऊँगा? आ सकूँगा कि नहीं? क्या है मेरी नियति? वह मुझे कहाँ ले जाना चाहती है? नियति कौन सा कर्म मेरे माध्यम से करवाना चाहती है? मैं...।”
“रुको केशव। तुम कितना गहन विचार करते हो? आज से पूर्व तो कभी ऐसा नहीं हुआ।”
“आज से पूर्व भी गहन विचार तो करता ही था किन्तु वह मेरे भविष्य के विषय में नहीं होते थे।”
“तुम केवल विचार नहीं कर रहे हो अपितु चिंतन कर रहे हो, चिंता कर रहे हो। यह सत्य है ना?”
केशव ने मुक सम्मति दी।
“केशव, यही अंतर होता है विचारों में। अन्यों के विषय में हम केवल चिंतन करते हैं, जब बात स्वयं पर आ जाती है तब हम चिंता भी करते हैं। चिंतन तथा चिंता में यही भेद है, केशव।”
“तुम्हारा कहना उचित है गुल।”
“यह सभी भविष्य कि चिंता है।”
“तो?”
“इस प्रश्नों के उत्तर, इसकी चिंता का उपाय भी हमें भविष्य ही देगा। तो क्यों ना हम इसे आनेवाले कल पर छोड़ दें?”
“क्या तात्पर्य है?”
“भविष्य के गर्भ में प्रत्येक प्रश्न का उत्तर होता है। इसी कारण हमें वर्तमान के यह क्षण व्यर्थ नष्ट नहीं करने चाहिए।”
“क्या करना चाहिए इस क्षण में?”
गुल दौड़ गई। समुद्र की तरंगों में अपने चरणों को भिगोने लगी। केशव को संकेत से बुलाया। केशव समुद्र की तरफ गया। केशव के समीप आते ही गुल ने हथेलियों में समुद्र का पानी भरा, केशव पर उछाल दिया। केशव भीग गया। समुद्र के उष्ण जल ने केशव के तन की चेतना को जगा दिया। उसने भी एक अंजलि भरी, गुल की तरफ उछाल दी। गुल ने उसका स्वागत किया। समय के तरंगों के साथ दोनों समुद्र के तरंगों के जल में भीगते रहे।

41

“यह कोलाहल कब शांत होगा, गुल?”
“किस कोलाहल की बात कर रहे हो तुम?”
“इतने दिवस व्यतीत हो गए किन्तु मन अभी भी उन प्रश्नों पर चिंता कर रहा है। यह चिंता कोलाहल का रूप ले चुकी है।”
“तुम भविष्य की अनिश्चितता से चिंतित हो अथवा असुरक्षा से?”
“चिंता के अनेक कारणों में यह कारण भी हो सकते हैं।”
“मुझे अन्य कारण भी विदित है। मैं बताऊँ क्या?”
“गुल।”
“तुम कुछ खोने के भय से चिंतित हो केशव।”
“ यह कुछ शब्द से क्या तात्पर्य है तुम्हारा?”
“कुछ का अर्थ है यह स्थान, यह समय, कोई व्यक्ति। कुछ भी हो सकता है।”

"चलो छोड़ो इसे। हम कुछ अन्य बात करते हैं।"
"ऐसे तो तुम अपने मन को भटका रहे हो, केशव।"
"कैसा भटकाव?"
"एक प्रश्न से हटकर अन्य बिन्दु पर मन को लगाना कोई उपाय नहीं है। इससे मन का कोलाहल शांत कहाँ होता है? कोलाहल का रूप अवश्य बदल जाता है किन्तु उसकी तीव्रता घट नहीं जाती है।"
"गुल ...।" केशव अटक गया।
"कहो केशव जो कहना चाहते हो। शब्दों को अधरों पर लाने के पश्चात रोकना सभ्यता नहीं है।"
केशव गुल को क्षणभर निहारता रहा। अधरों पर स्मित लाकर बोला, "गुल, तुम कितनी बदल गई हो।"
गुल कुछ नहीं बोली किन्तु उसके मुख पर रहे भाव को केशव ने परखा।
"तुम कितनी सुंदर किन्तु गहन बातें कर रही हो। कुछ समय पूर्व जो एक चंचल तथा अबोध बालिका थी वह आज गंभीर हो गई है, ज्ञान की बातें कर रही है। जैसे कोई विदुषी हो।"
केशव की बात सुनकर गुल के मुख पर एक दिव्य तेज छा गया।
"केशव, यदि तुम्हें मेरा चंचल – अबोध रूप पसंद हो तो मैं पुन: चंचल हो जाती हूँ। सारा ज्ञान, सारा बोध त्याग देती हूँ। अबोध बन जाती हूँ।"
गुल ने तट पर से रेत उठाई, समुद्र की तरफ उछाल दी। दौड़कर समुद्र के भीतर चली गई। भीगकर पुन: तट पर आ गई। तट की भीगी रेत पर दौड़ने लगी। तट पर उसके पदचिन्हों की एक रेखा रच गई। केशव उस रेखा को देखता रहा।
गुल अभी भी चंचलता पहने हंस रही थी। "केशव, कहो कैसा रहा मेरा यह चंचल स्वरूप?"
केशव ने कोई उत्तर नहीं दिया। गुल केशव के सम्मुख आ गई, कोई नृत्य करने लगी। केशव ने तब भी कोई ध्यान नहीं दिया।
"क्या देख रहे हो? कहाँ देख रहे हो, केशव?"
"तुम्हारे पदचिन्हों से रची इस रेखा को देख रहा हूँ। तुम भी देखो इसे।"
गुल ने उस रेखा को देखा। कुछ तरंगें आई, उस रेखा के कुछ अंश को मिटाकर चली गई। रेखा की समग्रता भंग हो गई। वह टुकड़ों में बंट गई। रेखा के बिन्दुओं के मध्य कोई संपर्क सेतु नहीं रहा।
"गुल, इस खंडित रेखा को देखो। कुछ क्षण पूर्व जो अखंड थी, अब टुकड़ों में बिखर गई है। एक तरंग आती है, क्षणभर में सब कुछ खंडित कर जाती है। यह घटना के संकेतों को समझो, गुल।"
"कौन सा संकेत है इसमें?"
"क्या तुम इन संकेतों को पढ़ नहीं रही हो?"
"नहीं तो?"
"क्यों?"
"क्यूँ की मैं समग्र ज्ञान इस सागर को भेंट चड़ाकर अबोध बन गई हूँ।" गुल खुलकर हंसने लगी।
"कहो केशव, कैसा है ईस बालिका का अबोध स्वरूप?"
"मुझे यह स्वरूप अच्छा लगा। वास्तव में मुझे इस बालिका के सभी स्वरूप सुंदर लगते हैं।"
"सभी से क्या तात्पर्य है? कौन कौन से स्वरूप, केशव?"
"चंचल, अबोध, मुग्धा, ज्ञानी, विस्मित, गंभीर, सरल, सहज, स्थिर। यह सभी स्वरूप।"
गुल हंसने लगी, केशव भी।
"किन्तु मुझे तुम्हारा यह स्वरूप पसंद नहीं आया, केशव।"
"क्यूँ नहीं आया?"
"केशव, तुम्हारा यह हास्य ना सरल है ना ही सहज।"
केशव हंसने का प्रयास करने लगा।
"रहने दो केशव। यह हास्य भी प्रामाणिक नहीं है।"
केशव गंभीर हो गया। शीला पर बैठ गया।
"मन तथा तन दोनों यदि एक ही रूप में हो तो सहज लगता है, सुंदर भी। यदि दोनों में सामंजस्य नहीं है तो वह कुरूप लगता है।" केशव ने गुल को प्रति प्रश्न के साथ देखा।
"केशव, चंचल मन तथा स्थिर तन। यह जोड़ ही कुरूपता है।" केशव के मुख पर जो प्रश्न था वह अब विस्तृत एवं विशाल हो गया।
"मुझे विदित है कि केशव कुरूप नहीं है। केशव का भीतर सौन्दर्य से भरा है। इस सौन्दर्य को कुरूप न होने दो, केशव।"
"तो मैं क्या करूँ?"
"चंचल मन को स्थिर कर दो। भविष्य के गर्भ में जो है वह अज्ञात है। उसे जानने का प्रयास ना करो। उसकी चिंता ना करो। उचित समय पर भविष्य के गर्भ से जो जन्म लेगा उसे हम स्वीकार करेंगे। किन्तु इस क्षण जो भी है वह ज्ञात है, परिचित है। इसे स्वीकार करो, इसका अनुभव करो।"
"कितनी बड़ी ज्ञानी हो गई हो तुम, गुल।"
"धन्यवाद। किन्तु मेरी प्रशंसा से काम होने वाला नहीं है।"

"तो क्या आदेश है मेरे लिए?"
"चलो उठो। तन की स्थिरता मन को समर्पित कर दो। मन की चंचलता तन को समर्पित कर दो।"
"ऐसी भेद भरी भाषा का प्रयोग मेरी समज से परे है। कुछ सरल शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकती तुम, विदुषी गुल?"
केशव हंस पड़ा। वह हास्य सहज था। गुल ने प्रतिहास्य किया।

42

"केशव, चलो इस समुद्र तट पर दूर तक जाते हैं। मार्ग में अनेक कंदरायेँ आएगी। प्रत्येक कन्दरा के भीतर जाएँगे।"
केशव उठा। गुल चलने लगी। केशव ने पुकारा, "गुल, रुको तो।"
गुल रुक गई।
"तुम्हें विदित है कि यह तट कितना लंबा है? हमें कहाँ तक जाना है? कौन से बिन्दु से लौट आना है? इस विषय में कोई विचार भी किया है अथवा बस ... ।"
गुल रुक गई। कुछ क्षण विचार मग्न मौन के पश्चात बोली,
"मुझे संज्ञान नहीं कि यह समुद्र तट कितना लंबा है। यह भी विचार नहीं किया कि कहाँ तक जाना है। किस बिन्दु से लौट आना है। अरे हाँ, लौट आने का विचार ही नहीं किया है मैंने।" गुल क्षण भर रुकी। अनंत तक विस्तरित समुद्र के ऊपर दृष्टि डाली।
"केशव, ऐसा करते हैं कि हम तट पर चलते जाएँ, चलते ही रहें। जब कोई कन्दरा आए तो उसके भीतर विश्राम कर लें। पुन: चलते जाएँ। पुन: कन्दरा, विश्राम, तट, यात्रा। बस इसी प्रकार चलते जाएँ। कहो क्या विचार है आपका?" गुल की आँखों में एक विशिष्ट कान्ति प्रकट हो गई।
"गुल, यदि तुम्हारी बात मैं एक क्षण के लिए भी मान लूँ तो भी कब तक चलते रहेंगे हम?"
"अनंत काल तक, केशव अनंत काल तक। बस चलते रहें, चलते ही रहें। तब तक चलते रहें जब तक जीवन है। जब तक मृत्यु नहीं आती बस चलते रहें। क्या तुम मेरे साथ जीवन पर्यंत चलते रहोगे? बोलो केशव?"
गुल गंभीर हो गई। केशव हंस पड़ा।
"केशव, इस प्रकार मेरा उपहास ना करो। मेरे प्रश्नों के उत्तर दो।"
"गुल, तुम भी ना।" केशव गंभीर हो गया, "मैं तुम्हारा उपहास नहीं कर रहा। तुम्हारे बालपन पर हंस रहा था। कितना निर्दोष है बालपन तुम्हारा?"
"मैं कुछ नहीं जानती। इतना कहो कि तुम मेरे साथ चल रहे हो अथवा नहीं? मैं तो चली।" गुल चल पड़ी।
"मैं भी चल रहा हूँ तुम्हारे साथ। किन्तु यह स्मरण रहे कि हमें लौटना भी होगा।"
"चलने वाले लौटने की चिंता नहीं करते।" केशव गुल के साथ चल पड़ा। दोनों मौन थे, दोनों के चरण पगरव कर रहे थे। समुद्र की लहरें बोल रही थी।बहता समीर बोल रहा था। वह सब क्या कर रहे थे, दोनों में से किसी का ध्यान उस पर नहीं था। दोनों चल रहे थे, बस।
समुद्र तट की भीगी रेत पर चलते हुए जो अनभव हो रहा था उससे दोनों हर्षित थे।
"केशव, हम समुद्र की लहरों से दूर क्यूँ चल रहे हैं?"
"हमें भीगने से बचना है इसलिए।"
"भीगने से बचना है तो तट पर क्यूँ चलें? कहीं दूर जाकर बैठ जाते हैं अथवा नगर के बंद घरों में लौट जाते हैं।"
गुल रुक गई, केशव के प्रतिभाव की प्रतीक्षा करने लगी। केशव, कुछ क्षण के लिए वैचारिक मुद्रा लिए खड़ा रहा। पश्चात वह समुद्र की तरफ बढ़ गया। तरंगों के मध्य चलने लगा। गुल ने उसका अनुसरण किया। समुद्र की ध्वनि के साथ गुल-केशव के पद ध्वनि एकरूप हो गई।
"केशव, वहाँ देखो। वहाँ कन्दरा है।"
केशव ने उसे देखा। "चलो भीतर जाते हैं।"
दोनों भीतर प्रवेश करने लगे।
"कन्दरा में समुद्र का पानी है।"
"केशव, मुझे तो लगता है कि कन्दरा के भीतर भी कोई समुद्र है।"
"समुद्र के भीतर कन्दरा है अथवा कन्दरा के भीतर समुद्र है? सत्य क्या है?"
"मुझे तो दोनों सत्य लग रहे हैं।" गुल हंस पड़ी।
"इस कन्दरा के भीतर जाने के लिए हमें इस पानी को पार करना होगा।"
"कितना गहरा होगा यह पानी?"
"वह तो पानी में उतरकर ही ज्ञात होगा।"

दोनों पानी में उतर गए। कन्दरा तीन दिशाओं से तथा ऊपर से बंद थी। केवल एक ही द्वार था प्रवेश के लिए।
“हमारे चलते चरण से उठती ध्वनि कुछ विशेष लगती है।” गुल नई ध्वनि उत्पन्न करने लगी।
“एक क्षण रुको, गुल। कोई ध्वनि उत्पन्न ना करना। शांत हो जाओ।” दोनों रुक गए, स्थिर हो गए। श्वासों की ध्वनि को नियंत्रित कर लिया। पूर्णत: मौन व्याप्त हो गया। समुद्र की मंद लहरें कन्दरा तक आते आते समाप्त हो जाती थी। उसकी मंद ध्वनि सुनाई दे रही थी। पवन मंद गति से कन्दरा के भीतर प्रवेश करता था। इसकी मंद ध्वनि भी सुनाई दे रही थी। उपरांत उसके कोई ध्वनि नहीं थी वहाँ।
“गुल ।” केशव ने ऊंची ध्वनि में कहा। केशव के शब्द कन्दरा के भीतर गए, कन्दरा की भिंत से टकराए, प्रतिघोष बनकर अनेक बार सुनाई दिये।
केशव ने दूसरी, तीसरी... अनेक बार गुल के नाम का घोष किया, कन्दरा ने प्रतिघोष किया।
अपने नाम का घोष- प्रतिघोष सुनकर गुल रोमांचित हो गई। वह प्रसन्न हो गई। उसने ताली बजाई। ताली का घोष भी प्रतिघोष बन गया। वह तालियाँ बजाने लगी। घोष-प्रतिघोष होने लगा। केशव गुल की प्रसन्नता को साक्षी भाव से निहारता रहा।
गुल दौड़कर कन्दरा के भीतर चली गई। पानी में दौड़ने से उत्पन्न ध्वनि तथा उसकी प्रतिध्वनि ने कन्दरा में संगीत का सर्जन कर दिया। अजोड़, अनुपम, अपूर्व संगीत !
भीतर जाकर कुछ अंतर पर गुल रुक गई। “यहाँ आओ, केशव।”
केशव भीतर आ गया।
“केशव, गहन श्वास लो। हाँ... लो... लो... ।”
“हाँ, लिया।”
“लेते रहो। मेरा अनुसरण करो। बिना रुके श्वास लेते रहो।”
गहन श्वासों की ध्वनि कन्दरा में व्याप्त हो गई।
“कुछ विचित्र सुगंध का अनुभव हो रहा है, केशव?”
“हाँ, गुल। विचित्र भी है, आकर्षक भी है।”
“उसका आकर्षण इस दिशा में है, केशव। हम सुगंध का अनुसरण करते हैं। उसके उद्गम तक जाते हैं।”
दोनों सुगंध की तरफ आगे बढ़े। सुगंध को अपने भीतर उतारते हुए, अनुभव करते हुए कन्दरा के भीतर तक आ गए।
“यह किसकी सुगंध है? कैसी सुगंध है?”
“यह सुगंध कन्दरा की है, यहाँ जन्मे - बसे जीवों की है।” केशव ने कुछ जीवों को देखा। केशव ने उस तरफ संकेत किया। गुल ने उन जीवों को देखा।
“अब यहाँ भी आओ। इसे देखो।” केशव गुल के समीप आ गया।
“गहन श्वास लो। इस सुगंध का अनुभव करो।”
“यह तो इस वनस्पति की सुगंध है।” दोनों ने उस सुगंध को भीतर उतारा।
“ओह, यह सुगंध !”
“केशव, उस सुगंध के मोह पाश से मुक्त हो जाओ। यहाँ अभी अनेक सुगंध बाकी है उसका हमें अनुभव करना है।”
दोनों कन्दरा का निरीक्षण करते रहे। एक कोने में कुछ रंगों ने उनका ध्यान आकृष्ट किया। दोनों उसकी तरफ बढ़ गए।
“गुल, यह तो पुष्प लगता है।”
“प्रतीत तो ऐसा ही होता है।” गुल नीचे झुकी, पुष्प को स्पर्श करने जा रही थी कि केशव ने उसे रोका।
“रुक जाओ गुल। उसे स्पर्श ना करना।” वह रुक गई। प्रश्नभाव युक्त मुख से केशव को देखने लगी।
“गुल, यह अज्ञात पुष्प है। आज के पूर्व हमने इसे ना कभी देखा है ना कभी इस विषय में सुना है। इस पुष्प की प्रकृति से हम अनभिज्ञ हैं। हमें सतर्क रहना चाहिए। वह हमें क्षतिग्रस्त कर सकता है।”
“कोई पुष्प कभी किसी को क्षतिग्रस्त कर सकता है क्या? मैंने ऐसा कभी नहीं सुना। तुम इस स्थान पर भी उपहास कर रहे हो केशव।”
“जहां सतर्कता की आवश्यकता होती है वहाँ उपहास के लिए कोई अवकाश नहीं होता है।”
“तुम्हारा कहना उचित है।” वह पुष्प से दूर हो गई।
“चलो। कुछ अन्य सुगंध को पकड़ते हैं।” केशव आगे बढ़ गया। गुल भी।
“केशव, मैंने एक सुगंध को पकड़ा है। तुम भी उसे पकड़ो।”
केशव ने प्रश्नार्थ लिए देखा। नाक से किसी सुगंध को पकड़ने का प्रयास किया। उसने एक सुगंध को पकड़ा, गहन श्वास लेते हुए भीतर तक उतारा। वह कन्दरा के पत्थरों की तरफ बढ़ गया। एक पत्थर के समीप रुका, उसे स्पर्श किया। वह पत्थर भीगा था। उसने उसे सूंघा। इस सुगंध को उस सुगंध, जो उसने अपने भीतर उतारा था, से परखा। दोनों सुगंध एकरूप थी। गुल ने भी वही क्या।
“कन्दरा के पत्थर जो युगों से समुद्र के पानी से भीगते रहें हैं उन पत्थरों की सुगंध है यह।”
“ओह। इस सुगंध पाने के लिए पथ्थरों ने कितना कुछ सहा होगा।”
दोनों ने एकदूसरे को देखा। एक साथ बोल पड़े।
पत्थरो की भी सुगंध होती है।” दोनों हंस पड़े। प्रतिघोष से कन्दरा जागृत हो गई।

"यह कंदरा है कि सुगंध का दरिया?"
"दरिया, कन्दरा, सुगंध। वाह गुल, तुमने इन तीनों का एक सुंदर संबंध जोड़ दिया।"
"इस कन्दरा में समुद्र भी है तथा सुगंध का सागर भी है।"
"यदि इन सभी सुगंधों को एक साथ भीतर उतारोगे तो जो संमिश्रण होता है वह अद्भुत है, गुल।"
"यह सभी सुगंध!" गुल गहन श्वास लेने लगी।
"यह संमिश्रण स्वयं में एक नयी सुगंध को जन्म दे रही है। क्या है यह? कौन सी सुगंध है यह? इसे हम क्या नाम दें?"
"सोच विचार कर बताता हूँ।"
"तुम सोचो। तुम विचारो। मैं तो सुगंध ले रही हूँ।"
"यह अच्छी बात है कि तुम सुगंध लेती रहो और मैं उसे छोडकर सोचता ही रहूँ।"
"अरे, तुम भी सुगंध का आनंद लेते रहो।"
"धन्यवाद, गुल। यह सुगंध समग्र कन्दरा की है।"
"एकसमस्तता, एक पूर्णता है इसमें। "
"इस पूर्णता की अनुभूति के लिए मौन हो जाते हैं।"
दोनों मौन हो गए। सब कुछ स्थिर हो गया। चलित थी तो केवल सुगंध तथा लहरों की ध्वनि। इसी अचलता में अनेक क्षण व्यतीत हो गए।
"इस संसार के लोगों में से किन लोगों ने इस सुगंध काआनंद प्राप्त किया होगा, केशव?"
"केवल दो व्यक्तियों ने।"
"कौन है वह दो व्यक्ति? तुम्हें कैसे ज्ञात है?"
"तुम भी उन दोनोंसे परिचित हो, गुल।"
"मैं भी? कहो ना कौन है वह दो? मेरी उत्सुकता अधीर हो रही है।"
"एक तो है एक लड़की जिसे हम गुल के नाम से जानते हैं। तथा एक है लड़का... ।"
"जिसे हम केशव के नाम से जानते हैं।" गुल ने अपूर्ण वाक्य पूर्ण कर दिया। दोनों इस बात पर हंस पड़े। कन्दरा ने अपने स्वभाव के अनुरूप उस हास्य का प्रतिघोष कर दिया।
"अर्थात यह कन्दरा निर्जन ही रही है। हमने उसकी निर्जनता को भंग कर दिया। हैं ना केशव?"
"एक यही कन्दरा नहीं गुल, इस समुद्र की अधिकांश कंदरायें निर्जन ही होती है। हम जैसे व्यक्ति यदा कदा इन कंदराओं में से एकाद कन्दरा तक यात्रा करने मे सफल हो जाते हैं। अन्यथा मनुष्य यहाँ तक आने का साहस ही नहीं कर पाता है।"
"अर्थात मनुष्यों ने कन्दराओं की निर्जनता को अक्षुण रखा है। यह तो अच्छी बात है।"
"निर्जनता की यही सुगंध ही हमें यहाँ आकृष्ट करती है।"
"तो यह सुगंध कन्दरा की निर्जनताकी है, अक्षुण एकांत कीहै!"
"अथवा उस निर्ज नता, उस एकांत के भंग की भी हो सकती है।"
"हो सकता है। कुछ भी हो सकता है। सब कुछ संभव है। किन्तु यह निर्णय कौन करेगा कि यह सुगंध – जो स्वयं के भीतर एक समग्रता को धारण किए हमें आकृष्ट करती है - वह सुगंध है किसकी?"
"यह तो विचार का विषय है। किन्तु कदाचित यह निर्णय मनुष्य ही करता है। युगों से करता आ रहा है।"
"किसने दिया यह अधिकार मनुष्यों को?"
"गुल, पिछले अनेक दिवसों से मेरे मन में जो संघर्ष चल रहा है उसे तुमने एक दिशा दी है।"
"वह कैसे, केशव?"
"तुमने अभी अभी जो कहा कि मनुष्य को यह अधिकार किसने दिया कि वह किसी सुगंध के विषय में निर्णय करे तथा उस निर्णय को सारे जगत पर थोप दें?"
"अर्थात?"
"एक ऐसा ही निर्णय इस द्वारका नगरी में मनुष्यों ने लिया है।"
"कैसा निर्णय?"
"गुल तुम कहो कि क्या हमें अधिकार है कि यह निर्णय करें कि –
कौन सी कोयल अधिक सुंदर गाती है? कौन सा नृत्य, कौन सा संगीत, कौन सी अभिव्यक्ति उत्तम है अथवा निम्न है? सूर्य की कौन सी किरणें सुंदर है? कौन सा सूर्योदय अनुपम है? कौन सा सूर्यास्त अनूठा है? पवन की कौन सी लहर मनोहर है? समुद्र की कौन सी तरंग आकर्षक है? मेघों से बरस रही वर्षा की कौन सी जल कणिका मनभावन है?
क्या ऐसे निर्णय करने की हमारी क्षमता है? कहो गुल, कहो।"
केशव रुका, गुल हंस पड़ी।
"इसमें हंसने की कौन सी बात है गुल?"
"अरे केशव, तुम जरा शांत हो, स्वस्थ हो तथा बोलते बोलते रुको तब तो मैं कुछ कहूँ ना? तुम्हारे प्रत्येक शब्द के साथ तुम्हारी ऊर्जा, तुम्हारी भावना, तुम्हारी अभिव्यक्ति को देखकर मुझे हंसी आ गई। तुम इतने भावुक क्यूँ हो गए हो केशव? अवश्य कोई बात जो तुम्हारे भीतर संघर्ष उत्पन्न कर रही है उस बात से तुम यह सारी बातें जोड़ रहे हो।"

"हाँ।"
"तो सीधे सीधे कह दो कि क्या बात है। इस प्रकार अन्य बातों का आश्रय लेना पड़े …।"
केशव शांत हो गया। कुछ क्षण पश्चात बोला,
"गुरुकुल में समाचार आया है कि समग्र भारत वर्ष के छात्रों के लिए इस द्वारका नगरी में एक प्रतियोगिता का आयोजन होने जा रहा है।"
"केवल छात्रों के लिए ही? छात्राओं के लिए नहीं?"
"हाँ। केवल छात्रों के लिए ही। किन्तु तुम यह क्यूँ पूछ रही हो?"
"मैं उस प्रतियोगिता में सहभागी बनना चाहती हूँ।"
"प्रथम यह तो संज्ञान ले लो कि प्रतियोगिता किस बात की है।"
"कैसी प्रतियोगिता है? तथा उस प्रतियोगिता से तुम्हारे इन आक्रोश भरे शब्दों का क्या संबंध है?"
"संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों से श्लोक तथा मंत्रों को गाने की प्रतियोगिता है। देश के प्रत्येक गुरुकुल से छात्र आएंगे तथा प्रतियोगिता करेंगे। अत: तुम्हारे लिए इस प्रतियोगिता में कोई स्थान नहीं है।"
"मेरी छोड़ो। तुम इस प्रतियोगिता में भाग ले रहे हो ना? तुम्हारे उपरांत अन्य कोई विजेता नहीं हो सकता।"
"सभी आचार्य तथा कुलपति की यही धारणा है।"
"सत्य है, केशव। अभिनंदन।"
"मैं इस अभिनंदन का अस्वीकार करता हूँ। मैं निर्णय कर चुका हूँ कि मैं इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले रहा हूँ।"
"तुम ऐसा नहीं कर सकते, केशव। यह तुम्हारे गुरुकुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। तुम इस प्रकार पलायन कर अपने दायित्व से भाग नहीं सकते।"
"मैं तुम्हारे तर्क से सम्मत हूँ। किन्तु तुम यह नहीं पुछोगी कि मैंने ऐसा निर्णय क्यूँ लिया?"
"तुम्हारे आक्रोश से इसका सीधा संबंध होगा। कहो क्या कारण है।"
केशव ने एक प्रलंब श्वास लिया।
"छात्रों का कर्म है ज्ञान प्राप्त करना। अतिरिक्त उसके हमारा कोई अन्य कर्म भी नहीं है ना धर्म है। यह प्रतियोगिता ज्ञान की कसौटी की नहीं है। यह तो है गान की, अभिव्यक्ति की, प्रस्तुति की, प्रदर्शन की, अभिनय की। क्या हम इन महान ग्रन्थों से, इन ग्रन्थों के अभिनय सीखने गुरुकुल में प्रवेश करते हैं? शिक्षा समाप्त होने पर ऐसा रंगमंचीय प्रदर्शन ही हमारा अंतिम लक्ष्य है?"
केशव रुक गया, मौन हो गया। गुल भी केशव के विचारों को समझने का प्रयास करते करते मौन हो गई। इस मौन के मध्य कन्दरा की ध्वनि तथा सुगंध व्यक्त होती रही।
"केशव, तुम प्रतियोगिता में अवश्य भाग लेना।" गुल इतना ही बोल सकी।
"ऐसा ही होगा क्यों कि यह मेरी विवशता है।"
"मुझे प्रसन्नता है तुम्हारे इस निर्णय से।"
"गुल, अब हमें लौट जाना चाहिए।" केशव कन्दरा से बाहर आने लगा, गुल भी।

43

"केशव तुम स्वयं को सिध्ध कर देना। मेरी शुभकामना।" मंत्रगान प्रतियोगिता से पूर्व गुल ने केशव का उत्साह वर्धन किया।
केशव केवल स्मित देकर चला गया। स्पर्धकों की दीर्घा में अपने आसन पर जाकर बैठ गया। समग्र सभा मंडप का निरीक्षण करने लगा। साथी प्रतियोगियों पर द्रष्टि डाली।
'इतने सारे स्पर्धक? दो सौ से अधिक। ढाई दिवस तक चलेगा यह उपक्रम। तीसरे दिवस मध्याह्न के पश्चात विजेताओं के नाम घोषित किए जाएंगे। पुरस्कार दिये जाएंगे। किसी एक को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया जाएगा। वह किसी मिथ्याभिमान में स्वयं को सबसे उच्च मानने लगेगा। उसकी ख्याति देस देसांतर में प्रसर जाएगी।
इस प्रसंग के साक्षी बनने इतने सारे पत्रकार भी आए हैं। वह बड़े बड़े लेख लिखेंगे। कुछ दीवस तक इनकी चर्चा होती रहेगी। पश्चात उसके सब कुछ भुला दिया जाएगा। कोई ज्ञान की बात नहीं करेगा। देस के इन महान ग्रन्थों पर कोई नहीं लिखेगा, कोई नहीं बोलेगा। संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार पर कोई निर्णयात्मक कार्य नहीं होगा। यह सारा श्रम-परिश्रम व्यर्थ है। इस उपक्रम से किसी का लाभ नहीं होगा। ना देस का, ना ग्रन्थों का, ना गुरुकुल का, ना ज्ञान का, ना संस्कृत भाषा का, ना किसी छात्र का तथा ना ही किसी आचार्य का। व्यर्थ है, सब कुछ व्यर्थ है।' केशव मन ही मन बोलता रहा।
सहसा प्रकट रूप से बोल पड़ा, "सब कुछ अर्थ हिन है, दंभ है, प्रपंच है। इसे रोक दो, रोक दो।"
केशव की ध्वनि इतनी प्रचंड थी कि वह समग्र सभा मंडप पर छा गई। समग्र सभागण केशव के प्रति आकृष्ट हो गया। सर्व अचंभित थे। साथी प्रतियोगियों में से किसी ने त्वरा से स्थिति का संज्ञान लिया तथा स्थिति को नियंत्रण करने हेतु सभी को शांत करने के लिए हाथ जोड़ विनती करने लगा। सभागण धीरे धीरे शांत होने लगा।
वह केशव के समीप गया।

“बंधु, सब कुछ ठीक तो है ना? जलपान करोगे?” उसने केशव को जल का पात्र धर दिया। केशव उसे देखता रहा। धीरे धीरे स्वस्थ होता गया। उस साथी के प्रति स्मित करते हुए कहा।
“धन्यवाद बंधु। क्षम्यताम।”
केशव अपने स्थान पर बैठ गया, वह साथी भी।

***

प्रतियोगिता के दो दिवस सम्पन्न हो गए। सभी प्रतियोगियों ने अपने कौशल का प्रदर्शन किया। अनेक छात्रों ने सभा का तथा निर्णायक गण का मन मोह लिया। प्रत्येक सुंदर अभिव्यक्ति पर सभा ने छात्रों का अभिनन्दन किया, साधुवाद किया, उत्साह वर्धन किया, प्रसन्नता व्यक्त की। कौन सा प्रतिभागी श्रेष्ठ होगा उस विषय पर सभा में चर्चा होने लगी। प्रत्येक ने अपने अपने दृष्टिकोण से किसी न किसी का विजेता के रूप में चयन कर लिया।
तीसरे दिवस की प्रतियोगिता का प्रारम्भ हो गया। आज द्वारका के गुरुकुल के छात्रों के उपरांत बनारस के छात्रों की प्रस्तुति होने वाली थी। सर्व प्रथम बनारस के छात्रों ने प्रस्तुति की। अद्भुत तथा अनूठी प्रस्तुति देखकर सभी पुरानी प्रस्तुतियों को सभागण भूल गया। बनारस ही श्रेष्ठ है ऐसा मत सभी का बनने लगा।
अंतिम प्रस्तुति का समय आ गया जो कि द्वारका गुरुकुल के छात्रों की थी। एक के पश्चात एक छात्र मंच पर आने लगे, प्रस्तुति करने लगे तथा प्रेक्षकों से प्रशंसा प्राप्त करने लगे। जैसे जैसे द्वारका गुरुकुल की प्रस्तुति होती रही, प्रेक्षकों के मत बदलने लगे। बनारस गुरुकुल पर द्वारका गुरुकुल प्रभावी होने लगा। दोनों ही प्रस्तुतियां इतनी अनूठी थी कि दोनों में से किसी एक को श्रेष्ठ मानना कठिन हो रहा था।
केवल अंतिम प्रस्तुति बाकी थी। केशव का नाम उद्घोषित हुआ। उसे मंच पर जाना था। वह द्वारका गुरुकुल का सर्वोत्तम छात्र था। सभी उसे सुनने के लिए उत्सुक थे, उत्साहित थे, अधीर थे। स्भागण शांत हो गया, प्रतीक्षा करने लगा। सभी केशव को खोजने लगे।
केशव अपने आसन से उठा, मंच पर गया, सभी को नमन किया।
“महाभारत का यूध्ध केवल अठारह दिवस चला था। यूध्ध का अंत यूध्ध भूमि में नहीं हुआ था। इसी प्रकार मेरे मन में भी पिछले अठारह दिवस से एक यूध्ध चल रहा है। महाभारत के यूध्ध से अधिक तुमुल है यह यूध्ध। उस यूध्ध के अंत का निर्णय निश्चित था। किन्तु मेरे इस यूध्ध का अंत अनिश्चित है।” केशव कह रहा था, सभी उसे पूर्ण निष्ठा से सुन रहे थे। सभी के लिए यह प्रस्तुति अनपेक्षित थी। अभी तक सभी ने बिना किसी अन्य शब्द कहे सीधे ही अपनी प्रस्तुति प्रारम्भ कर दी थी। केशव किसी विशिष्ट पूर्वभुमिका बांध रहा होगा ऐसी धारणा सभी ने बांध ली। सभी की रुचि बढ़ती गई।
“किन्तु समय के किसी एक बिन्दु पर प्रत्येक यूध्ध का अंत करना पड़ता है। कोई भी यूध्ध अनिश्चित काल तक नहीं चल सकता। आज इस मंच पर, समय के इस बिन्दु पर, मेरे अन्तर्मन के यूध्ध का अंत करना होगा।”
सभी के मन में कौतुक होने लगा। उससे थोड़ा कोलाहल हुआ। निर्णायकों के मध्य संकेतो से कुछ बात हुई। एक निर्णायक ने केशव को रोका, “केशव तुम्हें ज्ञात हो होगा कि प्रतियोगिता के नियम अनुसार तुम्हें अपनी प्रस्तुति केवल चार मिनिट में ही पूर्ण करनी है। तुम डेढ़ मिनिट व्यय कर चुके हो। तुमसे आग्रह किया जाता है कि इस बचे समय में तुम अपनी प्रस्तुति पूर्ण करो।”
“आप सभी का सम्मान करते हुए कहता हूँ कि मुझे मेरे लिए उपलब्ध समय का संज्ञान है। मैं आप सभी का क्षमाप्रार्थी हूँ क्यों कि मैं ईस प्रतियोगिता से अपना नामांकन निरस्त करता हूँ। धन्यवाद।” केशव मंच छोडकर जाने लगा।
“केशव, रुको। एक क्षण के लिए रुको।” मुख्य निर्णायक ने कहा। “इस प्रकार मंच तक आकर स्वयं को प्रतियोगिता से पृथक करना अनुचित है, अपमान भी है। किन्तु यह प्रतीत होता है कि निश्चय ही तुम किसी बात पर चिंतित हो। क्या तुम तुम्हारी उस चिंता को, उस व्यथा को इस मंच से व्यक्त कर सकते हो?”
केशव मुडा। मंच के मध्य आ गया,
“ मैं आपका धन्यवाद करता हूँ। किन्तु मेरी चिंता व्यक्त करने का यह उचित मंच है? यह मंच का उद्देश्य भिन्न है, मेरी चिंता भिन्न है। अत: इस मंच का उपयोग मैं नहीं करूँगा। किन्तु मेरी चिंता से मैं आप सभी को इस प्रतियोगिता के उपरांत अवश्य परिचय कराऊँगा।इस समय मुझे क्षमा भी करें तथा अनुमति भी दें।”
केशव मंच छोड़ गया। सभागार विचलित हो गया, अनियंत्रित होने लगा।

44

तभी मंच पर गुल आ गई। उसे देखकर मंच अधिक अनियंत्रित हो गया।
गुल बोली, “नमो नम: सर्वेभ्यो।” गुल के शब्दों से सभा शांत होने लगी।
“यदि आप आज्ञा दें तो केशव के स्थान पर मैं श्लोकगान करूँ?” गुल निर्णायकों के प्रतिभाव की प्रतीक्षा करने लगी। उनके लिए यह स्थिति अपेक्षित नहीं थी। वह विचलित हो गए, सभा भी। सभा से अनेक ध्वनि आने लगे। कोई पक्ष में तो कोई विपक्ष में अपना अपना मत प्रकट करने लगे। सभा पुन: अनियंत्रित होने लगी। निर्णायक गण आपसी चर्चा के उपरांत भी कोई निर्णय नहीं कर सका। सभा अधिक अनियंत्रित हो गई।
सहसा एक निर्णायक खड़े हुए तथा सभी को शांत रहने का संकेत करने लगे। सभा ने उस पर ध्यान नहीं दिया। वह गुल के समीप आ गए।
वह बोले, “ सज्जनों एवं सन्नारियों, कृपया शांत हो जाइए।” शब्दों के प्रभाव से समुदाय धीरे धीरे शांत होने लगा। वह आगे बोले, “हमें एक निर्णय करना होगा। उसमें आप सभी का सहयोग आवश्यक है। क्या आप हमारा साथ देंगे?”
सभा पूर्णत: शांत हो गई।
“बेटी, क्या नाम है तुम्हारा?”
“मेरा नाम गुल है।”
“तुम कौन से गुरुकुल की छात्रा हो?”
“मैं किसी भी गुरुकुल की छात्रा नहीं हूँ।”
“क्या तुम ब्राह्मण हो?”
“नहीं।”
“क्या तुम हिन्दू हो?”
“नहीं।”
“तुम छात्रा नहीं हो, तुम ब्राह्मण नहीं हो, तुम हिन्दू नहीं हो, तुम पुरुष नहीं हो। तो तुम श्लोक गान कैसे कर सकती हो?”
“क्यों नहीं कर सकती?”
“अर्थात तुम्हें श्लोक गान आता है। कहाँ से सीखा तुमने यह?”
“यहाँ के गुरुकुल से।”
उसने द्वारका गुरुकुल के आचार्य की तरफ देखा। उनकी उस द्रष्टि में जो प्रश्न था, स्वत: स्पष्ट था। आचार्य ने अपने मुखभावों से उत्तर दिया जो भी स्वत: स्पष्ट था।
“ठीक है, यह बताओ कि तुम्हारे गुरु कौन है? क्या नाम है उनका?”
उस प्रश्न ने गुल को चिंतित कर दिया। कुछ विचार के पश्चात उसने गुरुकुल के आचार्य की तरफ देखा। आचार्य ने अपना मुख घूमा लिया, द्रष्टि नीची कर ली। उन मुद्राओं का अर्थ गुल ने समझ लिया। वह भग्न हो गई।
“बेटी, अपने गुरुजी का नाम कहो।” प्रश्न की पुनरावृति की गई।
गुल कुछ क्षण विचारती रही। उसने इधर-उधर द्रष्टि घुमाई, केशव कहीं नहीं था। गुल ने दूर सागर की तरफ देखा। उसे व्योम में एक पताका दिखी।
‘यह तो भड़केश्वर महादेव जी की पताका है। वह मेरे गुरु बनेंगे। वह सभी के गुरु हैं तो मेरे भी गुरु ही है।’ उसके मन में एक चेतना का संचार हुआ।
वह प्रसन्न होते हुए बोली, “मेरे गुरु वहाँ है। वह मेरे गुरुजी की पताका है।” गुल ने पताका की तरफ अंगुली निर्देश किया।
“वहाँ? वह तो भगवान शिव के मंदिर की पताका है। क्या तुम्हारे गुरु उस मंदिर में रहते हैं?”
“हाँ।”
“क्या नाम है उनका?”
“शिवशंकर।”
“अर्थात?”
“आज से, इसी क्षण से मैं स्वयं भगवान शिव को मेरे गुरु बनाती हूँ।”
“देवों के देव महादेव आपके गुरु हैं?”
“जी। वही मेरे गुरु है।” गुल ने उस पताका को नमन किया।
“तुम परिहास कर रही हो, गुल।”
“नहीं। मैं सत्य कह रही हूँ।”
“भगवान शिव तुम्हारे गुरु कैसे हो सकते हैं?”
“क्यों नहीं हो सकते?”

"वह तो पत्थर का शिवलिंग मात्र है। वह कैसे किसी को विद्या एवं ज्ञान प्रदान कर सकते हैं?"
"इसी पत्थर के शिव लिंग की आप पुजा, अर्चना तथा आराधना करते हो। क्यों?"
"वह हमारे देव हैं।"
"अभी तो अपने इसे पत्थर कहा। अब देव कह रहे हो। कहो देव है या पत्थर?"
"देव ही है।"
"पत्थर देव क्यों है?"
"क्यों की वह जगत चेतना का स्रोत है।"
"इसी कारण वह मेरे गुरु भी है।"
"तुम सुंदर तथा अकाट्य तर्क रखती हो। कहाँ से सीखा यह गुण?"
"मेरे गुरु महादेव से।"
गुल के ऊतर से वह हंस पड़े। सभा में भी हास्य व्याप्त हो गया। कुछ क्षण पूर्व सभा में जो गांभीर्य था वह लुप्त हो गया। निर्णायक दुविधा में पड गए, 'अब क्या करें?'
तभी किसी ने कहा,, "इस बिटिया को श्लोक गान की अनुमति दी जाए।" पूरी सभा ने उसका समर्थन किया।
निर्णायक निर्विकल्प हो गए, " ठीक है, गुल। तुम अपना गान कर सकती हो।" वह अपने स्थान पर बैठ गए।
गुल ने ह्रदय की गहनता से 'ओम्' का उच्चार किया। 'ओम्' के नाद से सभा शांत हो गई, स्थिर हो गई। गुल को सुनने के लिए उत्सुकता व्याप्त हो गई। गुल गाने लगी –
मनोबुध्यहंकार चित्तानि नाहम न च श्रोत्रजिव्हे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायु: चिदानंदरुप: शिवोहम शिवोहम।। 1 ।।
गुल के स्वर में दिव्यता थी, एक संमोहन था जिसमें पूरा सभागृह प्रवाहित होने लगा।
गुल ने दूसरा श्लोक पढ़ा।
न च प्राणसंगयौ न वै पंचवायु: न वा सप्तधातु: न वा पंचकोश:।
न वाकपाणिपादम न चोपस्थापायु चिदानंदरुप: शिवोहम शिवोहम।। 2 ।।
न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्यभाव:।
न धर्मो न चार्थों न कामो न मोक्ष: चिदानंदरुप: शिवोहम शिवोहम।। 3 ।।
न पुण्यम न पापं न सौख्यम न दु:खम न मंत्रो न तीर्थो न वेदा न यज्ञ ।
अहम भोजन्म नैव भोजयम न भोक्ता चिदानंदरुप: शिवोहम शिवोहम।। 4 ।।
न मे मृत्युशंका न मे जातीभेद: पिता नैव मटा नैव न जन्म: ।
न बंधुर्न मित्रम गुरुनैव शिष्य: चिदानंदरुप: शिवोहम शिवोहम।। 5 ।।
अहम निर्विकल्पो निराकार रूपो विभूत्वाच सर्वत्र सरवेंद्रियानाम ।
चासंगत नैव मुङ्क्तिर्न मेय: चिदानंदरुप: शिवोहम शिवोहम।। 6 ।।
गुल ने तीसरा, चौथा, पांचवा तथा अंतिम श्लोक पढ़ा। गान सम्पन्न किया। वह रुकी।
सभागार स्थिर था। गान सम्पन्न होने के उपरांत भी कुछ क्षण तक स्थिर ही रहा। गुल के गान के संमोहन से निकलने में सभी को समय लगा। गुल वहाँ से जाने लगी। तभी निर्णायकों का संमोहन टूटा। बोले,
"एक निमिष के लिए रुको, गुल।" वह रुक गई।
"क्या तुम्हें ज्ञात है कि अभी अभी जिन श्लोकों का तुमने गान किया वह क्या है?"
"जी, उसे निर्वाण षट्कम कहते हैं। आदि शंकराचार्य की यह रचना है।"
"उत्तमम। गुल, तुम इतना ज्ञान रखती हो तो यह भी कहो कि इन मंत्रों का अर्थ क्या है? क्या तुम्हें इसका संज्ञान है?"
"जी, अवश्य।"
"तो किसी एक मंत्र का अर्थ कहो।"
"आप जो कहें उस मंत्र का अर्थ कहूँगी।"
"चौथे मंत्र का अर्थ कहो।"
"मैं पुण्य, पाप, सुख, दु:ख से विरक्त हूँ। ना मंत्र हूँ, ना तीर्थ हूँ, ना ही ज्ञान हूँ, ना ही यज्ञ हूँ। ना मैं भोजन हूँ ना मैं भोग का अनुभव हूँ ना ही भोक्ता हूँ। मैं तो शुध्ध चेतना हूँ। मैं अनादि, अनंत शिव हूँ।"
"क्या यह अर्थ, यह ज्ञान, यह समज तुम्हें अपने गुरु भगवान शिव से ही प्राप्त हुआ है?"
"यही तो मुझ पर शिव की कृपा है।"
"अदभूत, अदभूत। ऐसा स्वर, ऐसा ज्ञान, ऐसी विरक्ति आज से पूर्व हमने कभी नहीं देखि। मैं शिव शिष्य गुल को वंदन करता हूँ।" निर्णयाक ने दो हाथ जोड़ अभिवादन किया।
"नमो नम:। मेरी एक प्रार्थना है।"
"कहो।"
"मुझे इस प्रतियोगिता के प्रतिस्पर्धी के रुप में ना समझें। मैं भी ऐसी किसी भी प्रतियोगिता में विश्वास नहीं रखती।"
" 'मैं भी' से क्या तात्पर्य है तुम्हारा? क्या अन्य कोई भी यही विचार रखता है?"
"केशव भी यही विचार रखता है। यही कारण है कि वह इस मंच को, इस प्रतियोगिता को छोड़ गया।"

गुल के मंत्रोच्चार के प्रवाह में सभागार केशव को भूल गया था वही सभागार अब केशव को खोजने लगा। वह वहाँ नहीं था।
सभा ने अपनी कार्यवाही आगे बढाई। विजेताओं के नाम घोषित किए गए। पुरष्कार दिये गए। समापन हो गया। किन्तु ना तो गुल को, ना तो केशव को इसमें रुचि थी। दोनों वहाँ से जा चुके थे।

45

सभा को छोडकर केशव समुद्र तट पर आ गया। समुद्र की अविरत जन्मती, प्रवाहित होकर तट तक जाती तथा तट पर ही मृत हो जाती लहरों को देखता रहा। उसके मन में कोई भी लहर इसी प्रकार गतिमान न थी। वह शांत था। स्थिर था। प्रसन्न था। पश्चिमाकाश की तरफ गति कर रहे सूर्य की किरणें उसके मुख की कान्ति में वृद्धि कर रही थीं। केशव ने आँखें बंद की, ध्यान मुद्रा में बैठ गया। ओम् का नाद करने लगा।
एक अंतराल के पश्चात उसने ध्यान सम्पन्न किया, आँखें खोली। सन्मुख उसके वही रत्नाकर था जो अपने कार्य में व्यस्त था।
“एक लंबे अंतराल के पश्चात पुन: उस नाद को सुनाने के लिए धन्यवाद, केशव।”
“गुल, तुम? यहाँ कैसे?”
इस प्रश्न के उत्तर में गुल के मुख पर भी प्रश्न आ गया।
“मेरा तात्पर्य है कि तुम यहाँ कब आई?”
“तुम्हारे पीछे पीछे मैं भी आ गई। मुझे पूर्ण संज्ञान है कि ऐसी स्थिति में तुम कहाँ जा सकते हो। तो मैं भी चली आई। तुम्हें स्वस्थ, शांत तथा निश्चिंत देखकर मैं प्रसन्न हुई।”
“हाँ, एक बड़े मानसिक यूध्ध के पश्चात मैं शांत हो सका हूँ। किन्तु तुम इतनी सहजता से, सरलता से
कैसे शांत हो जाती हो? जिस क्षण जो भाव आवश्यक है वह भाव प्रकट करने के उपरांत तुम शीघ्र ही सहज हो जाती हो। क्या रहस्य है इसका?”
गुल हंस पड़ी, “तुम प्रत्येक बात को इतनी गंभीरता से क्यों लेते हो?”
“तो मैं क्या करूँ? सत्य-असत्य का पक्ष तो रखना ही … ।”
“केशव, उत्तेजित क्यों हो रहे हो? अभी अभी तो तुम शांत हुए हो।”
“ओह, क्षम्यताम।” केशव हंस पड़ा।
“किसी भी गंभीर बात को, उसके पक्ष-विपक्ष को शांत चित्त से, प्रसन्नता से व्यक्त करने की कला सीख लो।”
“किंतु कैसे?”
“सभी बातों को सहजता से लो। मन से यह भ्रम निरस्त कर दो कि तुम्हें इस संसार को बदलना है, इसे सत्य-असत्य का ज्ञान देना है, इसे सुधारना है।”
“क्या यह मेरा कर्तव्य नहीं है?”
“अवश्य है। किन्तु तुम्हारा कर्तव्य है प्रयास करना, परिणाम की कामना करना नहीं। तुम कृष्ण को जानते हो? मानते हो?”
“ऐसा प्रश्न क्यों?”
“कृष्ण ने भी प्रयास ही किये थे। वह भी सभी प्रयासों में सफल नहीं हुए थे। तो तुम कौन हो जो सफलता की अपेक्षा करते रहते हो? कृष्ण स्वयं गीता में कहते हैं कि – मा फलेषु कदाचन। तुम उसे कैसे भूल जाते हो?”
“इतना ज्ञान कहाँ से प्राप्त कर लेती हो?”
“अपने गुरु शिवशंकर से।” गुल हंस पड़ी। केशव दुविधा में पड़ गया।
“गुरु शिवशंकर?”
“हाँ। मैंने स्वयं महादेव को गुरु मान लिया है।” गुल ने पूरी बात बता दी जो उस मंच पर हुई थी।
“ओह, यह बात है। किन्तु यह बताओ कि तुम्हें और किसी का नाम नहीं सुझा और सीधे महादेव का नाम ही ले लिया!”
“केशव, उस समय जब गुरु का नाम पूछा गया तो मैंने आचार्य की तरफ देखा। उसने मुख मोड लिया। उनकी उस चेष्टा में स्पष्ट नकार था। मैं तुम्हें भी गुरु बनाना चाहती थी किन्तु तुम कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुए। तब मेरा ध्यान भड़केश्वर महादेव की पताका पर गया। वह स्थिर थी। मैंने मन ही मन महादेव को प्रार्थना की कि वह मुझे शिष्या के रूप में स्वीकार करें। उसने सकारात्मक संकेत दिया तो मैंने उसे गुरु मान लिया।”
“महादेव ने कैसा संकेत दिया था?”
‘वह स्थिर पताका गतिमान हो गई। वह इस प्रकार लहराने लगी जैसे तीव्र गति से पवन बह रही हो। जब कि निमिष पूर्व तक वह स्थिर थी, कोई पवन भी नहीं चल रही थी। मैंने उसे महादेव की स्वीकृति का संकेत मान लिया। अब महादेव ही मेरे गुरु हैं तथा रहेंगे।”
“हर हर महादेव।” दोनों ने एक साथ जयघोष किया, महादेव की पताका को नमन किया।

“गुल, तुम अंतिम परिणाम तक रुकी नहीं। ऐसा क्यों?”
“परिणाम में मेरी रुचि थी ही नहीं और ना है। अत: परिणाम तक रुकने का कोई औचित्य नहीं दिखा मुझे।”
“कदाचित ऐसा तो नहीं कि तुमने स्वयं को स्पर्धा से पृथक कर लिया था इसी कारण .. ।”
“स्पर्धा में तो मैं कभी थी ही नहीं तो ..।”
“तो मंच पर क्यों गई? क्यों निर्वाण षट्कम का गान किया? क्यों उन मंत्रों का अर्थ बताया? क्या था उस समय तुम्हारे मन में? क्या उद्देश्य था ?”
“केशव, मुझे ज्ञात नहीं कि उस समय मेरे मन में क्या चल रहा था। कोई उद्देश्य, कोई योजना ही नहीं थी कि मैं इस प्रकार मंच पर जाकर ऐसा कुछ करूंगी।मुझे प्रतीत हो रहा है कि यह जो कुछ भी हुआ किसी ने मेरे माध्यम से यह करवाया है।”
“कौन है वह?”
“मुझे कुछ संज्ञान नहीं। किन्तु समय की उस क्षण ने ही मेरा उपयोग किया होगा। समय से परे किस में इतना साहस है कि हम जैसे मनुष्यों से ऐसे कर्म करवाए?”
“यह भी हो सकता है कि स्वयं महादेव ने ही ऐसा प्रपंच रचा हो?”
“महादेव ने? हाँ, यह संभव हो सकता है।”
दोनों ने दूर लहर रही महादेव की पताका को देखा। समुद्र को देखा। समुद्र में अनेक लहरें उठकर शांत हो गई। सूर्य पश्चिमाकाश में अस्त हो गया। कुछ क्षण मौन बैठे रहे दोनों, पश्चात अपने अपने गंतव्य स्थान पर चले गए।

46

केशव ने जब गुरुकुल में प्रवेश किया तो उसे द्वार पर दो छात्र मिले। केशव ने उनको देखा, उन्होंने भी केशव को देखा। केशव ने उन्हें स्मित प्रदान किया किन्तु उन दोनों ने उसका कोई प्रतिभाव नहीं दिया। केशव आगे बढ़ा। कई और छात्र मिले। उनका व्यवहार भी वही था जो उन दो छात्रों का था। वह क्षण भर रुका, चारों तरफ उसने देखा। सभी छात्र वहीं थे जो उन्हें देख रहे थे। सबके मुख पर जो भाव थे वह केशव को अज्ञात लगे।
केशव सीधे अपने कक्ष में चला गया। द्वार भीतर से बंद कर बैठ गया। कुछ क्षण बिना किसी विचार के वह बैठा रहा। पश्चात वह उठा, गवाक्ष के द्वार खोल दिए। धीरे धीरे तमस में घिर रहे आकाश को देखने लगा। समुद्र से उठी एक पवन उसे स्पर्श कर गई। वह स्पर्श उसे अच्छा लगा। समुद्र की ध्वनि उसे सुनाई दी। भीतर की ध्वनि शांत होने लगी। उसने आकाश को देखा। तमस में लिप्त हो गया था वह। चंद्रोदय में अभी समय शेष था। अनेक तारें निकल आए थे। ऐसा आकाश उसे आकर्षक लगा। मन में उसके प्रसन्नता छाने लगी ।समय व्यतीत होता रहा।
सहसा किसीने द्वार खटखटाया। केशव तंद्रा से जागा। तारों भरे आकाश को गवाक्ष के बाहर छोड़कर वह कक्ष के द्वार पर आ गया। द्वार खोला। एक छात्र ने सूचना दी।
“केशव, भोजन का समय हो गया है। भोजन कर लो।”
“मुझे क्षुधा नहीं है।” केशव के उत्तर को सुने बिना ही छात्र चला गया। केशव ने द्वार बंद कर लिया। सभी विचारों को त्यागकर वह निंद्राधीन हो गया।

* * *

प्रात: जब केशव जागा तो सूर्य उदय हो चुका था। इस बात की पुष्टि उसने गवाक्ष खोलकर कर ली।

“आठ बज चुके होंगे। मैं इतने समय तक सोता रहा। यह कैसे हो गया? गुरुकुल में संध्या, पूजा, यज्ञ आदि सम्पन्न हो चुका होगा। कक्षा भी पूर्ण हो गई होगी। मैं इतने विलंब तक सोता कैसे रहा? किसी ने मुझे जगाया क्यों नहीं?” वह समुद्र को देखने लगा। उसके मन में तरंगें उठने लगी ।
‘गुरुकुल में ऐसा कभी नहीं होता है। यदि कोई छात्र जागने में विलंब करता है तो अन्य छात्र उसे जगा देते हैं। कोई भी छात्र प्रात:कर्म में अनुपस्थित नहीं रहता। कक्षा में भी नहीं। तो आज यह क्रम कैसे टूट गया? क्यों किसी ने मुझे जगाया नहीं?’
‘यह भी हो सकता है कि किसीने तुम्हें जगाने की चेष्टा की हो किन्तु तुम जागे ही नहीं। कितनी गहन निंद्रा में थे तुम।’
‘इतनी गहन तो नहीं थी मेरी निंद्रा।’
‘तो क्या कारण हो सकता है इन सब का, केशव ?’
‘यही तो ढूंढ रहा हूँ। किन्तु उत्तर नहीं मिल रहा।’
‘तो समुद्र तट पर जाओ। तुम्हारे सभी प्रश्नों के उत्तर वही तो देता रहा है आज तक। समुद्र से बातें करो। गुल से मिलो। वहीं उत्तर प्राप्त करो।’
केशव उठा, कक्ष से बाहर गया। गुरुकुल में सब कुछ नित्यक्रम अनुसार, समयानुसार चल रहा था। वह आगे बढ़। कुछने उसे देखा किन्तु अनदेखा कर दिया। अन्य सभी ने उसे देखने का कष्ट भी नहीं किया। उसने सभी के व्यवहार को देखा। समझने की चेष्टा किए बिना ही वह समुद्र तट पर चला गया। समुद्र को देखता रहा, गुल की प्रतीक्षा करता रहा। विचार करता रहा।
समय व्यतीत होने पर भी ना तो गुल आई, न ही उसके विचारों का अंत हुआ और न ही समुद्र की लहरें शांत हुई। वह लौट आया। मध्याह्न का भोजन भी उसने नहीं किया। अपने कक्ष में बैठा रहा, कुछ पढता रहा तो कभी गवाक्ष से समुद्र की लहरों को देखता रहा।
संध्या काल हो गया। एक छात्र ने आकर सूचना दी,“केशव, आचार्य तुमसे मिलने तुम्हारे कक्ष में आ रहे हैं।”
वह जागृत हो गया, “नहीं, नहीं। मैं ही चला जाता हूँ आचार्य से मिलने।” वह उठा तभी आचार्य ने प्रवेश करते हुए कहा,“नहीं केशव। तुम्हें मेरे पास आने की आवश्यकता नहीं है।”
आचार्य के शब्दों से केशव विचलित हो गया। स्वयं को संभाला और आचार्य को वंदन किया। आचार्य के मुख पर दिव्य भाव थे। उस भाव ने केशव को शांत कर दिया।
“केशव, भोजन कर लो।” एक छात्र भोजन की थाली ले आया। केशव के सम्मुख रख चल गया।
“कल से तुमने कुछ नहीं खाया, केशव। भोजन कर लो।”
“किंतु इस कक्ष में .. ?”
“यदि तु म भोजन के पास नहीं जाते हो तो भोजन स्वयं तुम्हारे पास इस कक्ष में आाया। बस इसे न्याय दो।”
“किन्तु ऐसा नहीं .. ।”
“यदि तुम अपने कक्ष में भोजन नहीं करना चाहते .. ।”
“मैं सबके साथ भोजन कक्ष में भोजन करूंगा। ”
“तो चलो।” आचार्य के साथ केशव भी चल दिया। उसने सबके साथ भोजन किया जैसे वह सदैव करता था। पश्चात केशव सभी दैनिक क्रियाओं में सम्मिलित हो गया। जब वह कक्ष में लौटा तो सब कुछ सामान्य हो चुका था। वह भी सामान्य हो गया था। किन्तु उसे समज नहीं आया कि यह सब कैसे हुआ वह सो गया।

47

गुल जब घर लौटी तो उसने देखा कि उसके आँगन में अनेक लोगों की भीड़ जमी हुई थी। भीड़ के मध्य में उसके पिता हाथ जोड़े मस्तक झुकाए खड़े थे। भीड़ में से कुछ लोग बुलंद स्वरों में कुछ बोल रहे थे। गुल की मां एक कोने में खड़ी खड़ी रो रही थी।
गुल वहीं रुक गई। किसी का ध्यान उस पर पड़े उससे पूर्व वह छुप गई।
कुछ समय पश्चात मां तथा पिता को डराकर भीड़ चली गई। गुल दौड़कर घर में चली गई। मां – पिता डरे हुए बैठे थे। गुल ने मां का हाथ पकड़ लिया। पिता ने गुल के कंधे पर हाथ रखा और गुल को देखते रहे। गुल की आँखों में प्रश्न थे जिनका उत्तर देना उस समय दोनों को उचित नहीं लगा। न ही उन दोनों में इतना साहस था उस समय। गुल ने अपने प्रश्नों को वहीं छोड़ दिया। वह दोनों के मध्य बैठ गई। स्वयं को सुरक्षित अनुभव करने लगी । मौन ही रात व्यतीत हो गई।
प्रात: काल जब गुल ने समुद्र को देखा। वह उसी ऊर्जा से अपनी लहरों को तट तक भेज रहा था जो ऊर्जा उसमें सदैव होती है। पवन उसी लय में बह रहा था। सूर्योदय से पूर्व चंद्रास्त की तरफ गति कर रहा चंद्र अपनी ज्योत्सना को पूर्ववत सौम्यता से समुद्र तथा रेत पर बरसा रहा था। समय की उस क्षण की सौन्दर्य वृद्धि कर रहा था। प्रकृति का यह रूप गुल को आकृष्ट कर रहा था। कुछ क्षण देखते देखते वह अनायास ही समुद्र की तरफ जाने लगी तब उसे मां ने रोका, "गुल, तुम घर से बाहर कहीं नहीं जाओगी। कभी नहीं।" गुल रुक गई।
"मां, तुम तो सो रही थी।"
"नहीं। मैं रात्री भर जागती रही हूँ।"
"क्यों? क्या बात है मां ?"
"तुम पर दृष्टि रख रही थी।"
"किन्तु क्यों?"
"तुम घर से बाहर नहीं जाओगी। इसके आगे कोई बात नहीं। कोई प्रश्न नहीं।"
गुल ने देखा कि मां की आँखों में पिछली संध्या का भय अभी भी था। गुल ने उसे पढ़ लिया। संकेत में ही मां को कह दिया कि मैं वही करूंगी जो तुम कहोगी। इस पर मां संतुष्ट हो गई। किन्तु पिता को वह स्वीकार्य नहीं था।
"गुल, तुम जहां जाना चाहो जा सकती हो। गुल की मां, उसे रोकना नहीं।"
"क्या मैं जा सकती हूँ पिताजी?" गुल उत्साहित हो गई।
पिता से पूर्व ही मां ने उत्तर दिया, "नहीं। एक बार कहा ना कि तुम कहीं नहीं जाओगी।"
"मां। क्या बात है? कल क्या हुआ था?" मां ने कोई प्रतिभाव नहीं दिया।
'कल जो कुछ भी हुआ था वह अवश्य ही गंभीर था। किन्तु क्या हुआ था? जब तक मां अथवा पिताजी बताएंगे नहीं तब तक कुछ भी ज्ञात नहीं होगा। मैं क्या करूँ?'
कुछ क्षण विचार के पश्चात गुल मां के समीप जाकर बोली, "तुम बताओगी नहीं तो मैं बाहर चली जाऊँगी। लो, मैं तो चली।"
मां ने उसे रोक लिया, "बताती हूँ। बैठ मेरे पास।" गुल बैठ गई। मां ने गुल के माथे पर, बालों में अंगुलियाँ घुमाई। कुछ समय पश्चात बोली,"देखो बेटा, हम जिस समाज में रहते हैं उससे बैर नहीं रख सकते।" गुल ध्यान से मां के हाव भाव देखती रही।
"कल जो लोग आए थे वह जमात के लोग थे। कुछ लोग मदरसा से भी थे। वह कहते हैं कि हमारा गुरुकुल से कोई संबंध ना रहे।"
"क्यों? ऐसा करने से क्या होगा?"
"क्यों कि गुरुकुल से संबंध रखने से हमारे मजहब को खतरा है।"
"कैसा खतरा, मां?"
"यही कि तुम्हें देखकर अन्य लोग भी हिन्दू धर्म के प्रति आकृष्ट हो रहे हैं। हमारे मजहब पर प्रश्न कर रहे हैं।"
"और उन्हीं प्रश्नों के उत्तर उन लोगों के पास नहीं है।" पिताजी ने कहा।
"तो इसमें हमारा क्या दोष?"
"प्रश्न उत्तरों का अथवा किसका दोष है वह नहीं है। प्रश्न यह है कि वह हमें डरा रहे हैं।"
"मां। हिन्दू नाम का कोई धर्म ही नहीं है। वास्तव में वह सनातन धर्म है जो युगों युगों से चला आ रहा है। गुरुकुल तो केवल

इस संस्कृति का प्रतीक है। जिनके पास प्रश्नों के उत्तर देने के लिए कुछ भी नहीं है वही लोग डराने का प्रयास करते हैं।"
"उसे तुम से समस्या है।"
"मेरे साथ उसे क्या समस्या है?"
"कल संस्कृत प्रतियोगिता में तुमने जो कुछ किया है उससे उन्हें समस्या है।" पिताजी ने कहा।
"कैसी समस्या?"
"कल तक तुम गुरुकुल से ज्ञान प्राप्त कर रही थी वह तुम्हारा व्यक्तिगत कार्य था। किन्तु कल तुमने सभी के सम्मुख मंत्रोच्चार करके उनकी भावनाओं को आहत कर दिया। तुम्हें इस प्रकार से सार्वजनिक रूप में मंत्रोच्चार नहीं करना चाहिए था ऐसा उन लोगों का कहना था।"
"और आपका क्या कहना था, पिताजी?"
"वह कुछ कह नहीं पाए। बस वह टोली आई और डराकर चली गई। अत: मुझे अत्यंत भय लग रहा है। उन्होंने कहा है कि तुम अब गुरुकुल नहीं जाओगी। तो तुम अब कहीं नहीं जाना।"
"और यदि मैं उनकी बात न मानूँ तो?"
"तुम उन लोगों को नहीं जानती। वह लोग कुछ भी कर सकते हैं।"
"कुछ भी का क्या अर्थ होता है?"
"वह हमें मार डालेंगे, काट डालेंगे।"
"मैं मृत्यु से नहीं डरती।"
"और न ही मैं डरता हूँ।"
"किन्तु मैं डरती हूँ। आप दोनों ऐसा कुछ भी नहीं करोगे जिससे हमारे जीवन पर खतरा हो।"
पश्चात उसके सभी तर्क, वाद, विचार वहीं समाप्त हो गए। गुल उस दिन कहीं नहीं गई। केशव समुद्र तट पर गुल की प्रतीक्षा करता रहा, वह नहीं आई।

48

पंद्रह दिन व्यतीत हो गए। घर से कोई बाहर नहीं गया। जब एक नए प्रभात ने अवनी पर प्रवेश किया तो गुल के पिता काम करने हेतु घर से जाने लगे। गुल की मां ने उसे रोका,"आप अभी भी कहीं नहीं जाएंगे।"
"किन्तु इस तरह यदि मैं काम पर नहीं गया तो घर कैसे चलेगा?"
"घर की चिंता न करो। अभी भी पंद्रह बीस दिनों तक चल सके इतना घर में सब कुछ है।"
"पंद्रह बीस दिनों के पश्चात क्या होगा? तब तो घर से निकलना होगा ना?"
"तब की बात तब सोचेंगे।"
"मृत्यु का भय तब भी बना ही रहेगा।"
"हमें आज की ही चिंता करनी होगी।"
"अर्थात हम मृत्यु को कुछ दिनों के लिए टाल रहे हैं। है न मां?"
"जिसे जो समझना हो समझे। मैं आप दोनों को कहीं जाने नहीं दूँगी।"
गुल के पिता रुक गए। गुल के मन में ग्लानि भर आई।

###

गुल से मिले एक महीने से अधिक समय व्यतीत हो गया था। केशव प्रतिदिन उसकी प्रतीक्षा करता, वह नहीं आती, केशव लौट जाता। इन दिनों में केशव के जीवन में परिवर्तन की पदध्वनि सुनाई देने लगी थी। परिवर्तन का यह समाचार गुल को सुनाने को वह उत्सुक था किन्तु वह समुद्र तट पर नहीं आती थी।
एक और नूतन प्रभात जन्म ले रहा था। सूर्योदय दूर क्षितिज में अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा था। केशव समुद्र तट पर बैठा था। समुद्र की तरंगों की ध्वनि ध्यान से सुन रहा था। उस ध्वनि में उसे कुछ नाविन्य का अनुभव हो रहा था। उसकी कर्णप्रियता से आकृष्ट होकर वह समुद्र के समीप गया। तरंगों की ध्वनि के साथ उसकी क्रीडा का आनंद भी लेने लगा। उन लहरों में व्यग्रता थी, उत्साह था, उन्माद था, आतुरता थी, किसी के आगमन की। अत: चंचलता भी थी। लहरों को देखकर केशव के मन में प्रश्नों की लहरें उत्पन्न होने लगी।
'आज इन लहरों को क्या हो गया है? क्यों इतनी अधीर है? क्यों इतनी शीघ्रता में हैं? समुद्र आज क्या करने वाला है? क्या संकेत दे रही है यह तरंगें?' वह विचारों में मग्न था तभी तरंगों की ध्वनि के साथ साथ उसे मंद मंद स्वरों में मनुष्य की ध्वनि

सुनाई देने लगी। वह ध्वनि अस्पष्ट थी। केशव ने आँखें बंद कर उस मनुष्य ध्वनि पर ध्यान केंद्रित किया। ध्वनि समीप आ रही थी। धीरे धीरे स्पष्ट हो रही थी।
“ओम त्र्यम्बकं यजा महे सुगंधीं पुष्टि वर्धनं।
उर्वा रुकमीव बंधनात मृतयोर मुक्षीयमाम मृतात।।”
“ओह, यह तो महा मृत्युंजय मंत्र है। इस स्थान पर, इस समय यह मंत्र? क्या कोई विपत्ति में है? कौन है जो स्वयं मृत्युंजय महादेव का स्मरण कर रहा है?” केशव ने उस मंत्र पर ध्यान दिया। पुन: पुन: वह मंत्र सुनाई दे रहा था। वह ध्वनि अत्यंत समीप या गया। उसने आँखें खोल उस मंत्रों को बोल रही व्यक्ति को देखने की मनसा की किन्तु शीघ्र ही मन ने उसे रोका। ‘आँखें बंद रखो और उस अलौकिक ध्वनि की अनुभूति करते रहो। कितना दिव्य स्वर है! आँखें खोल दोगे तो इस आनंद को खो सकते हो।’ केशव ने मन के आदेश को माना।
उसे केवल महा मृत्युंजय मंत्र ही सुनाई दे रहा था, अन्य कुछ भी नहीं। समुद्र की तरंगों की ध्वनि भी मंत्र की ध्वनि में समाहित हो गई।
समय के एक बिन्दु पर मंत्रो का उच्चार सम्पन्न हो गया। केवल समुद्र की ध्वनि ही शेष रह गई। केशव का ध्यान योग भी सम्पन्न हो गया। उसने आँखें खोली। सम्मुख उसके गुल खड़ी थी। कुछ क्षण तक केशव विस्मय में डूबा रहा। पश्चात जब उसने गुल को देखा तभी सूर्य की प्रथम रश्मि गुल के मुख पर पड़ी। उसके मुख पर एक दिव्य आभा उभर आई। केशव उस आभा के सम्मोहन में लिप्त हो गया। गुल को अनिमेष नयनों से देखता रहा। गुल ने केशव की उस मुख मुद्रा को क्षणभर देखकर मौन तोड़ा।
“केशव, केशव।” किन्तु केशव निरुत्तर रहा, निश्चल रहा। गुल ने पुन: कहा, “केशव, मैं गुल। तुम कहाँ हो? किस विश्व में हो? मुझे देखो, मेरी बात सुनो, मुझसे बात करो।” केशव ने तब भी कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।
गुल के पीछे अरबी समुद्र था। उसकी लहरें जन्म लेती थी, समाप्त हो जाती थी। मधुर ध्वनि का सर्जन कर रही थी। किन्तु केशव का ध्यान उन सभी क्रियाओं में से किसी पर भी न था। वह केवल गुल को ही देख रहा था।
“केशव, ईस प्रकार खड़े हो तो तुम किसी पत्थर की प्रतिमा लग रहे हो। तुम पत्थर नहीं हो। तुम्हारे भीतर चेतन है, ऊर्जा है। तुम उस का संचार करो। इस ध्यान योग का अंत करो।”
गुल का धैर्य टूट गया। उसने केशव का हाथ पकड़ लिया और उसे आंदोलित करने लगी। केशव किसी गहन मोह से जागा। आँखों के सम्मुख प्रस्तुत द्रश्य को समजने के प्रयास में वह उस द्रश्य के भीतर उतर गया।
“गुल।” केशव बस एक ही शब्द बोल पाया। गुल ने केशव को शीला पर बीठा दिया और स्वयं उसके समीप बैठ गई।
“गुल इन मंत्रों का उच्चार तुम कर रही थी ना ?”
“हाँ। कोई संदेह?”
“नहीं। तुम आज इन मंत्रों को क्यों पढ़ रही थी? इसे पढ़ने का कोई विशेष प्रयोजन? तुम जानती हो यह मंत्र कौन सा है? इसका प्रभाव क्या है? कहाँ से सिख लिया यह मंत्र? यह मंत्र .. ।”
“रुको केशव। इतने सारे प्रश्न एक साथ पूछोगे तो मैं उत्तर भूल जाऊँगी और तुम प्रश्न ही भूल जाओगे।”
“तो मैं एक एक कर प्रश्न पूछता हूँ। तुम एक एक कर उत्तर देना।”
“तुम मुझे प्रश्न पूछो उससे पूर्व मैं तुमसे कुछ पूछना चाहती हूँ। क्या मैं पहले पुछ लूँ?”
“मैं पहले क्यों नहीं? तुम ही पहले क्यों?”
“क्यों कि यदि मैं तुम्हारे प्रश्नों में उलझ गई तो मैं मेरे प्रश्न ही नहीं, मैं स्वयं को भी भूल जाऊँगी। आज मैं कुछ भूलना नहीं चाहती। तो प्रथम प्रश्न मेरा और उत्तर तुम्हारा। स्वीकार है?”
“मेरे पास कोई विकल्प तुमने छोडा ही नहीं। चलो, तुम ही पूछ लो।”
“तुम मुझे देखकर किस जगत में चले गए थे? क्यों? तुमने ऐसा तो पूर्व में कभी नहीं किया। न ही मैं तुम्हारे समक्ष प्रथम बार प्रस्तुत हुई हूँ। यह कौन सा रहस्य है?”
“गुल, यह रहस्य नहीं चमत्कार है।”
“वह कैसे?”
“तुम्हारा मंत्र पठन अद्भुत था। तुम्हारे स्वर में एक जादू था, एक लय थी जिसमें मैं बह गया। तुम इतने दिनों के अंतराल के पश्चात मुझे मिल रही हो। तुम्हें इन दिनों की गणना ज्ञात भी है क्या? और उस पर यह मंत्र, मंत्र का इस प्रकार पठन। उपरांत उसके तुम्हारे मुख पर पड़ी सूर्य की प्रथम किरण। कितनी प्रबल आभा तुम्हारे मुख पर छाई है उससे तुम अनभिज्ञ हो। तुम उसे देखोगी तो चकित हो जाओगी। कदाचित स्वयं को ही अज्ञात लगने लगोगी। इस प्रवाह में मेरा खो जाना तुम्हें सहज नहीं लगता क्या?”
“ओह, यह बात है? अब तो मुझे मेरा मुख देखना है, अभी। कैसे देखूँ? कहां देखूँ? कोई दर्पण भी नहीं मेरे पास।”
“है ना, दर्पण है मेरे पास।”
“तो शीघ्र ही निकलो और मुझे दो। मैं मेरे मुख की आभा को देखने के लिए लालायित हो रही हूँ।”

“आओ मेरे साथ।”
केशव समुद्र की तरफ़ चलने लगा।
“कहाँ जा रहे हो ?”
“दर्पण दिखाता हूँ। आओ, मेरे साथ चलो।”
केशव समुद्र के भीतर गया। गुल भी।
“इस में देखो। स्वयं के मुख को, मुख की आभा को देखो। उससे उत्तम दर्पण और कौन सा होगा?”
गुल ने समुद्र के पानी में स्वयं को देखने की चेष्टा की। कुछ क्षण पश्चात बोली,“यह दर्पण उपयुक्त नहीं है। मुझे कोई अन्य दर्पण दिखाओ।”
“इस दर्पण से कोई समस्या है?”
“केशव, यदि हमें अपना प्रतिबिम्ब देखना हो तो ऐसा दर्पण चाहिए जो स्थिर हो, स्पष्ट हो। अस्थिर दर्पण कभी स्वच्छ या स्थिर प्रतिबिम्ब नहीं दिखा सकता।”
“अर्थात् ?”
“यह समुद्र के पानी को देखो। निरंतर बहता रहता है। अस्थिर एवं चंचल रहता है। इसमें मैं अपनी मुखाकृति को देख ही नहीं सकती। यह दर्पण मेरी मुखाकृति का प्रतिबिम्ब रॉक नहीं पा रहा है। ऐसे में मेरे प्रतिबिम्ब को कैसे देखूँ?”
“तो अब क्या करें?” केशव ने चिंता प्रकट की।
गुल ने चारों तरफ़ देखा, कुछ सोचा।बोली, “आओ, मैं तुम्हें दर्पण दिखाती हूँ। वह स्थिर है, स्वच्छ है, स्पष्ट भी है।”
गुल निकट ही स्थित कन्दरा पर चड गई।
“इस कन्दरा को देखो। यहाँ पानी भरा हुआ है जो समुद्र की वेला के समय आकर यहाँ ठहर गया है। इसे समुद्र की चंचल लहरें विचलित नहीं कर सकती।”
केशव ने उस पानी को देखा। स्वयं के प्रतिबिम्ब को देखा। स्थिर, स्वच्छ एवं स्पष्ट प्रतिबिम्ब।
“अरे वाह। यह दर्पण अच्छा है।”
“यही तो केशव।”
“गुल, तुम भी आओ, देखो अपना प्रतिबिम्ब।”
गुल ने स्वयं के प्रतिबिम्ब को देखा।
”केशव, मेरे मुख पर कोई आभा नहीं दिख रही। सब कुछ सामान्य है, पूर्ववत है।”
केशव ने गुल के मुख को देखा।
“हाँ गुल। तुम सत्य कह रही हो।वह आभा जो अभी तक तो यहीं थी वह न जाने कहाँ लुप्त हो गई?”
“केशव, तुम मेरे साथ उपहास कर रहे हो ना?”
“नहीं गुल, मेरा ऐसा कोई तात्पर्य नहीं है।”
“तो मुझे वह आभा का दर्शन कराओ जिस आभा में तुम कहीं खो गए थे।”
“वह आभा तुम्हारे मुख पर पड़ रहे सूर्योदय के कोमल किरणों के कारण थी। अब यहाँ सूर्य किरणें नहीं है तो आभा भी नहीं है।”
“यह आभा भी ना...।”
“अत्यंत चंचल होती है।क्षणभर में वह कहीं चली जाती है और हम उसे जीवन भर खोजते रहते हैं।”
केशव की इस बात पर दोनों हंस पड़े। कन्दरा को त्याग पुन: तट पर आ गए।

49

“गुल। तुम्हें तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल गया। अब मेरे प्रश्नों के उत्तर दो।”
“अवश्य।”
“एक, तुम इतने दिनों तक कहाँ थी?
दो, इतने दिनों तक क्यों नहीं आइ?
तीन, इतने दिनों पश्चात क्यूँ आइ? कैसे आइ?
चार, तुम जिस मंत्र का जाप कर रही थी वह कौन सा मंत्र है? उसका प्रभाव क्या है?
पाँच, उस मंत्र का जाप क्यूँ कर रही थी?
छः, तुमने यह मंत्र कहाँ से सीखा? मुझे इन प्रश्नों के उत्तर दो, गुल।”
“छः प्रश्न। सभी के उत्तर देने में समय लगेगा।तुम्हारे पास इतना धैर्य है?”
“मेरे भीतर धैर्य का अभाव नहीं है। बस तुम कहती जाओ।”
“ठीक है। आओ यहाँ बैठो।” गुल समुद्र की रेत पर बैठ गई।
केशव उसके सम्मुख बैठ गया। दोनों की एक तरफ़ समुद्र था तो दूसरी तरफ़ सूर्योदय।
“जिस दिन मैंने संस्कृत गान स्पर्धा में निर्वाण षट्कम का गान किया था उसी दिन यह समाचार हमारे मझहब के कुछ व्यक्तियों तक पहुँच गया। उस संध्या तुम से मिलकर जब मैं घर पहुँची तो वही लोग हमारे घर आकर बैठे थे। मेरे माता पिता को डरा रहे थे।”
“क्यों?”
“मेरे कारण। मैंने जो सनातन धर्म के मंत्रों का गान किया था।”
“तो क्या हो गया?”
“ऊनके मत अनुसार मेरा वह कृत्य इस्लाम के विरुद्ध है। उनकी दृष्टि में यह मेरा अपराध है।”

“और इस अपराध का क्या दंड दिया उन लोगों ने?”
“यही कि मैं, मेरी मां तथा मेरे पिता गुरुकुल से कोई सम्बंध ना रखें।”
“यदि ऐसा नहीं किया तो?”
“तो वे हमें मार डालेंगे।”
“क्या? मार डालेंगे? इस प्रकार मार डालने वाले कौन होते हैं वह लोग? मुझे बताओ। मैं अभी उसे...।”
क्रोध में केशव अपने स्थान से उठ खड़ा हो गया।
“केशव, इस प्रकार उत्तेजित ना हो। शांत हो जाओ। बैठ जाओ। यह समय क्रोधित होने का नहीं है।”
“किंतु कोई ऐसे कैसे कर सकता है?” केशव के क्रोध का अभी भी शमन नहीं हुआ था।
अधरों पर स्मित लाते हुए गुल बोली, “सर्व प्रथम पूर्ण बात सुन लो, समज लो। अभी शांत हो कर बैठ जाओ। केशव बैठ गया। गुल ने क्षण को मौन ही व्यतीत होने दिया।
“आगे कहो, क्या हुआ?”
“इस घटना से मां अत्यंत भयभीत हो गई। पिताजी पर उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।”
“और तुम पर?”
“मुझे प्रथम तो कुछ समज ही नहीं आया कि मेरे द्वारा मंत्रों के गान पर किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? मैंने पिताजी से पूछा तो उसने कहा कि यह इस्लाम के धर्मांध लोग हैं जिनमें स्वयं इतनी क्षमता नहीं है कि वह अपने पंथ का रक्षण कर सके। एक बालिका के मंत्र गान से जो पंथ संकट में पड़ जाए वह पंथ ही कैसा? पिताजी ने उन लोगों की बातों को गम्भीरता से नहीं लिया। किंतु मां ने उसे गम्भीर मान लिया है।”
“वह कैसे?”
“दूसरे दिन प्रातः नित्य क्रमानुसार मैं महादेव के दर्शन के लिए घर से निकलने लगी तो मां ने मुझे रोक लिया। पिताजी ने कई तर्क रखे किंतु मां नहीं मानी। मुझे घर से जाने ही नहीं दिया। पिताजी को भी मां ने बाहर जाने से रोक लिया। आज एक मास से अधिक समय हो गया, कोई घर से बाहर नहीं गया।”
“पिताजी भी नहीं?”
“ना। पिताजी भी नहीं। इतने दिनों से वह गुरुकुल भी नहीं आए। क्या तुम्हें इस बात का संज्ञान नहीं है?”
“क्या बात कर रही हो? वास्तव में मुझे इस बात का संज्ञान नहीं है।”
“क्यों? तुम गुरुकुल में नहीं रहते हो?”
“गुरुकुल में ही हूँ। किंतु मेरा ध्यान ही नहीं रहा इस विषय पर।”
“इन दिनों किस बात पर ध्यान है तुम्हारा?”
केशव कुछ समय विचार कर बोला, “किसी अन्य विषय में मैं व्यस्त था।”
“किस विषय में? मुझे नहीं बताओगे?”
“बताऊँगा।अभी नहीं। कभी अनंतर उस विषय में बात करेंगे। इस समय तुम्हारे विषय में ही बात करेंगे। तुम कहो।”
“उन व्यक्तियों की अधम चेष्टा के कारण तथा मां के मन के भय के कारण में घर में ही थी।” एक गहन नि:स्वास लेकर गुल मौन हो गई। केशव ने मौन रहते हुए कुछ क्षण प्रतीक्षा की किंतु गुल शांत बैठी रही।
गुल समुद्र के पानी को देख रही थी। पवन की कुछ लहरें आईं, गुल के केशों को उसके गालों पर छोड़कर चली गई। वह अनिमेष समुद्र को देख रही थी। केशव उसे देख रहा था। गुल के मुख पर अल्प विषाद था। केशव ने उसे पढ़ लिया।
‘मुझे विषाद के इन क्षणो से गुल को निकालना होगा।मुझे कुछ करना होगा अन्यथा यदि यह विषाद प्रलंब चला तो...।’
कुछ क्षण विचार के पश्चात केशव बोला,“गुल तुम्हारे गालों पर तुम्हारे केश ने आसन जमा दिया है। उसे वहाँ से दूर करो।”
“क्यों?” गुल ने प्रतिक्रिया में पूछा।
“क्यों की मेरे और तुम्हारी आँखों के मध्य वह बाधा बनकर बैठ गए हैं। उसे वहाँ से हटाओ।”
गुल केशव की तरफ़ मूडी, “क्यों हटाऊँ मैं? नहीं हटाती हूँ जाओ।”
गुल के केशव की तरफ़ मुड़ते ही गाल पर के केश स्वतः हट गए।उसे देख केशव बोला, “अब इसकी आवश्यकता नहीं है क्यों कि तुम्हारे केश मेरी बात समज गए और स्वतः हट गए हैं।”
गुल ने उन केशों को देखा। वह अब उसके कंधे पर थे।
“यह केश भी ना, अब मेरी नहीं, तुम्हारी बात मानने लगे हैं।” गुल ने मिथ्या क्रोध को केशों पर उतारते हुए उसे पीछे धकेल दिया।
“तुम्हारे इस रोष में भी एक सौंदर्य है, गुल।”
गुल हंस पड़ी।
“केशव, मैंने तुम्हारे दो प्रश्नों के उत्तर दे दिए।”
“चलो मान लिया। बाक़ी के उत्तर कब मिलेंगे?”

“आज, इसी क्षण। कल का कोई विश्वास नहीं।”
केशव ने गुल को प्रश्न दृष्टि से देखा।
“इतने दिनों तक मृत्यु के ओथार तले समय व्यतीत होता रहा। कल रात्रि निंद्रा से पूर्व मेरे मन ने विद्रोह कर दिया। किसी भी भय से विचलित नहीं होने की मन आज्ञा करने लगा। उसी अवस्था में मैं सो गई। ब्राह्म मुहूर्त में जाग गई। तब भी मेरा मन मुझे निर्भीक होने का आदेश दे रहा था। उसे मानते हुए मैं घर से बाहर निकल आइ। मैंने देखा कि समुद्र उसी अवस्था में था जिसमें वह सदैव होता है। वही गर्जना, वही लहरों का उठना, तट पर जाना, और वहीं स्वयं को समर्पित कर देना। मैं अनेक क्षणों तक लहरों के उस क्रम को देखती रही। उस क्रम में वह मुझे कुछ संकेत दे रही थी।”
“कौन सा संकेत? कैसा संकेत?”
“उस समय मैं उस संकेत को पकड़ नहीं सकी, समज नहीं सकी। तथापि मैं उसे देखती ही रही। कुछ समय व्यतीत होने पर भी जब मैं उस संकेत को पकड़ नहीं पाई तो मैंने समुद्र पर से हटाकर तट पर दृष्टि डाली। तट की भीगी रेत पर एक श्वेत पुंज व्याप्त था। मैंने उसे देखा। पश्चात अनायास ही मेरी दृष्टि गगन की तरफ़ गई। कृष्ण पक्ष की पंचमी का शशांक वहाँ विराजमान था। वह अपनी चाँदनी का शीतल वस्त्र धरती को ओढ़ाए विहार कर रहा था। वह चंद्र मुझे लुभाने लगा। आज से पूर्व कभी मैंने ऐसे समय ऐसे चंद्र को नहीं देखा था। वह प्रभात का समय अत्यंत भिन्न था। चाँदनी वाला प्रभात ! जैसे चाँदनी भरी रात्रि होती है-मनोहर, आकर्षक, मनभावन। वैसा ही प्रभात था वह। चाँदनी प्रभात! कदाचित चाँदनी रात्रि से भी अधिक सुंदर था चाँदनी प्रभात।
मैं घर से निकलकर रेत पर आ गई। चाँदनी में डूबे तट पर बैठ गई। चाँदनी में नहा रहे समुद्र को देखती रही। एक अद्भुत, अनन्य एवं अनुपम अनुभूति हो रही थी मुझे। केशव, तुम सुन रहे हो ना मुझे?”
गुल ने केशव को देखा। वह अनिमेष नयनों से गुल को देख रहा था।अनिमेष कर्णों से सुन रहा था।
“हाँ, गुल। तुम मुझे चाँदनी प्रभात में पुन: ले चलो। मैं तुम्हारे माध्यम से उस क्षण का अनुभव कर रहा हूँ, उस क्षण में स्वयं को पा रहा हूँ।”
“वह क्षण मेरे जीवन के अद्भुत क्षण थे। उससे अधिक मेरे पास कोई शब्द नहीं है। शब्द सौंदर्य को खंडित कर देते हैं। अतः मैं तो यही कहूँगी कि तुम भी कल चाँदनी प्रभात का अनुभव स्वयं करना। मैंने तुम्हें परोक्ष अनुभव करवाया। जब तुम उसका प्रत्यक्ष अनुभव करोगे तो तुम भी उसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर पाओगे।”
“कल चंद्र होगा? चाँदनी होगी?”
“केशव, तुम कुछ स्वगत बोले। क्या बोले?”
“उसे छोड़ो। तुम आगे कहो।”
“चाँदनी प्रभात का अनुभव कराते कराते चंद्र कुछ समय पश्चात, सूर्योदय से पूर्व अस्त हो गया। वहाँ, उस स्थान पर।” गुल ने चंद्रास्त बिंदु की तरफ़ अंगुलि निर्देश किया। केशव उस बिंदु को देखने लगा।
“उस बिंदु पर?”
“हाँ केशव, उस बिंदु पर।”
“वह बिंदु तो शिव मंदिर के ठीक पीछे है।”
“यही तो। भड़केश्वर महादेव मंदिर के पीछे चंद्र अस्त हो गया। किंतु वह मेरे मन में एक बात का उदय कर गया। उसके वहाँ अस्त होने पर मेरा ध्यान शिव मंदिर पर केंद्रित हो गया। उसने मुझे महादेव का स्मरण करा दिया।”
“अर्थात् इतने दिनों तुम महादेव का विस्मरण कर चुकी थी?”
“हाँ केशव, माया। इसे ही माया कहते हैं न?”
“सम्मुख हो तथापि उसका विस्मरण हो जाय तो उसे माया ही कहेंगे।”
“सुना है कि संकट के समय ही हम ईश्वर का अधिक स्मरण करते हैं तथा सुख में विस्मरण। किंतु यहाँ तो क्रम ही उल्टा हो गया। हम संकट में हैं इन दिनों तथापि हमें महादेव का स्मरण नहीं हुआ।माया का यह कैसा आचरण है, केशव?”
“अब तो माया का आवरण हट चुका है ना गुल?”
“हाँ। मुझे शिव का स्मरण हो गया। तत्क्षण मैंने मेरा संकट उसे समर्पित कर दिया। और प्रार्थना भी की।”
“शिवजी ने तुम्हारी प्रार्थना सुन ली?”
“वह तो सुनता ही है, हम उसे बताने में चूक जाते हैं। मेरी प्रार्थना भी उसने सुन ली।”
“वाह।”
“मैं शिवजी की पताका को देखने लगी। सहसा वह चलित हो गई, लहराने लगी। मैं प्रसन्न हो गई, शिवजी का ध्यान करने लगी। तभी मेरे अधरों पर स्वतः यह मंत्र आ गया
- ओम त्र्यम्बकं यजा मही सुगंधीं पुष्टि वर्धनं।
उर्वा रुकमीव बंधनात मृतयोर मुक्षी यमाम मृतात।।”
“गुल, पुन: एक बार इस मंत्र का उच्चारण करो।”

“ओम त्र्यम्बकं यजा मही सुगंधीं पुष्टि वर्धनं।
उर्वा रुकमीव बंधनात मृतयोर मुक्षी यमाम मृतात।ल
महा मृत्युंजय के इस मंत्र में इतनी शक्ति है कि वह हम जैसे मनुष्यों को मृत्यु के भय से मुक्त कर देता है। है ना केशव?”
“सत्य वचन, गुल। तुम अब मृत्यु के भय से मुक्त हो गई हो।”
“यही कारण है कि आज में यहाँ आ सकी हूँ। अब मुझे मृत्यु से कोई भय नहीं।”
“गुल, तुमने तो मेरे बाक़ी प्रश्नों के उत्तर भी दे दिए।”
“तो चलो। भड़केश्वर महादेव के दर्शन कर आते हैं। तुम चल रहे हो ना मेरे साथ?”
केशव ने कुछ क्षण तक कोई प्रतिभाव नहीं दिया।
“ठीक है, तुम नहीं आना चाहते हो तो कोई बात नहीं। मैं अकेली ही चली जाती हूँ।”
“गुल, क्षमा करना। इसी समय मुझे गुरुकुल में कुछ आवश्यक, अति आवश्यक कार्य करना है अतः मैं इस समय तुम्हारे साथ नहीं चल सकता। किंतु आज संध्या हम पुन: मिलेंगे। तब मुझे तुमसे अनेक बातें करनी है। तुम आओगी ना संध्या समय?”
केशव पर मौन दृष्टि डालकर गुल महादेव की तरफ़ चली गई। गुल की उस दृष्टि के संकेत में ‘हाँ’ थी की ‘ना’ वह केशव निश्चित नहीं कर सका।वह गुरुकुल लौट गया।

50

सूर्यास्त का समय हो रहा था। समुद्र की तरंगें अपना कर्तव्य निभाती हुई तट पर जाकर विलीन हो रही थी। वह अपना कर्तव्य शांत रूप से निभा रही थी। उनमें कोई उन्माद न था। समुद्र का यह रुप इतना शांत था जैसे कोई शांत नदी। इतनी शांति में पूर्णत: शांति से गुल की प्रतीक्षा कर रहा था केशव। एक असीम शांति व्याप्त थी वहाँ।
सूर्य अपने लक्ष्य के प्र ति गति कर रहा था। उसकीग ति तीव्र होती जा रही थी। केशव उस गति को शांत चित्त से निहार रहा था। सूर्य क्षितिज पर आ गया। समुद्र के स्पर्श से अल्प अंतर पर था वह। सूर्य के समुद्र स्पर्श की क्षण की केशव प्रतीक्षा कर रहा था।
‘यह केवल स्पर्श मात्र है या संगम? यह संगम प्रतिदिन होता है। किंतु आज से पूर्व मैं इस क्षण का साक्षी नहीं बन पाया। आज भी कदाचित यह संगम का अंतिम दर्शन होगा इस स्थान से। कल से किसी अन्य स्थान से संगम देखने का अवसर प्राप्त होगा। होगा या नहीं यह भी मुझे ज्ञात नहीं है। यदि इस समय गुल यहाँ होती तो.... तो गुल के साथ भी तुम्हारा संगम अंतिम होता।’
‘यदि आएगी तो।’
‘और यदि गुल नहीं आइ तो?’
‘तो अंतिम संगम आज प्रातः काल हो ही गया है।’
केशव के मन के तर्क वितर्क चल रहे थे उसी क्षण सूर्य ने समुद्र का स्पर्श कर लिया। उसे देख केशव उत्साह में उठ कर समुद्र की तरफ़ चलने लगा। उस स्पर्श में खो गया। सूर्य समुद्र के भीतर समा गया। केशव समुद्र से बाहर आ गया। तट पर उसके सम्मुख गुल खड़ी थी।
“गुल? कब से आकर तुम यहाँ खड़ी हो?”
गुल ने उत्तर नहीं दिया। व ह रेत पर बैठ गई। केशव उसके समीप बैठ गया।
“केशव, आज तुम इस समय समुद्र के भीतर क्यों गए?”
“समु द्र के भीतर जाने का कोई निश्चित समय होता है क्या?”
“नहीं। मेरा तात्पर्य ...।”
“तो ऐसे प्रश्न क्यों?”
“पूछे जाने वाले प्रत्येक प्रश्नों के तात्पर्य हो यह आवश्यक नहीं।तथापि हम अनायास ही ऐसे प्रश्न पू छ लेते हैं।”
“ऐसे प्रश्नों के उत्तर देना आवश्यक होता है क्या?”
“नहीं। वास्तव में ऐसे प्रश्नों के कोई स्पष्ट उत्तर होते ही नहीं।”
“तो हम ऐसे प्रश्न पुछते ही क्यों हैं?”
“अहम न जानामि।”
“भवति संस्कृत जानाति?”
“य हाँ भवति के स्थान पर त्वम का प्र योग करते तो उचित रहेता।”

“तुम इतना संस्कृत जानती हो गुल?”
“हाँ।”
“कैसे?”
“काच: कांचन संसर्गात मारकतीम ध्युतिम धत्ते।”
“ओह। तो तुम यह भी जानती हो।”
“अवश्य।”
“तो तुम काँच हो।काँच की प्रकृति को तुम जानती ही हो। वह सरलता से टूट जाते हैं।”
“तो क्या तुम गुल नाम के काँच को तोड़ने की मनसा से यहाँ आए हो?”
गुल की बात से केशव विचलित हो गया।
‘जिस बात को कहने के लिए आज मैंने गुल को यहाँ बुलाया है यदि वह बात मैंने उसे कह दी तो क्या वह टूट जाएगी? और यदि इस समय वह टूट गई तो, टुकडों में बिखर गई तो? तो उसे पुन: समेटना कठिन हो जाएगा।’
‘यदि समेटना असम्भव ही हो गया तो?’
इस विचार पर केशव रुक गया। निश्चय कर लिया। स्वगत ही बोल पड़ा, “नहीं।नहीं।”
समुद्र को देख रही गुल ने केशव के शब्द सुने।
“क्या हुआ केशव? किस बात पर नहीं, नहीं कह रहे हो?”
केशव सचेत हो गया।
“गुल नाम के काँच को तोड़ना नहीं है मुझे।बस यही बात है।”
“मुझे इस समय यहाँ बुलाने का क्या प्रयोजन है, केशव?”
“बताता हूँ। प्रथम यह कहो कि तुम और तुम्हारा परिवार सुरक्षित तो है ना?”
“अभी तक तो है। कल क्या होगा कोई नहीं जानता।”
“कल क्या हो सकता है?”
“मृत्यु से अधिक कोई किसी की क्या क्षति कर सकता है?”
“मृत्यु?” विचलित हो गया केशव। उसने गुल के मुख को देखा। वहाँ भय के कोई भाव नहीं थे। सहज, सरल एवं निर्लेप होकर वह समुद्र को देख रही थी।
“गुल, तुम्हारा अर्थ है कि वह लोग आप सबको मार डालेंगे?”
“हाँ। मैं यह बात पहले भी कह चुकी हूँ।”
“इस बात का तुम्हें कोई भय नहीं?”
“नहीं। केशव।”
“गुल, मैं मृत्यु की बात कर रहा हूँ। तुम समज रही हो ना? मृत्यु।”
“हाँ केशव। मेरे मन में कोई संदेह नहीं है। मृत्यु शब्द के अर्थ को मैं स्पष्ट रूप से समजती हूँ।”
“तो तुम इतनी निर्लेप, इतनी स्थिर कैसे रह सकती हो?”
“तो क्या मैं विचलित हो जाऊँ? मृत्यु के भय से भयभीत हो जाऊँ?”
“किंतु मृत्यु कभी भी आ सकती है।”
“जब मृत्यु से मिलन होगा तब मृत्यु के विषय में विचार करूँगी।”
“किंतु ….।”
“इस क्षण तो जीवित हूँ न?”
“तो …।”
“मृत्यु के विषय में इतना ना सोचो केशव। मृत्यु से पूर्व, मैं जो भी समय शेष है उसे जीना चाहती हूँ। और मैं जी रही हूँ। मृत्यु से पूर्व मृत्यु में मेरी कोई रुचि नहीं है।”
“यह धैर्य, यह परिपक्वता कहाँ से प्राप्त कर लेती हो तुम गुल?”
“गुरुकुल से।”
“क्या? तुम गुरुकुल समय समय पर आती जाती रहती हो।जब कि मैं वहाँ निरंतर निवास करता रहा हूँ। किंतु मैं मृत्यु के भय से मुक्त नहीं हो सका हूँ।तुम उस भय से मुक्त हो। यह कैसी विडम्बना है गुल?”
गुल ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह निर्लेप भाव से समुद्र को देखती रही। केशव विचारों के समुद्र में खो गया।
‘गुल मृत्यु के भय से भी विरक्त है। मेरी बात जो मैं कहना चाहता हूँ उस बात से भी वह विरक्त ही रहेगी। वह काँच की भाँति टूट नहीं सकती। उसका मनोबल कितना दृढ़ है।’
‘तो क्या गुल को वह बात कह देनी चाहिए?’
‘अवश्य कह दो, केशव।’

केशव कुछ निर्णय कर सके उससे पूर्व ही गुल ने कहा, “केशव, जिस बात के लिए तुमने मुझे यहाँ बुलाया था वह क्या है?”
केशव ने एक गहन श्वास ली, स्वयं को स्वस्थ करते हुए बोला, “गुल, कल प्रातः सूर्योदय से पूर्व मैं गुरुकुल छोड़कर चला जाऊँगा।” केशव ने आँखें बंद कर ली।
“क्यों जा रहे हो? कहाँ जा रहे हो? कब लौटोगे?” बिना किसी उन्माद के गुल ने पूछा।
“मैं मिठापुर जा रहा हूँ। यहाँ से बीस किलोमीटर पर वह नगर है। मेरी दसवीं कक्षा का परिणाम आ चुका है। ग्यारहवीं तथा बारहवीं कक्षा विज्ञान के विषयों के साथ करना चाहता हूँ। इसी कारण मैंने वहाँ के विद्यालय में प्रवेश प्राप्त कर लिया है। दो वर्ष तक मैं वहीं रहकर अध्ययन करूँगा।” केशव ने बंद आँखों से ही सारी बात कह दी।
“केशव, यह सब कब हुआ? कैसे हुआ? तुमने मुझे बताया ही नहीं।”
“बता तो रहा हूँ मैं।” केशव ने आँखें खोल दी।
“अब बता रहे हो? जब कल जाने का समय आ गया है तब तुम मुझे सूचित कर रहे हो? बिना बताए ही चले जाते।” गुल रुष्ट गई।
“शांत हो जाओ गुल। तुमसे मुझे ऐसी प्रतिक्रिया की अपेक्षा न थी।”
“क्यों नहीं थी? क्या मुझे इतना भी अधिकार नहीं कि मैं इस बात पर तुमसे लड सकूँ? रूठ सकूँ?”
“मुझे आश्चर्य हो रहा है कि जो बालिका मृत्यु के भय से विचलित नहीं हो रही है वह मेरे जाने की बात से रुष्ट हो जाती है!”
“केशव मृत्यु और जीवन दो भिन्न अवस्था है। मृत्यु के समय कोई तृष्णा नहीं होती है किंतु मृत्यु से पूर्व जो जीवन है उसमें चंचलता, सुख, दु:ख, भय, काम, क्रोध, मोह, तृष्णा आदि भाव होते हैं। यही तो जीवन है। और मैं अभी जीवित हूँ।”
“गुल, आज मुझे तुम्हारे भिन्न रूप का दर्शन हो रहा है। कितनी परिपक्व हो तुम?”
गुल ने अपने ओष्टों पर मंद हास लाकर प्रतिभाव दिया। उसे देख केशव को कुछ सांत्वना मिली। वह शांत हो गया। कुछ क्षण दोनों मौन बैठकर अवनी पर उतर रहे तमस को देखते रहे। जैसे जैसे प्रकाश अल्प होता गया, वैसे वैसे समुद्र का रंग भी बदलने लगा। गुल के मनोभाव भी बदलने लगे।
“दो वर्ष के अध्ययन के पश्चात क्या योजना है?” गुल ने केशव के दो वर्ष के वियोग को स्वीकार लिया।
“मैं अंतरिक्ष विज्ञान का अध्ययन करना चाहता हूँ।”
“तो अब तुम अंतरिक्ष में जाने की योजना बना रहे हो?”
“मनसा तो यही है।”
“किस ग्रह पर जाओगे?”
“अहम न जानामि।”
केशव के इस उत्तर ने गुल के मुख पर हास उत्पन्न कर दिया। केशव भी हँस पड़ा।
“तुम्हारी अनुमति है मुझे उस मार्ग पर जाने के लिए?”
“जो सब कुछ निश्चित करके आता है वह अनुमति नहीं विदाई माँगता है।”
“गुल।”
“तुम मेरी विदाई मांगने ही आए हो ना, केशव?”
केशव निरुत्तर हो गया। उसके मन में ग्लानि भर आइ जो उसके मुख पर स्वतः प्रकट हो गई। गुल ने उसे देख लिया।
“केशव, जाओ। अपने पथ पर आगे बढ़ो।लक्ष्य को प्राप्त करो। मैं तुम्हें प्रसन्नता से बिदा कर रही हूँ।” गुल खड़ी हो गई और आशीर्वाद मुद्रा में बोली, “तथास्तु।”
गुल की इस चेष्टा से प्रभावित केशव ने गुल के समक्ष अपना शीश झुका दिया, “हे देवी, आपके आशीष सदैव मेरी शक्ति बनी रहे।”
“उठो वत्स। और कहो कि अन्य क्या मनसा है तुम्हारे मन में?” अभिनय करते करते गुल हँस पड़ी।
केशव उठा, “एक और प्रार्थना है देवी से।”
“कहो वत्स।”
“तुम्हारे मुख से पुन: एक बार निर्वाण षट्कम सुनना चाहता हूँ।”
गुल ने अपना ध्यान महादेव की पताका पर केंद्रित किया, आँखें बंद कर ली।
“केशव, तुम भी अपनी आँखें बंद कर शिवजी का ध्यान धरो।” केशव ने गुल की बात का अनुपालन किया। कुछ निमिष पश्चात गुल के मुख से निर्वाण षट्कम का गान होने लगा।
मनो बुद्धि अहंकार ....
.... शिवोहम शिवोहम।
मंत्रों का प्रवाह चलता रहा। केशव उसे ध्यान से सुनता रहा। अनन्य अनुभूति का अनुभव करने लग। जैसे मंत्रों के शब्द किसी प्रवाह का रुप धारण कर उसके तन को स्पर्श करने लगे हो। उस प्रवाह ने केशव को गुल के साथ एक सेतु से जोड़ दिया। उस क्षण केवल वह प्रवाह ही प्रवाहित था। अन्य सब कुछ स्थिर हो गया। समय वहीं ठहर गया। संध्या का प्रकाश

तथा मद्धम तमस गतिहीन हो गए। पवन की लहरें जम गई। समुद्र की जो लहरें तट पर आ गई थी वह सभी पुन: समुद्र के भीतर जाने की चेष्टा ही नहीं कर रही थी। महादेव की पताका भी लहराना भूल गुल के मंत्रों को सुनने लगी। अद्वितीय दिव्य क्षण का निर्माण हो गया।

51

गुल की आँखें बंद थी। मंत्रोच्चार हो रहा था। केशव किसी समाधि में लीन हो गया था। उसे जो अनुभव हो रहा था वह उसने इससे पूर्व कभी नहीं किया था। उस अकथ्य स्थिति में प्रसन्नता थी।
गुल ने अंतिम मंत्र का गान किया-
अहम निर्विकल्पो निराकार रूपो, विभूत्वा च सर्वत्र स्सर्वेंद्रियाणम,
न च संगतर्नेव मुक्ति: न मेय: चिदानंद रूप: शिवोहम शिवोहम।
गुल शिवोहम शिवोहम का जाप किए जा रही थी। सभी दिशाओं से उस ध्वनि की प्रतिध्वनि होने लगी। तट, पानी, समुद्र, समीर सभी एक ही ध्वनि में गा रहे थे - 'शिवोहम शिवोहम...'
गुल ने मंत्र गान सम्पन्न किया। कुछ क्षण वह आँखें बंद कर बैठी रही। उसने जब आँखें खोली तो देखा कि केशव अभी भी ध्यान मग्न था। गुल ने चारों तरफ़ देखा। उसने देखा कि सब कुछ स्थिर सा है। उसने स्थिर खड़े समय की एक क्षण को देखा । वह उसे देखती रही तथा प्रतीक्षा करने लगी कि वह क्षण आगे बढ जाए तथा नूतन क्षण को प्रवेश करने का अवसर मिले। किंतु वह क्षण ने आगे बढ़ने की कोई मनसा प्रकट नहीं की।
चिंतित होकर गुल ने उस क्षण को कहा,"हे समय, तुम इस प्रकार रुको नहीं, गति करो। कालगति को इस प्रकार अवरुद्ध करना उचित नहीं है।"
उस क्षण ने स्मित किया,"गुल, गति करने की इच्छा नहीं है। मैं यहाँ रुक जाना चाहती हूँ।"
"क्यों?"
"तुमने जो अनन्य एवं अद्भुत अनुभूति का सर्जन कर दिया था उस अनुभव में डूबकर ही रहना चाहती हूँ।"
"किंतु अब तो उस सर्जन का विसर्जन हो गया है। कृपया गति करो। समय की आनेवाली क्षण तुम्हारी गति की प्रतीक्षा कर रही है।"
"गति तो करनी ही होगी। कालगति को स्वयं काल की कोई क्षण भी नहीं रोक सकती। मैं गति करती हूँ। किंतु मैं तुम्हारा धन्यवाद करती हूँ कि इस घटना के लिए तुमने मुझे चुना।"
समय की वह क्षण गति कर गई। स्थिर समय पुन: प्रवाहित हो गया। जो कुछ स्थिर था वह सब प्रवाहित होने लगा। कालगति के साथ गति करने लगा।
उस प्रवाह ने केशव की समाधि का भी अंत कर दिया। उसने आँखें खोली। उसके मन में प्रसन्नता थी, मुख पर आभा थी।
"गुल, तुमने इस क्षण को स्मरणीय बना दिया है। इस क्षण को मैं सदैव स्मरण में रखूँगा।"
"ऐसा क्या था उस क्षण में?"
"मैंने उस क्षण को जिया है। यह केवल एक अनुभूति ही नहीं थी, एक अनन्य जीवन भी था। जिस क्षण को हम पूर्ण श्रद्धा से जीते हैं वह क्षण का स्मरण सदैव रहता है। मैं इस क्षण के माध्यम से सदैव तुम्हें मेरे निकट पाता रहूँगा।"
गुल के अधरों पर मंद हास था जिसमें विषाद था।
"अब मुझे चलना चाहिए, गुल।"
केशव ने जाने की चेष्टा की।
"केशव मिठापुर में रहना आवश्यक है क्या? क्या यहाँ से प्रतिदिन आते जाते रहना सम्भव नहीं है? तुम इस गुरुकुल में रहकर भी ....।"
"ऐसा सम्भव हो सकता तो कितना अच्छा होता।"
"वह अध्ययन इतना कठिन है?"
"लक्ष्य कठिन है तो मार्ग कैसे सरल होगा?"
"अर्थात् आज के पश्चात हमारा मिलना कभी नहीं होगा।"
"ऐसा तो मैंने नहीं कहा। हाँ, मिलन दुष्कर अवश्य होगा।"
"वह कैसे?"
"समय समय पर मैं यहाँ आता रहूँगा। तब हम अवश्य मिलेंगे।"
"मैं प्रतीक्षा करूँगी। यही एकमात्र विकल्प शेष है मेरे पास।" गुल ने नि:श्वास के साथ कहा।
केशव ने गुल की आँखों में देखा। वहाँ शब्द थे- हो सके तो रुक जाओ।
केशव ने उसे पढ़ा किंतु उसे माना नहीं। मन ही मन विचार करने लगा, 'गुल, तुम्हारी आँखें मुझे मोह में डाल रही है। बंधन

में डाल रही है। रुक जाने का तुम्हारा या अनुनय, यह आग्रह मैं ठुकरा रहा हूँ। मुझे जाना ही होगा। रुकना मेरी नियति नहीं है। मुझे स्वयं अपनी भावनाओं पर नियंत्रण करना होगा। द्रढ होकर यहाँ से विदा होना होगा।'
केशव ने दृष्टि झुका ली। गुल से दृष्टि मिलाने का साहस नहीं रहा उसमें। वह जाने लगा। समुद्र के तट पर, जाते हुए केशव के पदचिह्न अंकित होने लगे।
उन पदचिह्नों को देखकर गुल स्वगत बोली, "केशव, मुझे ज्ञात है कि प्रतिदिन तुम मेरे जाते हुए पदचिह्नों को देखते रहते थे। समुद्र की तरंगें मेरे उन पदचिन्हों को मिटा देती थी। मैं दूसरे दिन पुन: आती थी। पुन: जाते समय पदचिह्नों को अंकित करती थी। तरंगें उसे पुन: मिटा देती थी।
आज मैं तुम्हारे पदचिह्नों को देख रही हूँ। समुद्र की कोई तरंग आकर अभी उसे मिटा देगी, सदा के लिए। पुन: कब अंकित होंगे तुम्हारे पदचिह्न इस तट पर, यह कोई नहीं जानता। समय की जिस क्षण यह होगा, मुझे उस क्षण की प्रतीक्षा रहेगी। किंतु वह क्षण कब आएगी? अहं ना ज़ानामि।"
केशव दूर जा चुका था। एक तरंग आइ, केशव के पदचिन्हों को मिटा गई, सदा के लिए। एक क्षण के लिए गुल ने आँखें बंद कर ली। पश्चात जब आँखें खोली तो समुद्र पर एक तीव्र दृष्टि डाली। समुद्र ने उस दृष्टि में रहे भावों को पढ़ लिया किंतु वह निर्लेप रहा। बहता रहा। गुल लौट गई। अवनी पर तमस् उतर आया, गहन तमस।

52

समय अपनी गति से प्रवाहित होता रहा। केशव को मिठापुर गए अनेक सप्ताह हो गए। इन दिनों में केशव के जीवन में क्या हुआ होगा उससे गुल अनभिज्ञ थी। वैसे तो गुल के जीवन में जो घटा उससे केशव भी अनभिज्ञ था। वास्तव में दोनों के जीवन में विशेष कुछ नहीं घटा था।
प्रतिदिन प्रातः काल में गुल समुद्र तट पर आती, सूर्योदय को समुद्र की साक्षी में निहारती, कुछ मंत्रों का गान करती, भड़केश्वर महादेव के मंदिर जाती, आरती-पूजा-अर्चना-दर्शन करती घर लौट आती। प्रत्येक दिन उसे मन होता कि गुरुकुल जाकर केशव के विषय में किसी से बात करें, उसके विषय में कोई नूतन समाचार हो तो वह जानें। किंतु प्रत्येक बार वह स्वयं को रोक लेती। गुरुकुल पर दूर से दृष्टि डालकर घर चली जाती। केशव के बिना ही वह समय के प्रवाह में प्रवाहित होती रही, स्थिर सी, निश्चल सी, निर्लेप सी।
इसी अवस्था में एक दिन प्रातः काल समुद्र तट पर समुद्र को कुछ मंत्र सुना रही थी गुल। तब सहसा उसके कान ने एक ध्वनि सुनी।"गुल, गुल।"
मंत्र गाते गाते वह रुक गई। 'कौन है जो मेरा नाम ले रहा है? इस समय किसी का यहाँ होना, मेरा नाम लेना ....।'
उसके विचार को भंग करती हुई वह ध्वनि पुन: सुनाई दी। "गुल, गुल।" गुल ने मुड़कर देखा। सम्मुख केशव खड़ा था। गुल को अपने नयनों पर विश्वास नहीं हुआ। अपनी पलकें तीन चार बार खोली, बंद की। स्वस्थ होकर पुन: देखा। वह केशव ही था। वह सस्मित खड़ा था। दोनों हाथ पीछे छुपाकर रखे थे।
"केशव तुम?" गुल के प्रश्न में प्रसन्नता भी थी, आश्चर्य भी था।
"हाँ गुल। मैं केशव।" वह गुल के समीप आ गया। गुल दो चरण पीछे हट गई।
"गुल, विश्वास करो। मैं केशव ही हूँ।"

गुल ने आँखों के संकेत से केशव का स्वागत किया।
“केशव, कुछ क्षण प्रतीक्षा करो। मैं मेरा नित्य क्रम पूर्ण कर लूँ।”
“तुम विष्णु सहस्त्र का पाठ कर रही हो ना?” गुल ने मौन सम्मति दी। केशव रेत पर बैठ गया। गुल पुन: पाठ करने लगी। केशव उसे ध्यान से सुनने लगा। पाठ समापन के पश्चात गुल ने द्वारिकाधीश की पताका को नमन किया, केशव के समीप बैठ गई।
“कैसे हो केशव? अध्ययन कैसा चल रहा है?”
“सकुशल हूँ। अध्ययन अपनी गति से चल रहा है। तुम कैसी हो? मां तथा पिताजी कैसे हैं?”
“सब कुशल हैं। अध्ययन में मन लग रहा है ना?”
“मैं मन को अन्यत्र भटकने नहीं देता।”
“हाथ पीछे रखकर कुछ छिपा रहे हो। इस प्रकार तुम मेरा मन भटका रहे हो। क्या है हाथों में?”
“इतने दिनों के अध्ययन से मैंने कुछ नया सिखा है वह तुम देखना चाहोगी?”
“अवश्य।”
केशव ने जो छिपाकर रखा था उसे गुल के समक्ष प्रकट कर दिया। एक पारदर्शक थेली को देख गुल ने पूछा, “क्या है इसमें?”
“एक जीवित मेंढक है इसमें।”
“जीवित है तो यह सुषुप्त क्यों है? जीवन के कोई संकेत क्यों नहीं दिख रहे?”
“इसे औषधि से अचेत कर दिया है।”
“इस औषधि के विषय में कुछ दिखाना चाहते हो?”
“नहीं। मैं कुछ अन्य बात दिखाना चाहता हूँ।”
“मुझे इस औषधि के विषय में जानना है।”
“जब किसी व्यक्ति की शल्य क्रिया करते हैं तब उसे अचेत करने हेतु इस औषधि का प्रयोग होता है। व्यक्ति जब अचेत होता है तब उस पर होने वाली शल्य क्रिया की पीड़ा से उसे बचाया जा सकता है।”
“तुम इस मेंढक पर शल्य क्रिया करने वाले हो?”
“हाँ। मैं इसे काटूँगा तथा उसके शरीर का....।”
“मेंढक की शल्य क्रिया क्यों करनी है? किस व्याधि से ग्रस्त है यह? क्या तुम शल्य चिकित्सक बन गए हो? तुम तो अंतरिक्ष विज्ञानी बनने गए थे?”
“मेंढक किसी व्याधि से ग्रस्त नहीं है और ना ही मैं शल्य चिकित्सक बन गया हूँ। अंतरिक्ष विज्ञान ही मेरा लक्ष्य है।”
“तो इस मेंढक को क्यों काटोगे?”
“मैं इसे चिरकर उसकी शरीर रचना तुम्हें दिखाऊँगा।”
“मेंढक के जिस भाग को काटोगे उस भाग को पुन: जोड़ दोगे ना?”
“पुन: जोड़ना मुझे नहीं आता।”
“तो मुझे तुम्हारे इस कार्य में कोई रुचि नहीं है।”
“किंतु एक बार ....।”
“देखो केशव, इस प्रकार तुम एक जीव की हत्या कर रहे हो। यह हिंसा है।”
“हमारे पाठ्यक्रम में जीव विज्ञान का विषय है। उसकी प्रयोगशाला में हमें उसे चिरना होता है।”
“क्यों?”
“यह सिद्ध हो चुका है कि मानव शरीर तथा मेंढक की शरीर रचना में अत्यंत समानता है। अत: यदि मानव शरीर की संरचना को समझना हो तो मेंढक की शरीर रचना का अध्ययन करना आवश्यक है।”
गुल कुछ क्षण विचार में पद गई। पश्चात बोली,“यह तो चित्रों के माध्यम से तथा ऐसे ढाँचे बनाकर भी समझा जा सकता है। इसमें इसे चीरकर मारने की क्या आवश्यकता है?”
“हो तो सकता है किंतु अभी तो यही हमारा पाठ्यक्रम है।चिरना इस लिए भी आवश्यक है कि जब विद्यार्थी आगे चिकित्सा विद्या का अध्ययन करे तब उसके मन में मानव शरीर पर शल्य क्रिया करते समय कोई भय ना हो, संकोच ना हो। उसे मानसिक रूप से तैयार करने के लिए ही यह सारा उद्यम होता है।”
“ऐसा पाठ्यक्रम रचने वाले महामूर्ख हैं, केशव। उसका अनुसरण करने वाले उससे भी बड़े मूर्ख हैं।तुम्हारी यह शिक्षा प्रणाली ही मूर्खता से पूर्ण है।और तुम भी उन मूर्खों की टोली में जा मिले हो केशव।”
“गुल, क्या कह रही हो? मैं मूर्ख हूँ?”
“हाँ। शत प्रतिशत मूर्ख हो तुम।”
“गुल, तुम मुझसे लड़ाई करने का मन बना चुकी हो क्या?”

क्षणभर मौन के पश्चात् स्मित के साथ गुल ने उत्तर दिया, “मूर्ख से लड़ाई क्या करनी? मैं तो केशव से मिलना चाहती थी किंतु केशव के स्थान पर कोई …।”
“गुल, स्पष्ट रूप से कहो कि तुम चाहती क्या हो?”
“यह बताओ कि क्या तुम अभी भी प्रतिदिन त्रिकाल संध्या करते हो?”
“हाँ। कितनी भी व्यस्तता होने पर भी मैंने उस क्रम को बनाए रखा है।”
“क्यों करते हो?”
“मेरी अटूट, अड़ग श्रद्धा एवं आस्था है उस कार्य में।”
“इस आस्था का कोई विशेष कारण?”
“उससे मुझे दिनभर की ऊर्जा प्राप्त होती है। यही सत्य है।”
“तो सत्य कहने का साहस क्यों नहीं है तुम में?”
“कौन सा सत्य? कैसा सत्य?”
“ओह। तो तुम्हें मुझे यह भी बताना पड़ेगा कि सत्य क्या है? सत्य कहने से पूर्व सत्य जानना, सत्य को समझना तथा सत्य का स्वीकार करना आवश्यक होता है। इसके लिए सत्य कहने से भी अधिक साहस चाहिए। सत्य यह है कि तुम किसी को बदलकर स्वयं बदल गए हो। किसी को मार्ग दिखाकर स्वयं भटक गए हो। इस सत्य को स्वीकार करने का साहस है तुम में?”
“है मुझ में इतना साहस। कहो जो कहना है।”
“क्या तुम चिकित्सक बनना चाहोगे?”
“नहीं।”
“तुम्हारी कक्षा में कितने विद्यार्थी हैं?”
“मेरी कक्षा में साथ विद्यार्थी हैं। किंतु यह कैसे सवाल, कैसी बातें कर रही हो तुम?”
“क्या साठ के साठ विद्यार्थी चिकित्सा अभ्यासक्रम में प्रवेश पा लेंगे?”
“नहीं अधिक से अधिक पाँच से सात विद्यार्थी सफल होंगे।”
“उन पांच सात में से कितने शल्य चिकित्सक बन पाएँगे?”
“कदाचित एक दो।”
“अर्थात् प्रति वर्ष तीन सौ मेंढक के वध के पश्चात केवल एक दो ही शल्य चिकित्सक मिलेंगे हमें। इन एक दो के लिए तीन सौ निर्दोष मेंढकों का वध क्यूँ? क्या इस सत्य को तुम देख सकते हो? समज सकते हो? स्वीकार कर सकते हो? इस प्रथा का विरोध कर सकते हो?”
गुल रुक गई। केशव गुल के एक एक शब्दों पर गहन विचार करने लगा।
“केशव, तुम्हारी स्मरण शक्ति क्षीण हो गई है। मैं तुम्हें स्मरण करवाती हूँ उस क्षण का जब तुमने ही मेरे पिताजी को मत्स्य आखेट से मुक्त करवाया था। स्मरण है तुम्हें?”
“गुल, तुम्हारी बातों को मैं भली भाँति समज गया हूँ। तुम्हारे इस तर्क पर, इस विचार पर मैंने कभी विचार ही नहीं किया। अन्य किसी ने भी नहीं किया। हमारी शिक्षा प्रणाली ने हमें तर्क करने से ही विमुख कर दिया है। किंतु मैं अब से मेंढकों की हत्या नहीं करूँगा, ना ही किसी को करने दूँगा।”
केशव ने अचेत पड़े मेंढक को मुक्त कर दिया, वहीं तट पर छोड दिया।
“यह क्या कर रहे हो तुम मेंढक के साथ?”
“इसे मुक्त कर रहा हूँ, जीवन दान दे रहा हूँ।”
“नहीं। इस अवस्था में तुम उसे मरने के लिए छोड़ दे रहे हो। इसे इस प्रकार पड़ा देखकर कोई भी प्राणी इसका आखेट कर देगा।”
“तो इसे समुद्र में प्रवाहित कर देता हूँ।”
“केशव, समुद्र का जल खारा होता है। मेंढक मीठे जल का जीव है।”
“कितना गहन, कितना सूक्ष्म विचार करती हो तुम गुल? मुझे इसे किसी मीठे पानी के तालाब में अथवा कुंड में छोड़ देना चाहिए।”
गुल ने सम्मति प्रदान की। दोनों मौन हो गए। समय के व्यतीत होने पर केशव लौट गया। गुल उसके पदचिन्हों को देखती रही। समुद्र की तरंगों ने उसे भी मिटा दिए।

53

गुल के घर पर कुछ मज़हबी लोग आए हुए थे। सभी के मुख पर कड़ी रेखाएँ थी। मां, पिता तथा गुल कक्ष के एक कोने में खड़े थे। मां के मुख पर भीती थी। पिता शांत थे, स्वस्थ थे। गुल सभी के मुख देखकर स्थिति को समझने का प्रयास कर रही थी।
कुछ समय के मौन के पश्चात आगंतुकों में से एक ने कहा, "गुल को मदरसा से निकाल दिया गया है। अब वह मदरसा में पढ़ाई नहीं कर सकती।" उसने एक पत्र गुल के पिता को दिया। उसने उसे पढ़े बिना ही अपने पास रख लिया।
"ऐसा क्यों किया?" भय के साथ मां ने पूछा।
"गुल काफिरों के साथ रहकर काफिर होती जा रही है।"
"ऐसा क्या कर दिया हमारी गुल ने?"
"वह इतनी बड़ी हो चुकी है कि उसे अब हिजाब पहनना पड़ेगा। काफिरों से मिलना बंद करना पड़ेगा। किंतु आपकी बेटी यह दोनों बातों को नहीं मान रही है। वह काफिर हो गई है। काफिरों का मदरसा में कोई स्थान नहीं होता।"
मां ने पिता की तरफ़ चिंतित दृष्टि से देखा।उसके मुख पर चिंता के कोई भाव नहीं थे।
उस व्यक्ति ने आगे कहा -
"अभी तो मदरसा से निकाली जा रही है। आगे यदि गुल काफिरों केज्ञान कोपढ़ती रही तो ...।"

“मदरसा में नहीं पढ़ सकती तो क्या हुआ? वह गुरुकुल में ....।”
“यदि ऐसा हुआ तो कुछ भी हो सकता है।” कहते हुए वह उठा। बाक़ी सभी भी उठकर चलने लगे।
जाते जाते उसने जो कहा ‘कुछ भी’ का अर्थ गुल के पिता भली भाँति जानते थे, समजते भी थे। किंतु गुल की मां ने पूछ लिया, “यह ‘कुछ भी’ का क्या अर्थ होता है?”
“अर्थात् हमें जाना होगा।”
“क्या हमें हमारे मज़हब से निकाल देंगें? तो हम कहाँ जाएँगे?”
“इस्लाम में कभी किसी को मज़हब से निकाला नहीं जाता।”
“तो?”
“जीवन से निकाल दिया जाता है।”
“यह कहकर पिता घर से बाहर चले गए। मां सम्भावित मृत्यु के विषय में विचार करने लगी। ऐसी स्थिति में वह स्वयं को कैसे सम्भालेगी उसकी योजना बनाने लगी। उसने योजना बना ली। गुल मां के बदलते भावों को देखती हुई बाहर चली गई। बाहर पिताजी अकेले ही थे, टोली जा चुकी थी।
“मदरसा की परम्परागत शिक्षा में वैसे भी मेरी रुचि नहीं थी। अच्छा हुआ कि वह स्वयं छूट गई।”
“तुम्हारी रुचि क़िस में है, गुल?”
“मैं शास्त्रों का अध्ययन करना चाहती हूँ। क्या आप मेरे लिए गुरुकुल में प्रवेश ....?”
“मैं प्रयास करूँगा।” गुल पिताजी से लिपट गई।

****

“गुल, तुम गुरुकुल में पढ़ाई कर सकती हो। तुम जब चाहो, जो चाहो पढ़ सकती हो। गुरुकुल के पुस्तकालय से अध्ययन हेतु किसी भी पुस्तक ले सकती हो। किसी भी शिक्षक से ज्ञान प्राप्त कर सकती हो। प्रधान आचार्य से भी प्रश्न पूछ सकती हो।” गुल के पिता ने घर आते ही कहा।
“तो मैं अभी चलती हूँ गुरुकुल।”
“रुको तो। अभी रात्रि ढल चुकी है।प्रातः काल चले जाना।”
गुल रुक गई। रात्रिभर प्रसन्नता से प्रातः काल की प्रतीक्षा करने लगी।घर के किसी कोने में मां यह सुनकर विषाद में डूब गई।

54

गुल गुरुकुल में अध्ययन करने लगी। अनेक दिन व्यतीत हो गए। मुल्लाओं की तरफ़ से कोई प्रतिक्रिया नहीं आइ। गुल अनेक ग्रंथों का अध्ययन करने लगी। किंतु उसकी अधिक रुचि श्रीमद् भगवद गीता में थी। समुद्र के तट पर बैठकर वह गुरुकुल में सीखे विषयों का पाठ करती, गीता के श्लोकों का पठन करती, उसके अर्थों को समझती। यह सब वह समुद्र को सुनाती।उसे सुनकर समुद्र तरंगित हो जाता तथा गुल के समीप गुल के मुख से श्लोकों को सुनने आ जाता, विशिष्ट गर्जना से संगीत का सर्जन करता। जैसे किसी गायक के गान के साथ कोई संगीतकार अनेक वाद्यों से गान के अनुरूप मधुर संगीत बजा रहा हो।गुल के गान को सुनकर समुद्र प्रसन्न हो जाता तो समुद्र के संगीत को सुनकर गुल प्रसन्न हो जाती।
ऐसे ही किसी दिन संध्या से पूर्व गुल समुद्र के सम्मुख गीता के श्लोकों को पढ़ रही थी। समुद्र अपने परिचित सुमधुर संगीत से गुल का साथ दे रहा था तभी गुल के कानों में समुद्र के संगीत के उपरांत अन्य कोई संगीत के स्वर गूंजने लगे।
प्रथम तो उसने उस पर ध्यान नहीं दिया किंतु वह स्वर अविरत रूप से गुल के श्लोकों के साथ, समुद्र की संगीतमय ध्वनि के साथ सुर मिलाता हुआ बज रहा था। इस नए सुर से गुल का ध्यान भंग हो गया। उसने गान बंद कर उस ध्वनि पर ध्यान केंद्रित किया।
‘यह ध्वनि, यह सुर कैसा है? समुद्र की ध्वनि से भिन्न है। यदि समुद्र इस संगीत को सुना रहा है तो आश्चर्य की बात है क्यों कि समुद्र ने आज तक यह सुर कभी नहीं सुनाया।’
‘गुल, ऐसा तो नहीं कि समुद्र ने आज नूतन सुरों का सर्जन किया हो, तुम्हें साथ देने हेतु।’
‘ऐसा सम्भव हो सकता है।’
गुल ने समुद्र की तरंगों से उठते स्वरों को ध्यान से सुना। समुद्र वही सुर, वही धुन, वही संगीत सुना रहा था। कोई नूतन स्वर नहीं लगे थे उसमें।
‘नहीं। यह ध्वनि समुद्र के संगीत से भिन्न है। उसका सर्जन भी किसी अन्य बिंदु से हो रहा है।’ धीरे धीरे वह ध्वनि गुल के समीप आने लगा।
‘यह ध्वनि कोई एक बिंदु पर स्थिर नहीं है, मेरे निकट भी आ रहा है। मुझे मुड़कर देखना होगा कि यह कहाँ …।’
वह मूडी , ध्वनि बंद हो गया। किंतु वह चकित रह गई। उसके सम्मुख केशव खड़ा था।
“केशव, तुम? कब आए?” प्रसन्नता से गुल विह्वल हो गई।
केशव ने उत्तर में स्मित को अपने ओष्ठों पर धारण कर लिया। उस स्मित को देख गुल विचार में पड गई,
’क्या यह वही स्मित है जो सदैव कृष्ण के होंठों पर रहता है? क्या कहते हैं इस स्मित को? भुवनमोहिनी स्मित।हाँ वही, भुवनमोहिनी स्मित।’ गुल के अधरों पर भी स्मित आ गया।
“गुल, तुम्हारे मुख पर उभरी प्रसन्नता को देख रहा हूँ। कोई विशेष बात है क्या?”
“प्रसन्नता? वह तो …।” गुल को कोई उत्तर नहीं सूझा।
“गुल, इस क्षण इस तट पर क्या कर रही हो?”
“मैं? मैं तो, वह मैं अभी नहीं बताऊँगी। प्रथम तुम कहो कि तुम बिना सूचना के यहाँ कैसे? तुम्हारा अध्ययन कैसे चल रहा है? तुम…।”

“सब कुछ कुशल है। अब अन्य कोई प्रश्न नहीं।अब मेरे प्रश्न का उत्तर दो।”
“मैं इस तट पर गीताजी के श्लोकों का पठन कर समुद्र को सुना रही थी। मेरी अल्पमति अनुसार श्लोकों का अर्थ, मर्म, तात्पर्य आदि समुद्र को सुना रही थी।”
“वाह गुल। यह तो अनूठी बात है।”
“सो तो है। मैं तो यह प्रतिदिन करती हूँ, इसी समय, इसी स्थान पर।”
“ऐसा करने का विचार तुम्हें कैसे आता है? कौन प्रेरित करता है तुम्हें यह सब करने को?”
“मेरी प्रेरणा सदैव महादेव ही रहे हैं। किंतु जब मैं गीताजी के श्लोकों को पढ़ती हूँ तो स्वयं कृष्ण मुझे प्रेरित करते हैं।”
“अद्भुत कार्य कर रही हो तुम।”
“मैं कहाँ कुछ करती हूँ? मेरे माध्यम से कोई यह कर रहा है। मैं तो केवल साधन मात्र हूँ।”
“कौन है वह?”
“कृष्ण के अतिरिक्त ऐसा कौन कर सकता है? सर्व कर्म तो उसके अधीन हैं।”
“अर्थात् तुमने भगवद गीता को आत्मसात् कर लिया है।”
“वह मैं नहीं जानती। मैं तो बस मेरी प्रसन्नता हेतु जो उचित लगे वह कर रही हूँ।”
“गुल, तुमने कहा कि तुम यह सब समुद्र को सुनाती हो।”
“हाँ। क्यों?”
“तो क्या वह सुनता भी है?”
“ऐसा संदेह क्यों?”
“समुद्र तो सदैव अविरत रूप से अपनी ही ध्वनि, नहीं, कोलाहल करता रहता है। जो स्वयं कोलाहल करता रहता हो, सदा चंचल हो वह तुम्हारी वाणी को कैसे सुनेगा? क्यों सुनेगा?”
“तुम्हारे इस क्यों का उत्तर मेरे पास नहीं है। किंतु समुद्र मेरी बात अवश्य सुनता है। मैं बस इतना जानती हूँ।”
“अच्छा?” केशव के इस शब्द में कटाक्ष था।
“तुम्हें विश्वास नहीं है ना केशव?”
“मुझे विश्वास है, पूर्ण विश्वास है।”
“तो संदेह क्यों कर रहे हो?”
“अरे, तुम तो रूठ गई। चलो मैं मेरा संदेह स्वयं निरस्त कर देता हूँ।”
गुल हंस पड़ी।
“गुल, तुम जब समुद्र को यह सब सुनाती हो तब समुद्र का वर्तन, समुद्र का व्यवहार कैसा रहता है?”
केशव के इस प्रश्न से गुल दुविधा में पड गई।
‘उस समय समुद्र कैसा व्यवहार करता होगा? उस समय वह तो सुमधुर संगीत के स्वरों का सर्जन करता है किंतु उसका व्यवहार?’
“केशव, समुद्र का व्यवहार? यह कैसा विचित्र प्रश्न है? वह समुद्र है मनुष्य नहीं कि जिनके मुख पर भाव प्रकट हो और हम उससे उसका व्यवहार जान सकें।”
“तो क्या? माना कि वह मनुष्य नहीं है, उसका मुख नहीं है। तथापि हम जान सकते हैं कि उसका व्यवहार कैसा है।”
“वह कैसे?”
“तुम पुन: तुम्हारी बात समुद्र को सुनाओ, इसी क्षण। हम देख लेंगें कि वह कैसी प्रतिक्रिया देता है।”
“इस क्षण? पुन:?”
“कोई समस्या है?”
“गीता गान में तो कोई समस्या नहीं है किंतु मैं जब गीता गान करती हूँ तब मेरी आँखें बंद रखती हूँ।बंद आँखों से मैं समुद्र को कैसे देख पाऊँगी?”
“कोई बात नहीं। तुम आँखें बंद रखना और मैं खुली आँख से देखता रहूँगा। तुम बंद आँखों से समुद्र की ध्वनि सुनती रहना।”
“समुद्र मेरे गान के अनुरूप अपनी नियमित ध्वनि के उपरांत संगीत की ध्वनि का सर्जन करता है। मैं उसे नियमित रूप से सुनती हूँ।”
“मुझे वही संगीत सुनना है, गुल।”
“किंतु आ... ज..।”
“क्या हुआ ? क्या उसने आज संगीत सर्जन नहीं किया?”
“आज समुद्र के संगीत के साथ साथ कुछ अन्य सुर भी मुझे सुनाई दिए।”
“कैसे सुर?”

“बांसुरी के सुर हो जैसे।सुमधुर, सुंदर, मोहक सुर। समुद्र के संगीत के साथ मिश्र हो गए थे वह सुर। जैसे समुद्र के संगीत की अपूर्णता को पूर्ण कर रहे हो। उन सुरों ने मेरे मन को भटका दिया है।”
“सुर सुंदर थे तो मन भटक कैसे गया, गुल?”
“मोह। मोह ही है मन के भटकने का कारण। उन सुरों की मोहकता ने ही मन को भटका दिया। मैं आँखें खोल बैठी। उन सुरों को खोजने के लिए मुड़कर देखा तो तुम्हें मेरे समक्ष पाया। जैसे मैंने आँखें खोली वैसे ही वह स्वर, वह सुर बंद हो गए। जैसे कहीं विलीन हो गए, लुप्त हो गए। समुद्र का संगीत भी छूट गया। यह सब क्या है केशव? यह कैसा मोह है? यह कैसा भ्रम है?”
“तुम्हारे सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाएँगे।”
“कैसे? केशव कैसे?”
“जहां से प्रश्न उठे हैं वही से उनके उत्तर भी जन्म लेंगें।”
“कब?”
“तुम बस आँखें बंद कर नित्य क्रमानुसार गीता का पठन करो, उसके मर्म को कहो। समुद्र सुनेगा, समुद्र ही उत्तर देगा।”
“किंतु अब मुझसे यह नहीं हो पाएगा। क्यों की मेरे मन में अब यह जागृति भी प्रकट हो चुकी है कि समुद्र के उपरांत भी कोई यहाँ उपस्थित है जो मेरे गान को, मेरे शब्दों को सुनेगा। यह जागृति ही मन को अस्थिर बना देगी, भटका देगी।”
“अर्थात् तुम्हें मेरी उपस्थिति का विचार विचलित कर देगा।”
“हाँ केशव।”
“तो लो मैं चला जाता हूँ। तुम बिना भटके समुद्र को सुनाओ जो कुछ तुम सुनाना चाहती हो।”
केशव जाने लगा। गुल चाहते हुए भी उसे रोक नहीं सकी। केशव चला गया।
गुल मन ही मन स्वयं को दोष देने लगी।
‘कितने लम्बे अंतराल के पश्चात केशव आया था, मुझे मिलने आया था। मैं हूँ कि उसे चले जाने पर विवश कर बैठी। वह तो चला गया। कितनी बातें करनी थी मुझे उससे। कितनी बातें उसे भी तो करनी होगी मुझसे। ना जाने कितनी बातें रह गई अनकही सी।वह चला गया, मेरे कारण। कुछ भी ना हो सका, मेरे कारण।मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था।आज मन इतना विचलित क्यों हो गया? मैं ही दोषी हूँ इसके लिए।’
गुल का मन विलाप करने लगा। उसने स्वस्थ होने का प्रयास किया।अन्तत: वह शांत हो गई। विचारों को विराम दे दिया। आँखें बंद कर जाप करने लगी।
“हरे कृष्ण, हरे कृष्ण।”

55

दूसरे दिन गुल ने निश्चय कर लिया कि वह अब किसी भी स्वर पर, किसी भी सुर पर तथा किसी भी ध्वनि पर विचलित नहीं होगी। वह अपना गीता गान पूर्ण करेगी। उससे पूर्व वह आँखें नहीं खोलेगी।
उसने श्री कृष्ण का ध्यान धरा, गीता गान प्रारम्भ कर दिया। उसके मुख से श्लोकों का प्रवाह बहने लगा। उसे सुनने के लिए समुद्र अपनी तरंगों के माध्यम से गुल के सम्मुख आने लगा। समुद्र पुन: सुमधुर संगीत का सर्जन करने लगा। गुल बोल रही थी-
सर्व धर्मान परित्यजय, मामेकम शरणम ब्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिश्यामि, मा शुच:।।
शब्द एवं संगीत का अनुपम मिलन हो रहा था। शब्दों का सर्जन गुल कर रही थी । संगीत का सर्जन कर रहा था समुद्र। कुछ क्षण व्यतीत होते ही इन स्वरों के साथ एक और स्वर जुड़ गया। बांसुरी का सुर। गुल का ध्यान उस सुर पर गया। वह सुर मधुर थे। उसमें लय था, ताल था। गीत संगीत के युग्म में यह सुर भी घुल गया। उस युग्म को अधिक मोहक बनाने लगा। गुल नए सुरों से विचलित हुए बिना उसे सुनती रही। गुल के शब्द, समुद्र का संगीत और बांसुरी के सुर। अनूठा त्रिवेणी संगम !
समय पर गुल ने अपना गीता ज्ञान, गीत गान सम्पन्न किया। समुद्र का संगीत रुक गया। किंतु बांसुरी के सुर अभी भी बह रहे थे। गुल ने उस पर ध्यान केंद्रित किया।
'सभी सुर शांत हो गए हैं किंतु बांसुरी की धुन अभी भी सुनाई दे रही है। अर्थात् यह सुर समुद्र की ध्वनि के नहीं है किंतु अन्य कोई इसका सर्जन कर रहा है। कौन है जो इसे आज भी उत्पन्न कर रहा है?'
जिज्ञासावश गुल ने आँखें खोली और दाहिनी तरफ़ देखा जहां से यह सुर आ रहे थे। वह चकित रह गई।
वहाँ अपने अधरों पर बांसुरी लगाए केशव खड़ा था। केशव आँखें बंद कर बांसुरी बजा रहा था।
गुल उन सुरों को सुनने लगी, उसके मोह में बंधने लगी।उसकी आँखें अनायास ही बंद हो गई। अब उसे केवल बांसुरी के सुर ही सुनाई दे रहे थे जो उसे कहीं खिंचकर ले जा रहे थे। वह उन सुरों के साथ खिंचती चली गई। उसे जो अनुभव हो रहा था वह उसके भीतर प्रसन्नता भर रहा था किंतु क्या है वह उसे समज नहीं रही थी। उसने उसे समजने का प्रयास, समजने का विचार त्याग दिया। वह बस उस अनुभूति में लीन हो गई।
समय के एक बिंदु पर केशव ने बांसुरी को विराम दिया। सभी सुर शांत हो गए। केशव ने आँखें खोली, अधरों से बांसुरी को पृथक किया, हथेलियों पर बांसुरी रखकर उसे नमन किया।
इसी अवधि में गुल की तंद्रा भी टूटी, उसने भी आँखें खोली। बांसुरी को नमन करते हुए केशव को उसने देखा। दोनों ने परस्पर देखा। किसी ने कुछ नहीं कहा किंतु दोनों के मध्य एक संवाद हो गया जिसमें दोनों के प्रश्नों के उत्तर थे। दोनों प्रसन्न थे। दोनों एक साथ समुद्र की रेत पर समुद्र के सम्मुख बैठ गए।
क्षितिज में आदित्य पृथ्वी से विदाय ले रहा था। समुद्र के प्रति गति कर रहा था। दोनों उस दृश्य को देखते रहे। दोनों में से किसी को शब्दों की आवश्यकता नहीं थी किंतु संवाद होता रहा। सूर्य चला गया। गुल उठी, केशव भी उठा। दोनोंने परस्पर

आँखों में देखा और अपने अपने पथ पर चले गए। अवनी पर रात्रि के आगमन की क्षण आ गई।

अवनी पर प्रत्येक संध्या के पश्चात् तमस् उतर आता है। अनेक ऐसी संध्याओं के पश्चात एक संध्या आइ जो कुछ विशिष्ट थी। सूर्य अभी अभी अस्त हुआ था। समुद्र के ऊपर गगन को जाते हुए सूर्य ने अपनी लालिमा से भर दिया था। उसे देख गुल प्रसन्न हो रही थी। उसके दर्शन से उसे कैवल्य का स्मरण हो आया। वह लालिमा उसे अपने प्रति आकर्षित कर रही थी। उसे लगा जैसे वैकुंठ लोक से उसे कोई पुकार रहा है। उसके मन में विचारों का प्रवाह बहने लगा, 'कैवल्य तो मोक्ष का नाम है।मोक्ष मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होती है। यह लालिमा मुझे आज वैराग्य की अनुभूति क्यों करा रहा है? ऐसी लालिमा को मैं सदैव देखती हूँ किंतु आज की लालिमा का दर्शन कुछ भिन्न है, अनन्य है। इस अल्प आयु में मुझे मोक्ष का आकर्षण क्यों हो रहा है? क्या समय आ गया है इस संसार को, इस पार्थिव शरीर को त्यागने का? आज मेरे साथ यह क्या हो रहा है?'
'गुल तुम कई दिनों से वेदांग को पढ़ रही हो। कैवल्य को पढ़ रही हो। उस पर अधिक विचार कर रही हो। जिस विषय में हम अधिक विचार करते हैं वह हमारे चित्त पर प्रभाव डालता है। बस यही कारण है। तुम निश्चिंत रहो, तुम्हारे मोक्ष का समय अभी नहीं आया है।'
'तो क्या यह सब भ्रम है?'
'ब्रह्म को जान लो, ब्रह्म के शरण में जाओ। सभी भ्रम नष्ट हो जाएँगे। मृत्यु का नहीं जीवन का विचार करो।'
कुछ सीमा तक गुल ने अपने विचारों को त्याग दिया। वह आश्वस्त हो गई। उसने समुद्र के ऊपर व्याप्त नभ पर दृष्टि डाली।वहाँ लालिमा खंडित हो गई थी, लुप्त होने लगी थी। गुल के मन से भी विचार लुप्त हो गए थे। वह घर जाने लगी। जाते जाते उसने पुन: नभ को देखा। वहाँ लालिमा नहीं थी किंतु कालिमा के आगमन के संकेत थे। वह पुन: भय से ग्रस्त हो गई। उसने कृष्ण का, महादेव का स्मरण किया। घर चली गई।
घर के आस पास शून्यता व्याप्त थी। घर के बाहर मज़हब के कुछ लोग खड़े थे। सभी के मुख पर कड़ी रखाएँ थी। उनके हाथों में शस्त्र थे। ख़ंजर, तलवार, लाठी तथा एक के हाथ में रिवोल्वर भी थी। गुल ने घर की तरफ़ देखा। द्वार बंद था। खिड़की भी बंद थी। गुल सचेत हो गई, किसी चट्टान के पीछे छुपने लगी। किंतु उन लोगों में से किसी ने उसे देख लिया। वह चिल्लाया, "वह लड़की वहाँ है।" सबकी आँखें गुल की तरफ़ मूडी। क्षणभर में गुल ने स्थिति को समजा और दौड़ पड़ी समुद्र की तरफ़। वह लोग गुल के पीछे दौड़े।
गुल तीव्र गति से समुद्र की तरफ़ दौड़ रही थी। उसके मन में कोई योजना नहीं थी कि वह क्या करेगी? कैसे बचेगी? वह बस दौड़े जा रही थी। वह लोग भी पीछे दौड़ रहे थे किंतु गुल की गति उन लोगों की गति से अधिक तीव्र थी। गुल उन लोगों से दुर निकल गई।
उन लोगों के घर से हटते ही गुल के पिता ने द्वार खोला। गुल की माँ की तरफ़ देखा, संकेतों में कुछ कहा जिसकी उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।वह समुद्र की तरफ़ दौड़े। माँ उसके पीछे नहीं गई।उस पर एक दृष्टि डालकर, उसे वहीं छोड़कर वह तीव्र गति से भागे।उसने गुल का पीछा करते हुए लोगों को पूरी शक्ति से ललकारा।
कुछ लोग रुके, मुड़े और गुल के पिता की ललकार का उत्तर देने उस तरफ़ बढ़े। बाक़ी अभी भी गुल का पीछा कर रहे थे। गुल कहीं दूर निकल चुकी थी। वह भड़केश्वर मंदिर की तरफ़ गई और बहते सागर में कूद गई। तैरती हुई समुद्र की कन्दराओं की तरफ़ जाने लगी।पीछा कर रहे कुछ लोग भी समुद्र में कूद पड़े। गुल ने उनको देखा। गुल ने समुद्र के भीतर डुबकी लगाई। उन लोगों ने यह देखा। वह लोग उस दिशा में तैरने लगे।गुल ने जिस बिंदु पर डुबकी लगाई थी उस स्थान को उन्होंने घेर लिया।
"अब गुल बचकर नहीं जा सकती।" कोई बोला। गुल के पानी से बाहर आने की प्रतीक्षा करने लगे। "कब तक पानी में रहेगी? अभी बाहर आते ही ....।"
अधिक समय के उपरांत भी गुल पानी से बाहर नहीं आइ। सब तरफ़ देखा उन्होंने किंतु गुल कहीं नहीं दिखाई दी।
"कहाँ चली गई? यहीं कहीं होगी।चलो पुन: खोजो।" सबने डुबकी लगाई किंतु गुल कहीं नहीं दिखी। अत्यंत प्रयास के उपरांत भी गुल ना मिली तो हारकर सब लौट गए।
गुल के पिता के पीछे कुछ लोग भागे। गुल के पिता ने उन लोगों का प्रतिकार करने का प्रयास किया। स्वयं को बचाते बचाते वह घायल हो गए। शक्ति क्षीण होने लगी। तथापि वह लड़ते रहे। अन्तत: वह थक गए। स्वयं को बचाने के अंतिम प्रयास के रूप में वह समुद्र की तरफ़ दौड़े, भीतर कूद गए। वह लोग भी भीतर कूदे। वह उन लोगों से दुर रहने का प्रयास करते रहे किंतु वह लोग अधिक से अधिक समीप आते गए। वह उन लोगों से घिर गए। प्रतिरोध का अंतिम प्रयास करते हुए वह समुद्र के अधिक भीतर गए।वह उन लोगों से दूर निकल गए। उन लोगों का वहाँ पहुँचना सम्भव नहीं रहा तो किसी ने उसे गोली मार दी।
धड़ाम ....
धड़ाम ....

धड़ाम.....
गोली की ध्वनि प्रतिध्वनि समुद्र पर व्याप गई। दूर कहीं गुल ने भी उसे सुना। वह वहीं बैठ गई।समुद्र के पानी पर लालिमा प्रसर गई। वैसी ही लालिमा जो कुछ समय पूर्व गुल ने पश्चिम आकाश में देखी थी। गुल ने आकाश को देखा। वहाँ अब कालिमा का साम्राज्य था। वह जहां थी वहीं बैठ गई। भय से ग्रस्त हो गई। उसे रुदन करने का मन हुआ, खूब रुदन करने का मन, पूरी तीव्रता से रुदन करने का मन। किसी प्रकार उसने अपने मन को रोका। मौन अश्रु स्वतः बहने लगे। वह अश्रु समुद्र में मिलने लगे।
समुद्र!
वह उसी निर्लेपता को ओढ़े बह रहा था, गर्जन कर रहा था। गुल के दुःख से, गुल के अश्रुओं से, गुल के पिता के रक्त से, उसके स्तर पर व्याप्त लालिमा से, आकाश में छाई कालिमा से वह अल्पमात्रा में भी प्रभावित नहीं हुआ, विचलित नहीं हुआ। समुद्र के इस रूप को देखकर गुल को क्रोध आया। एक मुष्टि प्रहार कर दिया समुद्र पर। समुद्र अभी भी निर्लेप था, स्थितप्रज्ञ था। गुल वहीं रुक गई। रात्रि के व्यतीत होने की प्रतीक्षा करने लगी।
वह टोली गुल के घर लौटी। गुल की माँ वहीं प्रतीक्षारत खड़ी थी। गोलियों की ध्वनि उसने भी सुनी थी। उसे पूरा विश्वास था कि उसके पति को इन लोगों ने मार दिया है। टोली में से किसी ने इस बात की पुष्टि के संकेत दिए। गुल की माँ को अब कोई संदेह नहीं रहा। उसने पूछा, “और गुल?”
“वह समुद्र में डूब गई।” उत्तर सुन उसने संतोष की गहन साँस ली। उसने संकेत दिया और गुल की माँ उसके साथ चल पड़ी।
“मैं तुम्हारी चौथी बीवी बनने को तैयार हूँ।”
गुल का घर अब मौन हो गया।

57

रात्रि अपनी गति से व्यतीत हो गई। नूतन सूर्योदय हुआ। रात्रि भर गुल के पिता के मृत शरीर को अपने भीतर रखे हुए समुद्र ने प्रातः होते ही तट पर छोड़ दिया। समुद्र तट पर शव मिला है -यह सूचना समग्र द्वारका नगरी में प्रसर गई। आरक्षकों ने आकर उचित कार्यवाही कर मृत शरीर को गुरुकुल को सौंप दिया।
गुल की कोई सूचना नहीं मिली। ना ही उसका शव मिला। उसके सम्भवित शव को खोजने का प्रशासन ने पूर्ण प्रयास किया किंतु ना तो गुल के शव को, ना ही जीवित गुल को खोज पाए। ना ही उसके विषय में कोई सूचना।
गुरुकुल ने गुल के पिता का विधि विधान से अंतिम संस्कार किया।समग्र घटना से गुरुकुल नि:स्तब्ध था। सभी गुल के लिए चिंतित थे, प्राचार्य विशेष रूप से। उसने चर्चा हेतु साथी आचार्यों तथा विद्यार्थियों को एकत्रित किया।
“जो कुछ हुआ वह अत्यंत क्रूर, घृणाजनक एवं दु:खद है। किंतु उससे भी अधिक गुल का न मिलना अत्यंत गहरे विषाद का विषय है। चिंता का भी विषय है। इस स्थिति में हमें ...।”
“हमें केशव को इस घटना के विषय में सूचित करना चाहिए। उसे यहाँ बुला लेना चाहिए।” किसी ने प्राचार्य की बात काट दी। अनेक ध्वनियों ने उसका समर्थन किया। प्राचार्य ने संकेत दिया, सभी शांत हो गए।
“यह विचार मेरे मन में भी उठा था। किंतु आप सब को विदित है कि चार दिन पश्चात् केशव को मुंबई नगरी में उच्च अध्ययन हेतु जाना है। वह उसकी सज्जता में व्यस्त है। यदि इस समय उसे इस बात की सूचना मिलेगी तो वह सब कुछ छोड़कर यहाँ आ जाएगा और उच्च शिक्षा का विचार ही त्याग देगा। हम ऐसा नहीं कर सकते, ना ही करना चाहिए।”
“किंतु मुंबई प्रस्थान से पूर्व केशव गुल से मिलने यहाँ आएगा। तब हम क्या करेंगे? क्या कहेंगे? तब उसे इस घटना का ज्ञान होगा तब क्या होगा?”
“यही तो समस्या है और उसका उपाय मुझे नहीं सुझ रहा। आप सब बताएँ कि इस समय हमें क्या करना चाहिए।”
“तीन दिवस बीत गए हैं किंतु गुल की कोई सूचना नहीं मिली है। उसको समुद्र में खोजने का एक प्रयास हम भी अपनी तरफ़ से कर सकते हैं।”
“प्रशासन अपने सभी संसाधनों के साथ यह प्रयास कर चुका है। विफल रहा है। और हम बिना किसी साधन के यह काम कैसे कर सकते हैं?”
“तथापि हम एक प्रयास करने को उत्सुक हैं।” आठ दस विद्यार्थियों ने कहा, “सम्भव है कि हमारा प्रयास कोई सकारात्मक परिणाम दे।”
इस प्रस्ताव पर प्राचार्य ने गहन विचार किया और बोले, “ठीक है। हम प्रयास कर देख लेते हैं। मुझे यह जानकर गर्व होता है कि आपमें से किसी ने भी आशा नहीं छोडी, ना ही हम परिस्थितियों से परास्त हुए। कृष्ण की इच्छा एवं महादेव के आशीर्वाद मिल जाए तो हम अवश्य ही सफल होंगे।”
“ऐसा ही होगा।” सभी ने एक साथ कहा।
“हम अभी इस अभियान का प्रारम्भ करते हैं।” दस युवक उठे, प्राचार्य के आशीष लिए और समुद्र की तरफ़ चल पड़े।

58

“सुनों मित्रों।” अभियान का नेतृत्व कर रहे युवक ने कहा, “समुद्र किसी भी मृत शरीर को अपने भीतर नहीं रखता। उसे

किसी ना किसी तट पर छोड़ दे ता है। इस क्षेत्र के किसी भी तट पर गुल का शव नहीं मिला है।”
“अर्थात् गुल की मृत्यु नहीं हुई है? वह कहीं ना कहीं जीवित ही है।”
दूसरे युवक की इस बात ने बाक़ी युवकों के मन में आशा तथा चेतना का संचार कर दिया।
“सत्य कह रहे हो मित्र, ह में इसी धारणा के साथ, इसी दृष्टिकोण से गुल को खोजना है। गुल समुद्र के पानी के भीतर नहीं किंतु कहीं बाहर है। और हमें ऐसे स्थान पर उसे खोजना है जहां समुद्र तो है किंतु पानी नहीं है।”
“तुम किस स्थान का संकेत कर रहे हो?”
“मित्रों, इस समुद्र के तट पर अनेक कन्दरायें हैं। उन कन्दराओं में अनेक गुफ़ाएँ हैं। वहाँ समुद्र का पानी अल्प मात्रा में होता है। गुल ऐसी ही किसी गुफा में होगी।”
“इन गुफाओं के विषय में तुम कुछ ज्ञान रखते हो? कुछ बता सकतेहो? कभी गए हो ऐसी किसी गुफाओं में?”
“मैं स्वयं तो कभी नहीं गया किंतु केशव से इस विषय में एकदा सुना था।”
“क्या कहा था केशव ने?”
“यही कि वह एक बार गुल के साथ किसी गुफा में गए थे।”
“उस गुफा कहाँ है?”
“वह तो उसने नहीं बताया था।”
“तो अब?”
“हम सभी दिशाओं में स्थित कन्दराओं में, उनकी गुफाओं में जाते हैं। हो सकता है कहीं वह मिल जाए।”
“हम दो दो की टुकड़ी में बंट जाते हैं जिससे सभी कन्दराओं तक पहुँच सकें।”
“हर हर महादेव।” इसी नाद के साथ दो दो की टुकड़ी में सभी निकल पड़े, समुद्र में कूद पड़े।
“वहाँ सामने देखो। यह कन्दरा बड़ी है। गुफा भी बड़ी लग रही है।” एक टुकड़ी के एक युवक ने कहा।
“चलो, वहाँ देखते हैं।”
एक बड़ी गुफा के सम्मुख दोनों आ गए। दोनों ने एक दूसरे को देखा और गुफा में प्रवेश कर गए।
“एक विचित्र सुगंध है यहाँ।”
“इसे दुर्गंध कहते हैं, मित्र।”
“जो भी हो, किंतु इस स्थिति में किसी मनुष्य का यहाँ अल्प समय तक रुकना भी दुष्कर है। यहाँ गुल का होना सम्भव नहीं।”
“जिजीविषा असम्भव को भी सम्भव बना देती है। और अब यहाँ तक आ चुके हैं तो थोड़ा अंदर चलते हैं।”
“किंतु इस दुर्गंध?”
“कुछ समय इसे सह लो। इस दुर्गंध से किसी की मृत्यु होते हुए हमने नहीं जाना।”
“मृत्यु का भय होता तो मैं इस अभियान से जुड़ता ही नहीं।”
“तो कुछ भी वाद विवाद किए बिना अंदर चलो।”
दोनों गुफा के भीतर जाने लगे। मार्ग में अल्प मात्रा में पानी, कुछ समुद्री जीव जंतु तथा वनस्पतियों का अवरोध पार करते हुए दोनों भीतर गए।
“यहाँ सूर्य का प्रकाश मंद होता जा रहा है। भीतर जाना उचित नहीं है।”
“मंद है किंतु प्रकाश है तो सही ना? जितना भी है उसमें हम जो कुछ देख पा रहे हैं उसे देखते चलो।”
दोनों और भीतर गए। प्रकाश और मंद हो गया। एक बिंदु पर दोनों रुक गए। आगे तमस् ही तमस् था। दोनों ने गुफा के द्वार की तरफ़ मुख कर लिया। एक दूसरे को देखा और संकेतों में ही निश्चय कर लिया कि अब यहाँ से लौट जाना है। वह लौटने लगे तभी गुफा के भीतर से एक ध्वनि उन्होंने सुनी।
“तुमने सुना मित्र, यह ध्वनि?”
“किसी प्राणी के चलने की पदध्वनि है?”
“कोई समुद्री प्राणी होगा भीतर। कोई मगर तो नहीं?”
“वह हम पर आक्रमण करें उससे पूर्व चलो भाग चलते हैं।”
दोनों भागने लगे तभी गुफा के भीतर से मनुष्य की ध्वनि आइ, “रुको, रुको।”
दो बार बोले गए शब्दों का प्रतिघोष अनेक बार सुनाई दिया। दोनों रुक गए।
“यह तो किसी ....।”
दोनों ने मुड़कर देखा। समक्ष उसके गुल थी। उसके मुख पर अभी भी भय की छाया थी। वह दुर्बल प्रतीत हो रही थी। तीन

रात्रि की अनिद्रा तथा भय से युक्त रहने के कारण वह म्लान भी थी। गुरुकुल के छात्रों को देखकर मन में उत्पन्न आशा के कारण उसके मुख पर आभा उभर आइ। आभा तथा दु:ख के भावों से मिश्रित रेखाएँ उसके मुख को एक अवर्णनिय सौंदर्य प्रदान कर रही थी।
दोनों युवक गुल के निकट गए। स्मित किया और कुछ भी बोले बिना गुल के मस्तक पर हाथ रख दिए। गुल शांत हो गई। निर्भीक हो गई। उसे लेकर दोनों गुरुकुल आ गए। बाक़ी युवक भी आ गए।

59

“मेरे पिताजी कहाँ है?” गुल के इस प्रश्न का उत्तर गुरुकुल में किसी ने नहीं दिया।
“मेरा घर? मेरी माँ?” इसका उत्तर भी किसी ने नहीं दिया। सभी ने मौन धारण कर लिया।
“मुझे मेरे घर ले चलो।” उत्तर में एक युवक शीतल जल ले आया।गुल ने थोड़ा पिया। दूसरा युवक फल ले आया। गुल ने उसे ग्रहण नहीं किया।
प्राचार्य ने गुल के मस्तक पर हाथ रख दिया। गुल का उद्विग्न मन शांत होने लग, कुछ क्षणों में शांत हो गया। उसने फल खाया।
“गुल, तुम अभी इस कक्ष में विश्राम करो।” प्राचार्य के साथ सभी ने कक्ष रिक्त कर दिया। गुल विवश होकर विश्राम करने लगी। मन अशांत था, तन थका हुआ था। अन्तत: मन पर तन प्रभावी हो गया।
गुल जब जागी तो उसने गवाक्ष से बाहर देखा। सूर्य अस्त हो चुका था। पश्चिम का सारा नभ लाल था। इस लालिमा को देखकर गुल को उस लालिमा का स्मरण हुआ जिसे देखने के पश्चात् उसे समुद्र में शरण लेनी पड़ी थी। उसके पिता की हत्या हुई थी। जिन प्रश्नों को छोड़कर वह निद्राधीन हुई थी वह प्रश्न पुन: उसके मन में प्रवेश कर गए। वह कक्ष से बाहर निकली, घर की तरफ़ दौड़ी। उसे जाते हुए कुछ युवकों ने देखा, उसे रोकने का प्रयास किया किंतु गुल वहाँ से निकल चुकी थी, घर की तरफ़ जाने लगी थी।
वह घर पहुँची। द्वार खुला था। सभी वस्तुएँ स्थिर थी।घर में किसी मनुष्य के होने के कोई संकेत नहीं थे। गुल ने पूरा घर खोज लिया किंतु वहाँ कोई नहीं मिला। वह कुछ निमिष घर की वस्तुओं को देखती रही। उसका मन ग्लानि से भर गया। वह बाहर चली गई। घर पर एक दृष्टि डाली, कुछ निश्चय किया और समुद्र की तरफ़ चलने लगी।
कुछ समय भीगी रेत पर चलते चलते गुल सहज ही समुद्र के भीतर प्रवेश कर गई।तरंगें गुल के पग को स्पर्श कर लौट जाने लगी। वह थोड़ा और भीतर गई।अब तरंगें गुल को पार करती हुई तट पर जाने लगी। गुल भीतर ही भीतर जाने लगी। घुटनों तक वह भीतर आ गई। वह आगे बढ़ती गई। पानी उसकी कटि तक आ गया। तथापि वह चलती रही। पानी छाती पर आ गया। वह चलती रही। पानी में कंधा डूबने लगा। वह शून्य मनस्क थी। उसे सुध नहीं थी कि वह कहाँ है? क्या कर रही है? उसके इस कार्य का परिणाम क्या है? वह बस चलती जा रही थी। वह अब कंठ तक समुद्र के भीतर थी। वह नहीं रुकी। पानी अधरों तक आ गया। वह चलती रही। पानी नासिका को स्पर्श करता हुआ नासिका के भीतर चला गया। श्वासों के आवागमन पर इसका प्रभाव पड़ने लगा। प्रत्येक श्वास के साथ पानी उसके शरीर के भीतर प्रवेश करने लगा।

गुल के तन को समुद्र की तरंगें अस्थिर कर रही थी। वह स्थिर रहने का निरंतर प्रयास करती रही। शरीर की शक्ति क्षीण हो गई।उसने संतुलन खोया, गिर पड़ी। तरंगें उसके शरीर को कभी भीतर खिंचती तो कभी तट की तरफ़ धकेलती। अपने शरीर पर गुल का कोई नियंत्रण नहीं रहा। मन पर का नियंत्रण तो वह कब की खो चुकी थी। तरंगों के साथ वह डूबती, तैरती, भीतर जाती, बाहर आती रही। यही क्रम चलता रहा।पश्चात् किसी ने गुल को बालों से पकड़ा, खिंचा तथा तट पर ले आया।

गुल थकी हुई थी, अचेत हो गई।उसके शरीर से पानी निकाला गया। उसे जीवन देने के सभी उपाय किए गए। समग्र प्रक्रिया से अनभिज्ञ थी वह। जैसे कोई जीवित शव।

60

गुल ने जब आँखें खोली तब वह गुरुकुल के किसी कक्ष की शैया पर थी। कुछ कुमार उसकी सेवा में वहीं थे। उसने उनमें किसी को खोजने का प्रयास किया किंतु वह वहाँ नहीं था।
गुल के आँख खोलते ही एक कुमार प्राचार्य को इसकी सूचना दे आया। वह कक्ष में आए। गुल के माथे पर हाथ रखते हुए बोले, “हरे कृष्ण।”
कृष्ण का नाम सुनते ही गुल में किसी चेतना का संचार होने लगा। वह बोली, “हरे कृष्ण।” सभी के मुख पर हर्ष छा गया, गुल के मुख पर सौम्य हसित।
“केशव कहाँ है?”
“उसे सूचित कर दिया है, शीघ्र ही वह आ जाएगा। तब तक तुम विश्राम करो।”
“तब तक मैं कृष्ण स्मरण करती हूँ, उसके नाम का जाप करती हूँ।”
“हम भी साथ कृष्ण स्मरण करते हैं।” सभी साथ मिलकर गाने लगे-
श्री कृष्ण गोविंद हरे मुरारी, हे नाथ नारायण वासुदेव।
श्री कृष्ण गोविंद हरे मुरारी, हे नाथ नारायण वासुदेव।
कीर्तन चलने लगा। कृष्णमय सब हो गए। कीर्तन के मध्य सहसा बांसुरी के स्वर बजने लगे। गुल का ध्यान उन स्वरों पर गया। उसे वह ध्यान से सुनने लगी, उन सुरों को उसने पहचान लिया। वह बोल पड़ी।
“केशव। यह बांसुरी तुम बजा रहे हो ना? केशव, केशव...।”
उसके नयन कमरों के मध्य केशव को खोजने लगे।
केशव कक्ष के बाहर बांसुरी बजा रहा था। एक कुमार ने संकेत दिया और केशव कक्ष के भीतर आ गया। गुल ने उसे देखा। उसके अधरों पर बांसुरी थी। केशव के हाथ उस बांसुरी पर चल रहे थे। बांसुरी मधुर स्वर सुना रही थी। केशव के नयनों में एक भाव था जिसे गुल पढ़ने लगी। कुमारों ने कीर्तन का समापन किया। अब वहाँ केवल बांसुरी के स्वर ही थे। बाक़ी सब कुछ शांत था, मौन था।
जैसे जैसे बांसुरी सुनती गई, गुल का चित्त प्रसन्न होता गया। एक बिंदु पर केशव ने बांसुरी के सुरों को विराम दिया। सभी सुर, सभी स्वर शांत हो गए।गुल का उद्विग्न मन भी।
केशव गुल के समीप गया। अन्य सभी कक्ष से बाहर चले गए।
“केशव ...।” गुल ने बात करना चाही किंतु भावावेश में वह कुछ भी बोल ना सकी। कंठ में अवरुद्ध हुए शब्द नयनों के माध्यम से अश्रु बनकर बोल पड़े। केशव ने अश्रुओं को बोलने दिया। गुल सभी बंधनों को तोड़कर रोने लगी।केशव उसके रुदन का साक्षी बना रहा। पूर्ण रूप से रो लेने से गुल के भीतर का उद्वेग शांत हो गया। रुदन रुक गया।
“सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकम शरणम व्रज।
अहम त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिश्यामि। मा शुच:।।”
केशव ने गीता के उस श्लोक का उच्चार किया जो स्वयं कृष्ण ने अपने भक्तों के लिए अर्जुन से कहा था। इस एक श्लोक ने गुल के मन की समग्र पीड़ा हर ली। मुख पर से पीड़ा के सभी भाव लुप्त हो गए। मन में कृष्ण का स्मरण किया, आँखें बंद कर ली। केशव ने इन भाव परिवर्तन को देखा। उसने मन ही मन कृष्ण का धन्यवाद किया।
उस रात्रि गुल ने पूर्ण निद्रा ली। प्रातः जब जागी तो केशव को कक्ष में ही पाया। केशव किसी पुस्तक को पढ़ रहा था। उसने नहीं देखा कि गुल निद्रा त्याग चुकी है।
केशव की एकाग्रता को भंग किए बिना ही गुल उठी, गवाक्ष को खोल दिया। समुद्र का शीतल समीर कक्ष में प्रवेश कर गया। समीर के इस स्पर्श ने केशव का ध्यान भंग कर दिया। उसने अनायास ही गवाक्ष को देखा तो ध्यान आया कि गुल जाग चुकी थी, गवाक्ष पर खड़ी थी और कहीं दूर समुद्र के भीतर उठ रही तरंगों को देख रही थी। वह शांत थी। उन तरंगों की चंचलता को निहारने के उपरांत भी वह शांत थी। पूर्ण तन्मयता से वह उन तरंगों का अनुभव कर रही थी। केशव ने उस तन्मयता को खंडित करना उचित नहीं समझा।वह गुल को देखता रहा, उसकी तन्मयता के अंत की प्रतीक्षा करने लगा।
केशव गुल को देख रहा था। गुल समुद्र की तरंगों को देख रही थी। तरंगें इन दोनों को देखे बिना ही अपनी सहज गति से

बह रही थी।
एक समुद्र पंखी उन तरंगों पर से उड़ता हुआ तट पर आया। वहीं पर विहरने लगा। गुल की दृष्टि ने सहज ही समुद्र पंखी का अनुसरण किया। उसकी पंखी सहज प्रवृति देखकर गुल को मन हुआ कि वह भी तट पर दौड़ जाए और पंखी के साथ क्रीड़ा करे। स्वयं को तट पर जाने की सज्जता में वह गवाक्ष से हटी तो उसने केशव को देखा जो अनिमेष उसे ही देख रहा था। क्षणभर वह सकुचाई, लज्जावश आँखें बंद कर ली।
“यदि तुम्हारा मन हो तो हम कुछ समय तट पर जाकर बैठते हैं।” केशव के शब्द सुनकर गुल ने आँखें खोली। दोनों तट की तरफ़ चल दिए।
तट पर आते ही गुल को पिता की मृत्यु तथा माँ का घर छोड़ने की घटना का स्मरण हो गया। मुख पर विषाद उभर आया। चलते चलते वह रुक गई। तट पर पड़े दो चार पत्थर को हाथ में लिये, पुरे क्रोध से उसे समुद्र को मारने लगी।
केशव रुक गया। उसने गुल को नहीं रोका। कुछ पत्थर समुद्र को मारने के पश्चात गुल थक गई, रुक गई, तट पर बैठ गई, रोने लगी। केशव समग्र घटना को किसी चलचित्र के दर्शक की भाँति देखता रहा। रोते हुए जब गुल शांत हो गई तब केशव उसके समीप गया।
सस्मित बोला, “गुल।”
गुल ने स्वयं को समेटा, स्वस्थ हुई और केशव के स्मित का उत्तर दिया।
“गुल, मुझे तुमसे एक महत्वपूर्ण बात करनी है। यही कारण से मैं तुम्हें इस समुद्र के तट तक ले आया हूँ।”
“तो हम कहीं अन्यत्र चलें। मुझे इस समुद्र से कहीं दूर ले चलो।” गुल उठने लगी।
“क्यों?”
“मैं इस समुद्र के सम्मुख कोई बात नहीं करनी। मैं इससे कोई सम्बंध नहीं रखना चाहती।यह समुद्र ….।”
“रुक क्यों गई? क्या है यह समुद्र? कहो।”
गहन श्वास को भीतर लेते हुए गुल बोली, “इस समुद्र ने मेरे पिता की हत्या की है। मैं इससे घृणा करती हूँ।” गुल चलने लगी।
“तो यह बात है समुद्र की बेटी के मन में!”
“हाँ, मैं अब इस समुद्र का दर्शन भी नहीं करना चाहती।चलो, कहीं अन्यत्र चलते हैं।”
गुल जाने लगी। केशव ने उसे रोकना चाहा किंतु वह नहीं रुकी। केशव दौड़कर गुल के समीप गया, उसका मार्ग रोक लिया।
“अब रुक भी जाओ, गुल।”
मुख पर अप्रसन्नता के भावों के साथ गुल रुक गई।
“कुछ क्षण शांत हो जाओ। यहाँ बैठ जाओ।”
“यहाँ?”
“मैं तुम्हारे मन के भावों का सम्मान करता हूँ। उसे भली भाँति समजता हूँ। इसीलिए कहता हूँ कि क्षणिक रुक जाओ, शांत हो जाओ।”
गुल रुक गई।
“आओ मेरे साथ।” केशव उसे समुद्र तट पर स्थित एक शिला पर ले गया। “बैठो यहाँ पर।”
गुल बैठ गई। आँखें झुकाए वह शिला को देखती रही।
“गुल, इस समुद्र से आँखें मिलाओ। आँखें चुराने से तो ….।”
“तो क्या होगा?”
“तो तुम अपना प्रतिशोध पूरा नहीं कर सकोगी।”
“प्रतिशोध?” गुल के वदन पर आश्चर्य के भाव उत्पन्न हो गए।
“हाँ, गुल।हमें जिससे प्रतिशोध लेना होता है उससे हमें आँखें चुरानी नहीं चाहिए किंतु उस पर आँखें जमाए रखनी चाहिए।”
“यह क्या कह रहे हो केशव? मुझे किस से प्रतिशोध लेना है? मुझे किसी से कोई प्रतिशोध नहीं लेना है।”
“जिसने तुम्हारे पिता को मृत्यु दी है उससे तुम प्रतिशोध नहीं लोगी?”
“किससे?”
“इस समुद्र से।” केशव के शब्द वेधक थे।गुल उसे सुनकर स्तब्ध रह गई।
“इस समुद्र ही तुम्हारे पिता की मृत्यु का कारण है। कारण ही नहीं अपितु उत्तरदायी भी है। नहीं, नहीं। इस समुद्र ने ही तुम्हारे पिता की हत्या की है। उससे प्रतिशोध तो लेना ही होगा, गुल।”

“किसी से प्रतिशोध लेना मेरा स्वभाव नहीं है। ना ही मेरी ऐसी कोई इच्छा है।”
“तो?”
“मैं तो बस इस समुद्र से रूठी हूँ।उसे क्षमा नहीं करूँगी।उससे कोई सम्बंध नहीं रखना चाहती।” गुल ने पुन: आँखें झुका दी।
“इस प्रकार रूठना तुम्हारी अपरिपक्वता का संकेत है।तुम इतने सारे ग्रंथों का अध्ययन कर चुकी हो।उसके ज्ञान को, उसके मर्म को जान चुकी हो तथापि तुम इस प्रकार ....।”
“यह सारा ज्ञान केवल पुस्तकों में ही सुंदर लगता है। वास्तविक जीवन में इसका कोई औचित्य नहीं है।”
“चलो, एक क्षण के लिए इस ज्ञान को भूल जाते हैं। अब कहो कि वास्तव में क्या हुआ था?”
“इसी समुद्र के कारण मेरे पिता की मृत्यु हुई है यही वास्तविकता है।”
“इसी समुद्र के कारण तुम अपनी मृत्यु से बच सकी हो यह भी वास्तविकता है।”
“क्या? मेरी मृत्यु?”
“हाँ। तुम्हारी मृत्यु।जो इसी समुद्र के कारण टल गई।”
“ओह केशव।”
“मृत्यु तो तुम्हारी भी सम्भव थी। काल के चरण तुम्हारी तरफ़ भी आ गए थे। उसे किसने रोका? इसी समुद्र ने। क्या इस सत्य का तुम अस्वीकार कर सकती हो?”
गुल निरुत्तर हो गई।
“यह स्मरण रहे कि तुम अभी जीवित हो।”
“किंतु मेरे पिता ....।”
“हाथ से जो छूट जाता है हमें वही मूल्यवान लगता है। जब कि जो हाथ में है वह कितना भी मूल्यवान क्यों ना हो, हमें उसके मूल्य का ज्ञान नहीं रहता। यह कैसी विचित्रता है, गुल?”
“अहम न जानामि।”
“जिसका नाम होता है, उसका अंत निश्चित होता है। उसके अंत का समय, तिथि, स्थान, कारण सब कुछ पूर्व निर्धारित होता है।जब भी इन सबका संयोग बनता है, काल उसे नष्ट कर देता है। उसे कोई रोक नहीं सकता।स्वयं विधाता भी नहीं। किंतु उस संयोग तक हमें जीने के लिए जीवन उपलब्ध होता है। उस समय तक हमें जीना पड़ता है। हंसते हुए भी- रोते हुए भी। पसंद तुम्हें करना है। जीवन तुम्हारा है।”
“ज्ञान की बड़ी गहन बात कर रहे हो?”
“सरल शब्दों को आप जैसे ज्ञानी लोग समझते कहाँ हैं? ज्ञानी व्यक्ति को ज्ञान की भाषा में ही समझाना पड़ता है।”
गुल हंस पड़ी। “मैं तुम्हारी बातों का मर्म समझ गई। किंतु पिता से वियोग?”
“यह तुम्हारा प्रथम वियोग है। जीवन में ऐसे अनेक वियोग आते रहेंगे। तुम्हें उसका स्वीकार करना होगा। अभी एक और वियोग तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, गुल।”
“एक और? कितने वियोग होते हैं इस एक जीवन में, केशव?”
“यह कोई नहीं जानता।”
“तो तुम कैसे जानते हो?”
“क्यों की अब जो वियोग तुम्हारे जीवन में आ रहा है वह वियोग मैं तुम्हें देने वाला हूँ।”
“तुम? अर्थात् तुम्हारी भी मृत्यु.....?”
“मृत्यु के उपरांत भी वियोग के अनेक नाम होते हैं। अनेक कारण होते हैं।”
“तो? जो भी हो, स्पष्ट शब्दों में कहो।”
“कल सूर्योदय से पूर्व मैं इस गुरुकुल को, इस द्वारका नगरी को, इस समुद्र को, इस गुरुकुल को और तुम्हें छोड़कर मुंबई महानगर में अध्ययन हेतु प्रस्थान करूँगा।”
“तो क्या ? जब भी समय मिले हम सब को मिलने आ जाना। इसे वियोग थोड़ी कहते हैं?”
“नहीं गुल। यह सम्भव नहीं होगा। चार वर्षों तक में आ नहीं पाऊँगा।”
“चार वर्ष पश्चात तो आओगे ना?”
“चार वर्ष के पश्चात क्या होगा, कोई नहीं कह सकता।”
“तो तुम्हारा वियोग भी स्थायी वियोग ही होगा?”
“ऐसा स्वीकार कर लेना ही उचित है। मैं तुम्हें कोई मिथ्या आश्वासन देना नहीं चाहता।”

“ओह, केशव। यह सारे वियोग मेरे ही भाग्य में क्यों है?”
“तुम्हें तो केवल एक का ही वियोग होगा। किंतु तुम्हें विदित भी है की मुझे कितने वियोगों का स्वीकार करना पड़ेगा?”
“कितने?”
“गिनते जाना। द्वारका नगरी से, इस समुद्र से, इस तट से, महादेव से,गुरुकुल से, सहपाठियों से, आचार्यों से, प्राचार्य से, ...।”
“और मुझसे?”
“हाँ, सबसे अधिक तुम से।”
“मेरे वियोग से तुम्हारा वियोग विशाल है, कठिन है। भगवान द्वारिकाधीश तथा महादेव भड़केश्वर तुम्हें इस वियोग सहने का सामर्थ्य प्रदान करें।” गुल ने दोनों मंदिरों को वंदन किया।
“केशव, जाने से पूर्व एक बार द्वारिकाधीश के मंदिर जाकर उसके दर्शन कर आओ।”
“मन मेरा भी यही चाहता है किंतु यह सम्भव नहीं होगा।”
“क्यों? अभी चले जाओ।”
“आज पूरा दिन ग्रहण है। ग्रहण में मंदिर नहीं खुलते।”
“यह भी कैसा संयोग है केशव?”
केशव ने स्मित से उत्तर दिया। दोनों गुरुकुल लौट

61

केशव के जाने की सज्जता में पूरा दिन व्यतीत हो गया। गुल इस प्रत्येक सज्जता में केशव के साथ रही। प्रत्येक क्षण उसने केशव के साथ जिए। उन क्षणों में उसे किसी चिंता का अनुभव नहीं हुआ। पूरे उत्साह से वह सज्जता करती रही। रात्रि को सज्जता पूर्ण होने पर संतोष के साथ वह सो गई। केशव रात्रि भर गुल के समीप बैठा जागता रहा।
ब्राह्म मुहूर्त में केशव कक्ष से बाहर आ गया, समुद्र में तारा स्नान किया और प्रातः कर्म से निवृत हो गया। गुल विलम्ब से जगी। तब तक गुरुकुल अपने नित्य कर्म से निवृत हो चुका था। केशव के साथ गुरुकुल भी विदाई के लिए सज्ज हो गया जिसमें अभी कुछ समय शेष था।
“केशव इस शेष समय में हम महादेव के दर्शन कर आते हैं।”
दोनों ने महादेव भड़केश्वर के दर्शन किए, आशीर्वाद प्राप्त किए। लौटकर तट पर आते ही केशव ने समुद्र को वंदन किया।दोनों कुछ चरण साथ चले, मौन रेत पर।दोनों एक दूसरे के स्पंदनों को सुनते रहे।
वैसे तो उस समय वहाँ सुनने के लिए समुद्र की ध्वनि, बहते समीर की ध्वनि, महादेव की ध्वजा की ध्वनि, चंचल पंखियों की ध्वनि, चलते चरणों की ध्वनि, समुद्र में चल रही नौका की ध्वनि आदि थी किंतु दोनों ने उसमें से किसी की ध्वनि को नहीं सुना। सुना तो केवल स्पंदनों को।
“केशव,यह हमारा अंतिम मिलन है क्या?”
शीतल पवन में चलते चलते एक गहन श्वास के साथ केशव ने कहा,”प्रत्येक मिलन सदैव अंतिम मिलन होता है।”
“प्रत्येक वियोग भी तो अंतिम वियोग ही होता है, केशव।”
“प्रत्येक मिलन अपने साथ वियोग को निश्चय ही लाता है। किंतु प्रत्येक वियोग के साथ मिलन का आना निश्चित नहीं होता है।”
“किंतु मिलन की आशा, अपेक्षा तो लाता ही है यह वियोग।”

“कदाचित। काल के गर्भ में क्या है उसे कोई नहीं जानता, मैं भी नहीं। मैं तो केवल इसी क्षण, जो मेरे सम्मुख है उसी पर विचार करता हूँ।मैं उसी में जीता हूँ।”
“मैं भविष्य के मिलन की क्षणों की प्रतीक्षा में जीती रहूँगी। मैं उन क्षणों की प्रतीक्षा करूँगी क्यों कि मैं प्रतीक्षा करना जानती हूँ। मुझे अनुभव है उसका।”
“तुम्हारा यह विश्वास प्रबल है। ईश्वर यह विश्वास को बनाए रखे। किंतु जाने से पूर्व मैं तुम्हें एक भेंट देना चाहता हूँ।”
“वियोग ही भेंट है। मुझे अन्य भेंट की क्या …?”
“गुल, मैं तुम्हारे कटाक्ष को समजता हूँ। किंतु यह समय कटाक्ष का नहीं है। मैं जो तुम्हें देनेवाला हूँ वह अमूल्य है। तुम आँखें बंद करो।”
गुल ने आँखें बंद कर ली।
“अब दोनों हथेलियों को सामने धरो।” गुल ने वैसा ही किया।
केशव ने गुल की हथेलियों पर कुछ रख दिया।
“अब आँखें खोलो।”
गुल ने आँखें खोली। हथेलियों को देखते ही बोल पड़ी, “यह बांसुरी? मेरे लिए?”
“हाँ गुल।”
“किंतु मुझे तो इसे बजाना नहीं आता। तुमने कभी सिखाया ही नहीं। क्यों नहीं सिखाया, केशव?”
“इस क्यों का कोई समाधान नहीं हैं मेरे पास। किंतु यह बांसुरी सदैव तुम्हें मेरी उपस्थिति का अनुभव कराती रहेगी।”
“धन्यवाद, केशव। अब तुम्हारे गमन का समय हो गया है। हमें लौटना होगा।”
दोनों लौट गए।
समय पर केशव जाने लगा। सभी ने उसे उचित विदाई दी। गुल ने संकेतों से, मुख की मुद्राओं से, मुख के भावों से तथा स्मित से विदाई दी।
केशव के जाते ही गुरुकुल अपने कार्यों में व्यस्त हो गया। गुल कक्ष में गई, गवाक्ष से उस स्थान को देखती रही जहां से अभी अभी केशव ने विदाई ली थी। केशव के पदचिह्न उस रेत से चलते हुए मार्ग में विलीन हो गए।
“यह पदचिह्न भी मिट जाएँगे? अथवा शाश्वत रहेंगे? क्या कभी मिलन सम्भव नहीं होगा?”
समुद्र की तरंगें केशव के कुछ पदचिह्नों को मिटा गई। तो कुछ को पवन ने मिटा दिया। अब वहाँ कोई पदचिह्न नहीं थे।
“इस प्रकार पदचिह्नों का मिट जाना संकेत दे रहा है कि तुम अवश्य लौटकर आओगे, केशव। जब जब तुम्हारे पदचिह्न मिट जाते हैं, तब तब तुम तट पर लौट आए हो। मुझे विश्वास है केशव, तुम एक दिन लौट आओगे। विलम्ब कितना भी क्यों ना हो, मैं प्रतीक्षा करूँगी।”

62

चार वर्ष का समय व्यतीत हो गया। प्रत्येक दिवस गुल ने इन चार वर्षों की अवधि की समाप्ति की प्रतीक्षा में व्यतीत किए थे। इन चार वर्षों में द्वारका ने अनेक परिवर्तनों को देखा। गुरुकुल में भी परिवर्तन हो रहा था। गुल को गुरुकुल में एक कक्ष में निवास की सुविधा दी गई थी। गुरुकुल के पुस्तकालय के सभी पुस्तकों के अध्ययन की, आचार्यों से प्रश्न करने की तथा गुरुकुल परम्परा से ज्ञान प्राप्ति की उसे अनुमति दी गई थी।

गुरुकुल के रसोईघर एवं वृक्षों के जतन में भी वह सहायता करती थी। इस अवधि में गुल ने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया, वेदों को समझा। न्याय शास्त्र, व्याकरण, दर्शन शास्त्र, साहित्य आदि का गहन अध्ययन किया। महादेव भड़केश्वर की पूजा अर्चना करती रही। समुद्र से मित्रता करती रही। उसके तट पर विहार करती रही। सूर्योदय से पूर्व समुद्र को अपना ज्ञान सुनाती, सूर्यास्त के समय सूर्य को समुद्र में विलीन होते देखती रहती। प्रत्येक क्षण में, प्रत्येक कर्म में केशव का स्मरण करती रहती।उसका धन्यवाद करती कि उसने उसे गुरुकुल से, ज्ञान के समुद्र से परिचय कराया। यही सब करते करते वह केशव के लौटने की तीव्रता से प्रतीक्षा करती रही। अपनी इस उत्कट प्रतीक्षा को उसने अपने किसी भी व्यवहार में प्रकट नहीं होने दिया। उसके साथ रहनेवाले सभी ने मान लिया था कि गुल केशव का विस्मरण कर चुकी है। किंतु यथार्थ पूर्णत: भिन्न था। केशव का स्मरण एवं प्रतीक्षा प्रचंड थे।

समुद्र, समुद्र की तरंगें, तट, तट की रेत, तट से समुद्र पर तथा समुद्र से तट पर गति करता समीर, सूर्योदय की प्रथम किरण, सूर्यास्त का अंतिम रश्मि, चंद्र की ज्योत्सना। यह सब गुल की मनोस्थिति को जानते थे। उसे साक्षी भाव से निहारते थे।

वह दिन आ गया। चार वर्ष का समय पूर्ण हो गया। दिन के प्रथम प्रहर से पूर्व ही गुल जाग गई। सभी कर्म से पूर्व महादेव के दर्शन कर आइ। तट पर जाकर प्रतीक्षा करने लगी। समय पर सूर्योदय हो गया। प्रतीक्षा का अंत निकट आने लगा। एक विद्यार्थी गुरुकुल से निकलकर अपनी तरफ़ आता देख गुल उत्साह से उसके प्रति दौड़ गई।

“केशव आ गया?”

“केशव? नहीं? क्या वह आज आनेवाला था?”

“केशव अभी तक नहीं आया?”

“आपको किसने कहा कि आज केशव आने वाला है?”

“आज चार वर्ष पूर्ण हो गए हैं ना?”

“क्या आपको विदित नहीं है कि केशव मुंबई से ही अमेरिका चला गया?”

“अमेरिका? क्यों?”

“उच्च शिक्षा हेतु।”

“यह उच्च शिक्षा कितनी होती है?”

“मैं नहीं जानता।” वह विद्यार्थी चला गया। गुल तट पर जहां खडी थी वहीं बैठ गई। उसके शरीर से समग्र ऊर्जा रेत में बह गई। वह शिथिल तन, शिथिल मन से समुद्र को देखती रही। मन शून्य हो गया। किसी भी बात पर विचार करने का उसके मन को मन नहीं हुआ। वह उसी स्थिति में बैठी रही। सूर्य गति करता रहा। तरंगों के द्वारा समुद्र तट पर आकर लौटता रहा। समीर बहता रहा। रेत तरंगों से मिलकर भिगती रही। सब काल गति से गतिमान होते रहे। केवल गुल स्थिर थी, निष्क्रिय थी।

समुद्र धीरे धीरे तट पर बढ़ता रहा। बढ़ते बढ़ते एक तरंग ने गुल को स्पर्श किया तभी गुल चलित हुई, तंद्रा से जागी। स्वयं को समेटा, ऊर्जा संचय की और खड़ी हो गई। तट पर चलने लगी। केशव के न आने पर विचार करती रही। तर्क करती रही।अंतत: उसने उस सत्य का स्वीकार कर लिया कि केशव नहीं आया है, ना ही वह आएगा, कभी नहीं आएगा। वह गुरुकुल लौट गई। स्वयं को उसने पुन: जीवन से जोड़ दिया।

63

द्वारका में काशी से पंडित जगन्नाथ पधारे थे। भगवान द्वारिकाधीश के दर्शन के उपरांत वह मंदिर में विहार करते करते ब्राह्मणों का निरीक्षण कर रहे थे। कुछ यजमानों के संकल्प अनुसार पूजा अर्चना करवा रहे थे। पंडितजी उनका अवलोकन करने लगे। ब्राह्मणों द्वारा उच्चारित मंत्रों तथा श्लोकों को ध्यान से सुनने लगे। उन उच्चारण में उसने कुछ त्रुटि पाई। कुछ समय वह उसे सुनते रहे। त्रुटियों पर ध्यान देते रहे। उसने मन में निश्चय कर लिया। पूजा सम्पन्न होने तक प्र तीक्षा करते रहे।

पूजा सम्पन्न हो गई। यजमान चले गए। ब्राह्मण पूजा स्थल को साफ़ कर रहे थे तभी पंडितजी उनके समक्ष आ गए।

“हे ब्राह्मण, आप जो मंत्रोच्चार कर रहे थे उसमें त्रुटि थी?”

इस प्रश्न से वह ब्राह्मण चकित हो गए। उन्हेंकोई प्रत्युत्तर नहीं सूझा।

“आपके मंत्रों के उच्चारण में दोष था। क्या आप जानते हो?”

किसी ने उत्तर नहीं दिया। अपना कार्य पूर्ण कर सभी ब्रा ह्मण चले गए। पंडितजी को ऐसी प्रतिक्रिया की अपेक्षा नहीं थी। मन में कुछ विचार के पश्चात वह पुजारी के पास गए। उसे सारी कथा सुनाई। अपना परिचय भी दिया।

“पुजारी जी, क्या आप मंत्रोच्चार में दोष करते हो?”

“पंडितजी, दोष होना सहज है। किंतु सभानता से ऐसा को नहीं करता, नहीं कर सकता।”

“जब हम भगवान की पूजा, प्रार्थना आदि करते हैं त ब तो हमें अपने उ च्चारणों को दोष मुक्त रखना चाहि ए। इतनी सभानता तो होनी ही चाहिए।”

“मैं आपकी बात से सहमत हूँ।”

“क्या इस नगरी के सभी ब्राह्मण ऐसे ही हैं जो कुछ ना कुछ दोष कर देते हैं?”

“हो सकता है, नहीं भी हो सकता है।”
“इस नगरी मैं कोई एक ऐसा ब्राह्मण नहीं होगा जो मंत्रों का दोष रहित उच्चार कर सके?”
“मैं नहीं जानता।”
“तो सुनो पुजारी जी। द्वारका के ब्राह्मणों को यह मेरी ललकार है। आप सभी को सूचित कर दें कि कल प्रातः भगवान द्वारिकाधीश के समक्ष सभी उपस्थित हो तथा मेरी ललकार का स्वीकार करें। मंत्रों की शुद्धि की कसौटी दें। मुझ से स्पर्धा करें। मेरी इस ललकार को सार्वजनिक कर दो, पुजारी जी।”
पुजारी ने गुरुकुल के प्राचार्य को दर्शन दीर्घा में देखा। वह प्राचार्य के पास गए और उसे पूरी कथा कही। प्राचार्य पंडितजी के पास गए, अभिवादन किया और बोले, “हे महाज्ञानी पंडितजी, द्वारका नगरी में आपका स्वागत है। आपके ज्ञान का संज्ञान सारे भारतवर्ष को है। मैं द्वारका गुरुकुल का प्राचार्य आपको वंदन करता हूँ।”
“मेरा प्रणाम भी स्वीकार करें, प्राचार्य जी। आपने मेरी ललकार तो सुन ली ना?”
“जी। सभी ने सुनी। मैं आपकी इस ललकार को स्वीकार करता हूँ। कल क्यों? आप चाहें तो अभी, इसी स्थल पर आपकी मनसा को पूर्ण कर सकता हूँ।क्या आप की अनुमति है? क्या आप सज्ज हो?”
पंडित जी के लिए यह अनपेक्षित था। उसे तत्काल कोई उत्तर नहीं मिला। कुछ विचार कर बोले, “प्राचार्य जी। आप तो ज्ञानी हो। मेरी ललकार द्वारका के किसी ब्राह्मण से है, आपसे नहीं। आप तथा आप के छात्र अवश्य ही शुद्ध मंत्रोच्चार करते होंगें। गुरुकुल के छात्र तथा आचार्यों के उपरांत कोई मेरी ललकार को स्वीकार कर सके ऐसा कोई हो तो कहो।”
“ठीक है। यदि आप ऐसा चाहते हैं तो आपकी यह मनसा भी पूरी हो जाएगी। कल प्रातः मंगला आरती के पश्चात वह व्यक्ति आप से स्पर्धा करेगी। तब तक आप हमारी इस द्वारका नगरी के अतिथि हैं। आप हमारे आतिथ्य का आनंद लें। आप चाहें तो हमारे गुरुकुल में विश्राम कर सकते हैं।”
“उसकी कोई आवश्यकता नहीं है प्राचार्य। किंतु कौन है वह व्यक्ति जो मुझ से स्पर्धा करेगी?”
“कल के प्रभात की प्रतीक्षा करें, धन्यवाद।”
“स्मरण रहे प्राचार्य, वह व्यक्ति गुरुकुल का आचार्य ना हो, ना ही छात्र हो।”
“नमो नम:।” प्राचार्य चले गए।
प्राचार्य चले गए। पंडितजी वहीं खड़े रहे। अपने प्रचंड स्वर से सब का ध्यान अपनी तरफ़ आकृष्ट करते हुए उसने घोषणा की, “सुनो, सुनो द्वारका वासियों, सुनो। द्वारका के ब्राह्मणों, मंदिर के पुजारियों, ध्यान से सुनो। मैं आप सब को आमंत्रित कर रहा हूँ। मेरी ललकार पर कल प्रातः सात बजे की वेला पर यहाँ आपके नगर से कोई व्यक्ति भगवान द्वारिकाधीश के प्रत्यक्ष मंत्रों का उच्चारण करेगी। अपेक्षा है कि वह पूर्ण रूप से शुद्ध हो। उसमें कोई दोष ना हो। वह मेरे साथ स्पर्धा करेगी। आप सभी इस अवसर पर अवश्य पधारें। मेरी ललकार है कि इस द्वारका नगरी में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जो मुझे परास्त कर सके।”
पंडितजी की घोषणा सुनकर मंदिर के भीतर उपस्थित सभी जनों में कौतुक, उत्कंठा, चिंता, कुतूहल, प्रश्नार्थ आदि भाव उत्पन्न हो गए। पंडितजी की इस घोषणा को उपस्थित जनों के उपरांत स्वयं द्वारिकाधीश ने भी सुनी, उसकी मूर्ति ने एक स्मित किया। पुजारी जी ने उस स्मित को देख लिया। भुवन मोहिनी स्मित। पुजारी मन ही मन बोले, ‘बड़े नटखट हो।’
पंडितजी की घोषणा सारे नगर में प्रसर गई। नगरजनों में यही चर्चा का विषय बन गई।
“यह कैसी स्पर्धा है?”
“ऐसा तो पूर्व में कभी हुआ ही नहीं।”
“कैसी होगी यह स्पर्धा?”
“प्राचार्य किसे प्रस्तुत करेंगे?”
“क्या वह व्यक्ति पंडितजी को परास्त कर पाएगी?”
“यदि परास्त नहीं कर पाई तो द्वारका नगरी को कितना बड़ा अपमान सहना पड़ेगा।”
“यदि वह व्यक्ति जीत गई तो पंडित जी की अवस्था क्या हो जाएगी?”
“अब आए हैं यह ब्राह्मण संकट में।”
“जो भी हो, कल बड़ा मनोरंजन होने वाला है।”
यही सब शब्द द्वारका नगरी में सुनाई देने लगे। सभी के अधरों पर, मन पर, हृदय पर, नगर के प्रत्येक चौक पर, प्रत्येक वीथिका में बस यही बात चल रही थी। नगर का प्रत्येक जन नगर के सम्मान हेतु चिंतित था, किंतु सभी को प्राचार्य पर विश्वास भी था। अंत में सभी ने अपनी चिंता भगवान द्वारिकाधीश को अर्पण कर दी जिसके मुख पर भुवन मोहिनी स्मित रम रहा था। प्रातः काल की प्रतीक्षा करते करते पूरा नगर निद्राधीन हो गया।

नगर के सामान्य जन तो निद्राधीन हो गए किंतु सभी ब्राह्मण के नयनों में चिंता ने स्थान ग्रहण कर लिया था।
'पंडितजी के आव्हान का स्वीकार कौन करेगा?'
यह प्रश्न विद्वान ब्राह्मण की सभा में किसी पर्वत की भाँति अटल खड़ा था, अपने स्थान पर अडिग था। अनेक विचार किए गए, अनेक विकल्पों पर चर्चा हुई। किंतु कोई निर्णय न हो सका। सभी ब्राह्मणों ने किसी न किसी कारण से स्वयं को स्पर्धा के लिए असमर्थ घोषित किया। अंतत: अनिर्णयाक स्थिति में सभी गुरुकुल आ गए। प्राचार्य ने उनकी बातों को ध्यान से सुना।
"आप सभी इस स्पर्धा को जितने की क्षमता रखते हो। आपके ज्ञान तथा सामर्थ्य पर मुझे को संशय नहीं है। आपको भी नहीं होना चाहिए। किंतु किसी कारणवश आपको अपने पर विश्वास नहीं है। यह होना स्वाभाविक है। किंतु हमें इस आह्वान का उत्तर तो देना ही होगा। हम बिना स्पर्धा के परास्त नहीं होंगे।"
सभी ब्राह्मण प्राचार्य की बात ध्यान से सुन रहे थे।
"आप निश्चिंत रहिए। कल स्पर्धा होगी। विजय भी द्वारका नगरी की होगी। आप में से कोई स्पर्धा में नहीं रहेगा।"
"तो क्या आप स्वयं...?"
"नहीं। मैं नहीं कर सकता। किंतु आप सब मेरा विश्वास कीजिए।"
"कौन होगा वह?"
"प्रातः काल के सूर्योदय की प्रतीक्षा करें। अब रात्रि अधिक हो चुकी है। आप सब विश्राम कर लीजिए।"
ब्राह्मण लौट आए।
पंडित जी भी चिंतित थे।
अब उसे लगने लगा कि 'ऐसा आव्हान मुझे नहीं करना चाहिए था। किंतु अपने ज्ञान के अभिमानवश में ऐसा कर बैठा। अब मैं चाहता हूँ कि यह स्पर्धा ना हो। मैं इसे रोकना चाहता हूँ। किंतु कैसे रोकूँ? मुझे इस प्रकार सार्वजनिक रूप से यह नहीं करना चाहिए था। यह भगवान की राजधानी है। यहाँ अनेक रत्न होंगें। उनमें से कोई भी मुझे परास्त कर देगा। यदि ऐसा हुआ तो?'
'तो तेरा, तेरे ज्ञान का, तेरे गुरुकुल का, तेरी नगरी का मान क्या रह जाएगा? तुम्हें ऐसी भूल नहीं करनी चाहिए थी।'
'अब मैं क्या करूँ? कैसे इसे रोकूँ?'
'तुमने यह घोषणा भगवान द्वारिकाधीश के प्रत्यक्ष की थी। तुम भूल रहे हो कि स्वयं भगवान ने भी तुम्हारी इस घोषणा को सुना होगा। यह वह कृष्ण है जो अपने भक्त के लिए उसके सारथी भी बन जाते हैं किंतु इसे पराजित नहीं होने देते।'
'किंतु मैं तो दुर्योधन नहीं हूँ।'
'किंतु तुम कृष्ण के शत्रु अवश्य बन गए हो।'
'वह कैसे?'
'जो कृष्ण के भक्तों का शत्रु होता है वह कृष्ण का शत्रु स्वतः हो जाता है, पंडित जगन्नाथ।'
पंडित जी भयभीत हो गए।
'अब मेरा क्या होगा?'
'एक ही उपाय है। तुम कृष्ण की शरण में चले जाओ। वह शरणागत वत्सल है।'
"हे कृष्ण, मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हारे शरण में हूँ।" पश्चाताप के अश्रु सहज ही बहने लगे। इस गंगा प्रवाह में बहते हुए पंडितजी का चित्त शुद्ध हो गया।

64

प्रातः काल का समय।द्वारिकाधीश के मंदिर में उपस्थित अभूतपूर्व जनसागर। प्रभु की प्रतिमा के सम्मुख खड़े दो विद्वान-आचार्य जगन्नाथ एवं गुरुकुल के प्राचार्य। स्पर्धा की प्रतीक्षा में द्वारका नगरवासी कुछ नूतन देखने की उत्कंठा में, उत्सुकता में, चिंता में अधीर हो रहे थे।
सबसे अधिक चिंता से ग्रस्त तो पंडित जगन्नाथ थे।रात्रि भर की अनिद्रा का प्रभाव उनकी आँखों में तथा मुख पर अनायास प्रकट हो रहे थे जिन्हें छिपाने का वह अपने कृत्रिम स्मित से प्रयास कर रहे थे। मन ही मन भगवान द्वारिकाधीश को प्रार्थना भी कर रहे थे। प्राचार्य ने उसे देख लिया था अतः उसे अधिक कष्ट हो उससे पूर्व वह बोले।
"नगरजनों, आज एक अद्भुत संयोग है। ज्ञान की नगरी काशी से पधारे विद्वान पंडित जगन्नाथ हमारे अतिथि हैं। भगवान महादेव काशी विश्वनाथ के प्रतिनिधि हैं आप। देव द्वारिकाधीश के समक्ष खड़े हैं आप। आप के यहाँ पधारने से आज देव एवं महादेव का मिलन हो गया गया है। आपका शास्त्रों का ज्ञान अतुलनीय है। दर्शन शास्त्र के प्रकांड ज्ञाता हैं आप। कल आपने दिए हुए आव्हान पर सारा नगर आज यहाँ उपस्थित है। आपने कहा था कि हमारे नगर से कोई व्यक्ति आपसे स्पर्धा करे, आपको परास्त करे। किंतु आप जैसे प्रखर मर्मज्ञ से स्पर्धा करना हमारा सामर्थ्य नहीं है ना ही यह उचित है। हम तो आपके आशीर्वाद के पात्र हैं।अतः मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप स्पर्धा ना करें।"
पंडितजी के मुख के भाव कुछ शांत हो गए। उसने स्मित दिया, जो नैसर्गिक था, सहज था। उसमें प्राचार्य के प्रस्ताव का समर्थन था।
"जो व्यक्ति यहाँ आकर शास्त्रों के मंत्रों का उच्चार करे उसे आप अपने ज्ञान से मार्गदर्शन दें, आपके महादेव भगवान विश्वनाथ के आशीर्वाद से आप उन्हें पुलकित करें। यही हमारी आपसे प्रार्थना है।"
रात्रिभर जिस चिंता से पंडित जी ग्रस्त रहे थे वह समाप्त हो गई। उसके मन में पश्चाताप होने लगा। उसने भगवान द्वारिकाधीश को देखा। उसे भी वही नटखट स्मित का आभास हुआ।
"मैं आपके प्रस्ताव का सम्मान करता हूँ, स्वागत भी करता हूँ। भगवान द्वारिकाधीश के मंदिर में, भगवान के सम्मुख, भगवान की नगरी के किसी नागरिक के मुख से मंत्रों को सुनना, उससे बड़ा सौभाग्य क्या हो सकता है!"
"तो प्रारम्भ करें?" पंडितजी ने मौन स्मित से अनुमति दी।

“कुमारी गुल, यहाँ आओ।” नाम सुनते ही प्रजाजनों में कुतूहल व्याप गया। पंडितजी स्तब्ध हो गए। भिड़ में से श्वेत वस्त्रों में सज्ज एक युवति प्राचार्य की तरफ़ बढ़ी। उसने दोनों को वंदन किया। एक तरफ़ खड़ी हो गई। पंडितजी गुल को विस्मय से देखने लगे। गुल के मुख की सौम्यता को देखकर पंडितजी को उसमें माता शारदा का दर्शन होने लगा। वह अनायास ही बोल पड़े, “बेटी, तुम मंत्रों का उच्चार करोगी?”
“जी।” इस एक शब्द में भी वह मोह था जिससे पंडितजी बच नहीं पाए। वह गुल के विषय में जानना चाहते थे तो उसे बातों में व्यस्त रखना भी चाहते थे।
“तो प्रथम अपना परिचय दो, पुत्री।”
“पंडितजी, इस कन्या की प्रस्तुति ही उसका परिचय होगा।यदि आप अनुमति दें तो प्रारम्भ करें।”
दोनों विद्वानों ने आसन ग्रहण किए।
“अवश्य। क्या प्रस्तुत करोगी?”
“मैं सर्व प्रथम अग्नि सूक्त प्रस्तुत करूँगी।आप आशीर्वाद दें।”
गुल ने ओहम का नाद किया। वह नाद अलौकिक था। इस नाद ने ही पंडितजी का मन हर लिया। गुल ने अग्नि सूक्त का पथ प्रारम्भ किया।
ओहम अग्नि मीडे पुरोहिताम यज्ञस्य देव मृत्विजम होतारम रत्न घातमम....
समग्र जन गुल के मीठे, सुंदर तथा रस भरे शुद्ध उच्चार को सुन मंत्र मुग्ध हो गए। जब गुल ने अग्नि सूक्त सम्पन्न किया तभी सभी की समाधि भंग हुई। अनायास ही सबके हाथों के करतल ने ध्वनि उत्पन्न कर दी।
“साधो, साधो।” पंडितजी के मुख से शब्द निकल पड़े।
जब करतल ध्वनि शांत हुआ तो पंडितजी ने पूछा, “गुल, तुमने अग्नि सूक्त से ही प्रारम्भ क्यों किया?”
“अग्नि स्वयं तो पवित्र है ही, अपने भीतर जिसको समाविष्ट करता है उसे भी वह पवित्र कर देता है। वह पावक है, तेजोमय है, शुद्ध है, श्वेत है, शुभ्र है और ऊर्जा तथा चेतना का भंडार है। शास्त्र कहता है कि संसार के सभी कार्यों को अग्नि को साक्षी मानकर करना चाहिए। अतः अग्नि देवता का आव्हान किया है मैंने।”
पंडितजी अभिभूत होकर अपने आसन से उठ गए।
“अग्नि की भाँति ही तुम्हारे विचार भी पवित्र हैं, शुद्ध हैं।”
“धन्यवाद पंडितजी।”
प्राचार्य ने पंडितजी की तरफ़ देखा।“कहिए, अब क्या सुनने की उत्कंठा है?”
“अब कुछ नहीं सुनना। कुछ पूछना अवश्य है।”
“जी।”
“केवल एक प्रश्न का उत्तर दो, पुत्री। इस सूक्त में दो शब्द आते हैं - एक ‘न’ तथा दूसरा ‘न:’। इन दोनों में क्या भेद है?”
“‘न’ शब्द का अर्थ है - नहीं। जब कि ‘न:’ शब्द का अर्थ है - हमारे लिए।”
“अद्भुत। अद्भुत।” बोलते बोलते पंडितजी की आँखों से हर्ष के अश्रु निकल पड़े। पंडितजी ईश्वर की प्रतिमा को अनिमेष देखते रहे, अश्रुधारा में नहाते रहे। उस धारा में उनका पूरा अभिमान पिघल गया। कुछ समय पश्चात जब उनके भावों का शमन हुआ तब उसने आसन ग्रहण किया।
गुल की सफलता से अनेक युवकों में उत्साह तथा विश्वास प्रकट होने लगा। कईयों ने तो पंडितजी से कहा, “हम भी कुछ प्रस्तुत करना चाहते हैं। आप हमारा भी आकलन करें।”
भाववश पंडितजी कुछ समय तक कुछ बोल नहीं सके। उसने प्राचार्य को संकेतों में कुछ कहा।
“नगरजनों , पंडितजी इस एक प्रस्तुति से ही प्रसन्न एवं संतुष्ट है।अब वह अन्य किसी की कोई भी परीक्षा नहीं करना चाहते।”
सब दृष्टि पंडितजी को देखने लगी। उसने प्राचार्य की बात का समर्थन करते हुए भाव मुख पर प्रकट किए। सभा शांत हो गई।
अपने भावों को किसी प्रकार नियंत्रित करते हुए पंडित जी बोले, “मैं आज अत्यंत प्रसन्न हूँ।भगवान द्वारिकाधीश के सानिध्य में तथा उसे साक्षी रखकर आप सब के समक्ष पुत्री गुल को एक सम्मान देना चाहता हूँ। आज से यह केवल गुल नहीं किंतु पंडित गुल के नाम से जानी जाएगी। क्या आप सब इसे स्वीकार करते हो?”
पंडितजी ने सभा को एक प्रश्न दे दिया। जिसके उत्तर में सभा ने करतल ध्वनियों के नाद से मंदिर को भर दिया। कुमारी गुल अब पंडित गुल बन गई।
पंडितजी की ललकार का सुखद अंत हो गया। इस पर द्वारका नगरी, मंदिर के पुजारी, प्राचार्य, ब्राह्मण एवम् स्वयं पंडितजी

के मन से एक भार उतर गया।
किंतु गुल के मन पर एक भार चड गया - पंडित गुल !
'मुझे इस शब्द की महिमा का ध्यान रखना होगा। मुझे इस विशेषण का संवर्धन करना होगा। मुझ पर एक महा दायित्व आ पड़ा है। है ईश्वर, हे द्वारिकाधीश। मुझे इतना सामर्थ्य प्रदान करना कि मैं इस मार्ग से कभी विचलित न होऊँ।' गुल ने हाथ जोड़ भगवान के दर्शन किए। उसे भगवान में एक दिव्य तेज का दर्शन हुआ। भगवान के अधरों पर स्मित था - भुवन मोहिनी स्मित।

65

"ओह, यह कथा है गुल से पंडित गुल बनने की?" गुल की कथा देख, स्तब्धता में उत्सव बोल पडा।
"एक अबोध कन्या की जीवन यात्रा ! जिसने उसे पंडित गुल बना दिया। इस यात्रा को देखते देखते रात्रि व्यतीत हो गई। ब्राह्म मुहूर्त प्रारम्भ हो चुका है।मैं इस प्रवाह में इतना प्रवाहित था कि मुझे समय का संज्ञान ही नहीं रहा। समय जैसे एक नदी हो और मैं उसमें स्नान करता रहा। इसमें डुबकी लगाने पर मैं निर्मल हो गया हूँ। गुल, तुम्हारा यह जीवन वृतांत ....।"
"उत्सव? तुम ने मुझे कुछ कहा? तुम रात्रि भर सोए नहीं?"
"गुल? तुम? तुम यहाँ क्या कर रही हो?" गुल को प्रत्यक्ष देख उत्सव अचंभित हो गया।
"मैं तो यहीं हूँ।"
"कब से?"
"अभी से। किंतु तुम रात्रि भर जागते रहे हो? क्या कर रहे हो?"
उत्सव की दृष्टि अनायास ही गगन के उस बिंदु को देखने लगी जहां उसने गुल के जीवन प्रवास को देखा था।

"गुल अभी तो इस बिंदु पर थी। और अभी प्रत्यक्ष यहाँ खड़ी है। तो उस बिंदु पर कौन है?" स्वतः बोल पड़ा। वह उस बिंदु को ध्यान से देखता रहा, "किंतु अब वहाँ कोई नहीं है, कुछ नहीं है। है केवल शून्य। रात्रि भर मैंने जो देखा था वह अब ब्रह्मांड के किस बिंदु के साथ तद्रूप हो कर विलीन हो गया?"
"उत्सव, क्या हुआ? तुम क्या बोले जा रहे हो? क्या तुम किसी दुविधा में हो?"
"मैं? यहाँ। नहीं, वहाँ ....।" उत्सव ने बोलना चाहा किन्तु बोल नहीं सका।
"रात्रि भर जागने से तुम थक़ गए हो केशव। अब विश्राम कर लो। मैं तारा स्नान आदि कर्म सम्पन्न कर आती हूँ।" गुल समुद्र की तरफ़ जाने लगी।
"रुको गुल।" वह रुक गई। प्रश्नार्थ भाव से उत्सव को देखा।
"अनेक रात्रि जागने पर भी मैं नहीं थकता किंतु कभी कभी बीते हुए वर्षों की यात्रा यदि एक ही रात्रि में देखनी पड जाय तो कोई भी मनुष्य थक सकता है।"
"तो तुम्हारे जीवन के व्यतीत हुए वर्षों के स्मरण ने तुम्हें अवश्य ही कोई गहन घाव दिए हैं जिसके कारण तुम थके हुए प्रतीत हो रहे हो।"
"नहीं गुल। बात मेरे व्यतीत वर्षों की नहीं है, अपितु तुम्हारे व्यतीत वर्षों की है।"
"मेरे वर्ष?"
"हाँ गुल। मनुष्य अपने विगत वर्षों से इतना नहीं थकता जितना वह अपने किसी के अज्ञात विगत वर्षों को देखता है, जानता है, जीता है तब थकता है।"
"तुम क्या कह रहे हो?"
"गुल, तुम्हारे जीवन के व्यतीत वर्षों को रात्रिभर मैंने देखा है।"
"मेरा जीवन? क्या देखा है मेरे जीवन के विषय में?"
"समुद्र के तट पर जन्मी एक अबोध कन्या का केशव से मिलन से लेकर पंडित जगन्नाथ के द्वारा तुम्हें पंडित गुल का सम्मान प्रदान करने तक के तुम्हारे व्यतीत वर्षों को मैंने देखा है।"
"कहाँ देखा? कैसे देखा?"
उत्सव ने क्षितिज के उस बिंदु की तरफ़ अंगुलि निर्देश किया जहां अभी अभी वह चित्रपट उसने देखा था।
"वहाँ देखो। उस बिंदु पर देखो।" गुल ने वहाँ देखा।
"वहाँ? वहाँ तो रात्रि के अंधकार के उपरांत कुछ भी नहीं है।"
"नहीं है, किंतु था। वहीं था। सब कुछ था। तुम्हारे जीवन की प्रत्येक क्षण, प्रत्येक घटना, प्रत्येक प्रसंग को मैंने साक्षात देखा है।"
"अवश्य ही तुम्हें कोई भ्रम हुआ है अथवा मेरा परिहास कर रहे हो।"
"नहीं गुल। किसी भ्रम से भ्रमित होने की अवस्था को मैं कहीं पीछे छोड़ चुका हूँ। और सन्यासी कभी किसी का परिहास नहीं करते। इन बातों को तुम भली भाँति जानती हो। मेरा विश्वास करो। मैंने सब कुछ देखा है।"
"तो कोई प्रमाण दो।"
"प्रत्यक्ष प्रमाण देता हूँ। तुम्हारे पिता की हत्या, माँ का घर छोड़ कहीं चला जाना, पंडित जगन्नाथ को 'न' तथा 'नः' का भेद बताना। कौन सी बात का प्रमाण रखूँ?"
गुल स्तब्ध थी।
"केशव के साथ कन्दराओं की गुफा में जाना, उसी गुफा में रक्षण लेकर रात्रि भर मृत्यु से बचना, केशव का बांसुरी बजाना? किस प्रमाण को प्रस्तुत करूँ?"
गुल के हृदय के स्पंदन तीव्र होने लगे।
"समुद्र को गीता का मर्म सुनाना अथवा केशव का तुम्हें उसके स्मृति चिन्ह के रूप में बांसुरी भेंट देना?"
"बस, उत्सव। मुझे कोई प्रमाण नहीं चाहिए। मैं स्वीकार करती हूँ कि तुम्हें मेरे जीवन की पूर्ण यात्रा विदित हो चुकी है। बस इतना बता दो कि तुम्हें यह सब किसने बताया?"
"वह तो मैं नहीं जानता। किंतु जिसे इस विषय में पूरा ज्ञान है, जिसने तुम्हारे जीवन की प्रत्येक क्षण को साक्षी भाव से देखा है उसने ही यह सब बताया होगा। बताया नहीं है, दिखाया है।"
गुल ने कोई उत्तर नहीं दिया।
"कौन हो सकता है, गुल?"
"समुद्र, तट, रेत, तरंगें, पवन, महादेव, द्वारिकाधीश, श्वेत पंखी आदि सभी ने मेरे जीवन को क्षण प्रतिक्षण देखा है। किंतु यह

सब कैसे बात कर तुम्हें सब कुछ बता सकते हैं?"
"कदाचित समय ही सभी के जीवन का प्रामाणिक साक्षी होता है। सम्भव है कि स्वयं समय ने स्वयं को रोककर मुझे यह सब दिखाया हो !"
"समय। उत्सव, समय की लीला बड़ी मायावी होती है।"
गुल ने गहन श्वास लिया, उत्सव ने स्मित किया।
"तुम मेरे जीवन के विषय में सब कुछ जान चुके हो ....।"
"सब कुछ नहीं। तुम्हारे पंडित होने तक ही जान सका हूँ मैं।पश्चात उसके क्या हुआ, मैं नहीं जानता। समय ने मुझे यह नहीं बताया।"
"तुम वह भी जानना चाहते हो?"
"नहीं। मुझे कोई रुचि नहीं है।"
"क़िसमें रुचि है तुम्हारी?"
"मुझे मेरे प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो उसमें। जो तुम्हारे पास है, जो तुम्हें मुझे देने हैं।"
"वह भी मिलेंगे। किंतु उससे पूर्व तुम्हें अपने विषय में बताना होगा। यहाँ आने का प्रयोजन कहना होगा।"
"यह समय तुम्हारे नित्य कर्म का है। यही तुम्हारी प्राथमिकता है।"
गुल चली गई। उत्सव सूर्योदय की प्रतीक्षा में क्षितिज के किसी बिंदु को देखता रहा।

66

सूर्योदय हुआ। गुल अपने नित्य कर्म पूर्ण कर, भड़केश्वर महादेव की आरती-पूजा-अर्चना कर लौट आइ। उस समय उत्सव वहाँ नहीं था। किंतु गुल की प्रतीक्षा में कुछ यात्री थे। प्रवासियों का समूह कई दिनों के पश्चात गुल के आँगन में आया था। पिछले दिनों यात्रियों का प्रवाह कुछ मंद हो गया था। जो यात्री भगवान के दर्शन करते थे उनमें से एकाद अंश यात्री ही गुल के पास आते थे। गुल यात्रियों को समुद्र की ध्वनि में श्री कृष्ण की बांसुरी की अनुभूति कराती थी ऐसी बात प्रचलित थी।जिन यात्रियों को यह अनुभूति करनी होती थी वह गुल के पास समुद्र तट पर आते थे।
अनेक दिवसों के पश्चात आठ दस यात्रियों का समूह आया था। गुल ने उनका स्वागत किया। द्वारका के विषय में समूह की रुचि अनुसार उससे बातें की, चर्चा की, प्रश्नों के उत्तर दिए। अंत में सभी को समुद्र के तरंगों की ध्वनि में श्री कृष्ण की बांसुरी की अनुभूति करवाई। प्रसन्न होकर यात्री चले गए।
गुल ने समुद्र तट पर दृष्टि डालकर उत्सव को खोजने की चेष्टा की। पूरे तट को देख लेने पर भी उसे उत्सव कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुआ। वह कक्ष में लौट आइ।
कक्ष में प्रवेश करते ही वह रुक गई, अचरज से देखने लगी। कक्ष के भीतर उत्सव था। वह अनेक पुस्तकों से घीरा हुआ था। वह किसी पुस्तक को ध्यान से पढ़ रहा था। गुल के आगमन से वह अनभिज्ञ था। वह पुस्तक पढ़ने में इतना लीन था जैसे कोई योगी समाधि में हो।
गुल ने उसकी क्रिया में व्यवधान ना हो इस हेतु अपने चरणों की ध्वनि को मंद कर दिया, रसोई की तरफ़ चली गई। महादेव के भोग को तैयार किया। जब रसोई से वह बाहर आइ तब भी उत्सव वहीं था। इस समय वह किसी पुस्तक को पढ़ नहीं रहा था। किसी पुस्तक को हाथ में पकड़े हुए, आँखें बंद किए हुए स्थिर बैठा था। जैसे कोई ऋषि किसी विषय पर गहन चिंतन कर रहा हो, समाधि ग्रस्त हो।
'पुस्तक पढ़ने से भी समाधि लग जाती है !'
गुल मन ही मन बोल पड़ी। उत्सव की उस अवस्था को चलित किए बिना ही उसने उस पुस्तक का नाम पढ़ा-कृष्ण। पुस्तक तथा उत्सव को वहीं छोड़कर वह महादेव भड़केश्वर को भोग लगाने चली गई।
जब वह लौटी तब उत्सव घर के बाहर बैठा था। मुख पर उत्साह का अभाव था। जैसे किसी बात से वह निराश हो।
"उत्सव किस बात पर दुखी हो?"
"दुखी हूँ, निराश हूँ, चिंतित भी हूँ।"
"इतने सारे नकारात्मक भाव? किस लिए, उत्सव?"
"मैं जिस प्रयोजन से यहाँ आया था, तुमसे मिला था उस प्रयोजन हेतु मैंने तुम्हारी अनुमति के बिना, तुम्हारी अनुपस्थिति में, तुम्हारे पुस्तकों को पढ़ने का कृत्य किया है।"
"मुझे इस बात का संज्ञान है, उत्सव।"
"इसलिए प्रथम तो मैं तुमसे क्षमा प्रार्थी हूँ।" उत्सव ने गुल के प्रति हाथ जोड़ दिए।
"क्षमा प्रदान की। चलो, आगे कहो।"
"इन पुस्तकों को देखते देखते कुछ पुस्तकों के कुछ अंश को देखा, पढ़ा, जाना, समझा। किंतु मेरे प्रश्नों के उत्तर इन पुस्तकों में भी नहीं मिले। अतः मैं निराश हूँ।" उत्सव ने गहन साँस ली।
"सभी प्रश्नों के उत्तर पुस्तकों में नहीं होते हैं, उत्सव। यदि ऐसा होता तो तुम यहाँ आते ही क्यों?"
"किंतु पुस्तकों में उत्तर क्यों नहीं होते?"
"एक तो तुमने पुस्तक के कुछ अंश ही पढ़ें हैं। किसी पुस्तक को जब तक पूरा नहीं पढ़ लेते, पुस्तक से तुम्हें कुछ नहीं प्राप्त होता है। दूसरा, पुस्तकों में उत्तर होते हैं किंतु सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं होते हैं। अतः नहीं मिलते हैं।"
"ऐसा क्यों, गुल?"
"पुस्तक किसी ना किसी मनुष्य के द्वारा लिखा जाता है। वह अपने भीतर उठे प्रश्नों के उत्तर खोजता है। उन्हीं प्रश्नों के उत्तर पुस्तक में देने का प्रयास करता है। प्रत्येक मनुष्य भिन्न है, प्रत्येक मनुष्यों के प्रश्न भी भिन्न होते हैं। तुम्हारे प्रश्न पुस्तक के रचयिता से भिन्न होंगे। जो प्रश्न उन्हें नहीं हुए उनके उत्तर वह कैसे देगा?"
"यह तो पुस्तक की सीमा है।"

“पुस्तक की नहीं, रचयिता की सीमा है। सीमा ही पुस्तक को सौंदर्य प्रदान करती है।”
“सीमा और सौंदर्य?”
“सीमा में ही सौंदर्य होता है। जैसे यह समुद्र। कभी अपनी सीमा को नहीं लांघता। यही इसका सौंदर्य है। यदि समुद्र सीमा में नहीं रहता तो क्या होता?”
“सीमा हीन समुद्र रौद्र लगेगा, सब नष्ट कर देगा। किंतु मेरे प्रश्नों के उत्तर कैसे मिलेंगे?”
“नियति ने उसका समय निश्चित कर रखा है। जिस क्षण वह क्षण जन्म ले लेगी, उसी क्षण तुम्हें जो अपेक्षित है वह प्राप्त हो जाएगा।”
“वह क्षण कब आएगी? क्या कभी आएगी भी? इस बात पर ही मैं चिंतित हूँ।”
“वह क्षण भी आएगी। चिंता के स्थान पर प्रतीक्षा करो।”
“उस बाबा ने तो कहा था कि मेरे प्रश्नों के उत्तर तुम्हारे पास है। तुम मेरे प्रश्नों के उत्तर कब दोगी?”
“यदि मेरे पास उत्तर हैं तो मैं अवश्य दूँगी। मुझे ही देना पड़ेगा। मैं चाहूँ तो भी, ना चाहूँ तो भी।”
“किंतु कब?”
“जब तुम अपने प्रश्नों से मुझे अवगत कराओगे तब। तुम्हारे प्रश्नों से अभी तक तो तुमने मुझे परिचय नहीं करवाया।”
“तुमने भी तो इस विषय में अभी तक मुझे पूछा नहीं।”
दोनों हंस पड़े।
“चलो, इस समय भोजन कर लो, भोजन से बड़ा कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं होता।”
दोनों ने भोजन कर लिया। उत्सव कहीं चला गया।

67

महादेव की संध्या आरती से जब गुल लौटी तब उत्सव तट पर खड़ा था। उसने गुल को निहारा। गुल ने उन आँखों में कुछ देखा।
“क्या इस समय तुम अपने प्रायोजन को व्यक्त करना चाहोगे?”
“मेरे प्रश्न इस नगरी के राजा से सम्बंधित है। तुम जिस राजा की प्रजा हो उस राजा के विषय में मेरे प्रश्नों का उत्तर तुम दे सकोगी? तटस्थ भाव से?”
गुल क्षण भर विचार के लिए रुकी। “मैं जानती हूँ कि तुम द्वारिकाधीश की बात कर रहे हो।”
“मैं जानता हूँ कि अपने राजा के विषय में कोई भी प्रजाजन तटस्थ नहीं रह सकता। उसके प्रति पक्षपात सहज होता है।”
“तुम कब से ऐसे भ्रम में जीने लगे हो, सन्यासी उत्सव?”
“यह सम्बोधन ने मुझे जागृत कर दिया है गुल। क्या मैं भी संसार की माया में घिरता जा रहा हूँ?”
“वह तो तुम जानो। किंतु यह बताओ कि इतने दिनों से तुम इस नगरी में हो। क्या कभी द्वारका नगरी में भ्रमण किया है? कभी मंदिर गए हो? भगवान द्वारिकाधीश के दर्शन किए हैं? प्रजाजनों से मिले हो?”
“नहीं। इनमें से कुछ भी नहीं किया है।”
“तुमने इतना समय व्यर्थ नष्ट कर दिया। और अब तुम अपने उत्तरों के लिए शीघ्रता चाहते हो। यह कैसा बालपन है?”
“सो तो है। मैं क्या करूँ?”
“प्रथम यह सब कर लो। पश्चात अपना प्रायोजन मेरे समक्ष प्रकट कर देना।”
“अभी, इसी समय क्यों नहीं?”
“दो कारण है, उत्सव। एक, जिस नगरी के राजा के विषय में उत्तर चाहते हो उस नगरी को देखे बिना ही, उस राजा के दर्शन किए बिना ही उस पर प्रश्न करना उचित नहीं होता है। दूसरा, सम्भव है कि तुम जब इस नगरी का भ्रमण करोगे, राजा के दर्शन करोगे, यहाँ के प्रजाजनों से मिलोगे, यहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति से परिचय करोगे तब तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर स्वतः तुम्हें प्राप्त हो जाए।सभी संशय स्वयं ही निर्मूल हो जाए।”

“तुमने मेरी अनेक भ्रमणाओं को निरस्त कर दिया। क्या तुम मुझे इस नगरी का भ्रमण करा सकती हो?”
“अवश्य। किंतु हमारे मध्य एक संधि होगी, तुम पर एक प्रतिबंध होगा।”
“केसी संधि? कैसा प्रतिबंध?”
“यही कि समग्र भ्रमण के समय तुम जो भी देखोगे, जो भी सुनोगे, जो भी अनुभव करोगे वह तुम अपने दृष्टिकोण से ही करोगे। इन सबका आकलन करने में तुम मेरी सहायता नहीं लोगे। ना ही तब तुम मुझे मेरा दृष्टिकोण पूछोगे।”
“इससे क्या होगा?”
“तुम जो भी अनुभव प्राप्त करोगे वह मेरे विचारों से मुक्त होगा, मेरे अभिप्रायों से प्रभावित नहीं होगा। जो भी होगा वह तुम्हारा होगा। स्वयं का होगा। बोलो स्वीकार्य है?”
“जी।”
“कल प्रातः हम चलेंगे।”

68

सूर्य ने अवनी पर प्रवेश करने की सज्जता कर ली थी।कुछ ही क्षणों में वह द्वारका नगरी को अपनी रश्मियों से प्रकाशित कर देगा। सूर्य के आगमन से पूर्व स्वयं स्फुट मद्धम मद्धम प्रकाश अपना अस्तित्व प्रकट कर चुका था।
उत्सव उसी प्रकाश को निहार रहा था।अनिमेष दृष्टि से उसने किसी एक बिंदु पर ध्यान केंद्रित किया था।वह सूर्य के आगमन का बिंदु था। जिस प्रकार वह उसे देख रहा था उससे प्रतीत हो रहा था कि उसे उस बिंदु से सूर्य की प्रतीक्षा हो, नूतन प्रभात की प्रतीक्षा हो। वही आशा एवं अपेक्षा थीं उन आँखों में।
'द्वारका नगरी के भ्रमण के उपरांत मुझे मेरे प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो जाएँगे। अथवा कोई भी उत्तर ना मिले। अथवा कुछ और नए प्रश्न जन्म ले लें। किंतु एक आशा, एक अपेक्षा से द्वारका नगरी के भ्रमण को उत्सुक हूँ। गुल की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।
मेरी दृष्टि भले ही सूर्य पर है किंतु मेरे कान समुद्र की तरफ़ है। मैं समुद्र तट से उत्पन्न प्रत्येक ध्वनि को ध्यान से सुन रहा हूँ। इसी तट पर गुल के आने से जो ध्वनि उत्पन्न होगी वही मेरी प्रतीक्षा का अंत करेगी।'
'किंतु तट पर से अभी तक कोई ध्वनि क्यों नहीं आ रही? केवल समुद्र की ध्वनि ही सुनाई दे रही है।'
'समुद्र की ध्वनि ! इस ध्वनि में आज कोई भिन्न स्वर मिले हुए हैं। कोई विशेष ध्वनि सर्जन कर रहा है यह अरब सागर। इस ध्वनि में उत्सुकता है, प्रतीक्षा है, आशा है, अपेक्षा है, उतावलापन है, जिज्ञासा है, कौतुक है, कुतूहल है। ना जाने कितने भाव इस ध्वनि में मिश्रित है।'
'यह ध्वनि मेरे भीतर एक ऊर्जा को उत्पन्न कर रही है जो इससे पूर्व कदाचित ही मेरे भीतर जन्मी थी।'
"उत्सव चलें?"
गुल ने उत्सव को कहा किंतु उत्सव ने नहीं सुना। गुल ने दो तीन बार कहा किंतु शून्य। उत्सव ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। गुल उत्सव के सम्मुख आकर बोली, "उत्सव .....।"
उत्सव तंद्रा से जागा, "हाँ, हाँ... । कहाँ?"
"कहाँ हो तुम, उत्सव? मेरी बात पर इस प्रकार प्रश्न क्यों कर रहे हो? हमने द्वारका नगर के भ्रमण को जाने की योजना बनाई है। क्या वह भी विस्मरण हो गया?"
उत्सव ने स्मित दिया और गुल के साथ चल पड़ा द्वारका नगरी की तरफ़। सूरज प्रकट हो गया।
"गुल, रुको।" गुल रुक गई।
"क्या हुआ? कहीं विचार बदल तो नहीं गया?"
उत्सव समुद्र की तरफ़ मुड़ा , "गुल, इस समुद्र को देखो। इसकी ध्वनि को ध्यान से सुनो।" उत्सव ने अपनी आँखें तथा कान समुद्र के प्रति लगा दिए।
"क्या है, उत्सव?"
"इस समुद्र की ध्वनि में एक विशेष स्वर है, उसे तुम सुनो।"
गुल ने समुद्र की तरफ़ कान लगाया, "मुझे कुछ विशेष नहीं लग रहा। तुम ही कहो, क्या बात है?"
"गुल, समुद्र कह रहा है कि मुझे भी तुम अपने साथ नगर भ्रमण को ले चलो। हमसे वह विनती कर रहा है, आग्रह कर रहा है। क्या तुम्हें भी यही लग रहा है?"
गुल ने ध्वनि को पुन: ध्यान से सुना। "हाँ उत्सव, मुझे भी यही प्रतीत हो रहा है।"
"और अब उसकी लहरों को देखो। हमारे साथ चलने की उत्सुकता प्रकट हो रही है उनकी चंचलता में।"
गुल ने लहरों को देखा, "किसी बालक की भाँति समुद्र अपनी तरंगों के माध्यम से हमारे साथ चलने की चेष्टा कर रहा है।"
"अर्थात् समुद्र हमारे साथ चलने की इच्छा कर रहा है। क्यों?"
"इच्छा रखने में क्या है? इच्छा किसी भी बात की की जा सकती है। किंतु उसकी पूर्ति की सम्भावना को समझे बिना इच्छा करना अनुचित है। किंतु समुद्र ऐसी इच्छा क्यों रखता है उसका उत्तर है मेरे पास।"
"इसके लिए भी मुझे आग्रह करना पड़ेगा तब कहोगी क्या?"

“सुनो। जो मेरा तर्क है वह सम्भव है मिथ्या तर्क हो। किंतु तुम उसे सुनो, धैर्य से। यदि तर्क अनुचित लगे तो उसे भूल जाना।”
“ठीक है।”
“जब कृष्ण ने इस द्वारका नगर को बसाया होगा उससे भी पूर्व यह समुद्र यहाँ स्थित है। उसके तट पर आनेवाले व्यक्तियों से वह सदैव द्वारका के वैभव को सुनता रहा है। इतने युगों से यह नगर, यह मंदिर तथा यह समुद्र अपने अपने स्थान पर स्थित हैं। द्वारका के सबसे निकट समुद्र है। किंतु इस समुद्र का दुर्भाग्य तो देखो कि आज तक वह इस नगरी को नहीं देख पाया। उसके वैभव का अनुभव नहीं कर पाया। भगवान के दर्शन नहीं कर पाया। इतने युगों से उसने ना जाने लाखों बार इस नगरी को देखने की मनसा की होगी। किंतु उसकी विवशता को देखो, समझो। उसके विरह को जानो। कितनी पीड़ा होगी इस विरह में? प्रत्येक क्षण वह इस विरह में रोया होगा। इतना विशाल, इतना प्रचंड होते हुए भी कितना विवश है यह समुद्र! वह स्वयं तो नगर में जा नहीं सकता। किंतु इच्छा तो प्रकट कर सकता है, विनती तो कर सकता है, आग्रह तो कर सकता है।”
“तो आज ले चलते हैं अपने साथ।”
“समुद्र जानता है कि एक सन्यासी का मन उसकी बातों से द्रवित हो जाएगा और उसे ले चलेगा अपने साथ। इसी लिए तो वह तुम्हें आग्रह कर रहा है। किंतु, किंतु समुद्र को किसी वचन देने से पूर्व यह समरण रहे कि यह सम्भव नहीं है।”
“क्यों, गुल?”
“नगर प्रवेश करने के लिए समुद्र को अपनी सीमाओं के बंधनों को तोड़ना होगा। समुद्र को अपनी सीमा कभी नहीं लांघनी चाहिए।”
“समुद्र अपनी सीमा क्यों नहीं लांघ सकता?”
“स्मरण है तुम्हें? तुम ही ने कहा था कि सीमा विहीन समुद्र रौद्र होता है।”
“तो? रौद्र तो महादेव भी लगते हैं।”
“समुद्र हो या महादेव, जब रौद्र हो जाते हैं तो विनाशक बन जाते हैं। सभी सर्जन का विसर्जन कर देते हैं। तुम्हें स्मरण होगा कि स्वयं कृष्ण की रची हुई द्वारका समुद्र में, इसी समुद्र में डूब गई है।”
“मुझे यह ज्ञात है। समुद्र के भीतर इसके असंख्य प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं।”
“तो क्या तुम जानते हो कि द्वारका समुद्र में कैसे डूबी?”
“नगर भ्रमण की इच्छा से सीमा उल्लंघन किया होगा इस समुद्र ने। नगर प्रवेश किया होगा और डूब गई द्वारका नगरी। सुवर्ण नगरी द्वारका!”
“सत्य में ऐसा ही हुआ होगा। अब कहो ले चलें इस समुद्र को अपने साथ?”
“नहीं, कदापि नहीं। मैं तुम्हारे तर्क से सहमत हूँ। हमें इसे यहीं छोड़कर जाना होगा। किंतु तुम इतना सोच कैसे लेती हो, गुल?”
“अब अविलम्ब, किसी भी वार्तालाप के बिना प्रस्थान करें?”
समुद्र को वहीं छोड़कर दोनों चल पड़े। निराश, दुखी समुद्र ने अपने सुर बदल लिए। उसकी ध्वनि में किसी बालक के रुदन के स्वर घुल गए।

69

“भ्रमण से पूर्व भगवान के मंदिर में जाकर उसके दर्शन कर लें?” गुल ने प्रस्ताव रखा।
उत्सव ने कुछ क्षण पश्चात कहा, “नहीं, नहीं।”
“क्यों? द्वारका भ्रमण का उससे उत्तम प्रारम्भ क्या हो सकता है?”
“उत्तम अवश्य हो सकता है किंतु मैं मंदिर दर्शन करके उस राजा के प्रभाव में आना नहीं चाहता। ईश्वर के दर्शन सबसे अंत में करूँगा।”
“अंत में क्यों?”
“अंत समय में दर्शन से मोक्ष मिलता है ऐसा सुना है।” उत्सव अपने शब्दों पर, तो गुल उत्सव के शब्द एवं हाव भाव पर हंस पड़ी।
दोनों ने मंदिर जाते मार्ग को छोड़ दिया। अन्य मार्ग से नगर प्रवेश कर लिया। नगर की वीथियों में जीवन प्रारम्भ हो रहा था, मंद गति से। मंगला आरती के दर्शन से स्वयं को धन्य मानते हुए कई प्रवासी तथा नगरजन मंदिर से लौट रहे थे। कोई अभी भी मंदिर की तरफ़ जा रहा था। कुछ बालक अध्ययन हेतु पाठशाला के मार्ग पर निकल पड़े थे। व्यापार अभी प्रारम्भ नहीं हुआ था। किसी गृह से भजन की मधुर ध्वनि आ रही थी। कहीं कोई पीताम्बर धारण कर मुख से मंत्रों का शुद्ध उच्चार कर रहे थे। अनन्य वातावरण था नगरी की वीथियों का। एक के पश्चात दूसरी वीथियों से भ्रमण करते हुए दोनों नगर का अवलोकन कर रहे थे। उत्सव उस को अपनी मति अनुसार समझने का यत्न कर रहा था। उसमें अपने प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास कर रहा था किंतु उसके मुख भाव से यही प्रतीत हो रहा था कि उसे अभी कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ है। किंतु उसने आश नहीं खोई थी।
चलते चलते उत्सव के कानों ने कोई भिन्न ध्वनि सुनी। उसने उसे ध्यान से सुना।
“श्री राम जय राम जय जय राम।”
उसने उसे पुन: सुना। पुन: पुन: सुना।
“श्री राम जय राम जय जय राम।
श्री राम जय राम जय जय राम।
श्री राम जय राम जय जय राम। ………”
अनेकों बार पुनरावृत होता स्वर उसे अपनी तरफ़ आकृष्ट करने लगा। उत्सव के मन में कुतूहल हुआ,
‘कृष्ण की नगरी में राम नाम?’ उसकी जिज्ञासा जागृत हो गई। उसके मन में उन ध्वनि के उद्गम स्थान तक जाने की उत्कंठा जगी।
“गुल, यह ध्वनि तुमने सुना?”

“श्री राम जय राम जय जय राम?”
“हाँ, वही। कहाँ से आ रहे हैं यह स्वर? मुझे वहाँ ले चलो।”
गुल वहाँ जाने लगी। दोनों उस स्थान पर आ गए। अब ध्वनि पूर्णतः स्पष्ट था। ध्वनि के संग संगीत भी सुनाई देने लगा।
“उत्सव, यह राम धुन मंदिर है। यह धुन अविरत दिवस रात्रि चलती रहती है।”
“दिन रात? अविरत? यह कैसे होता है? कब से होता है?”
“यह राम धुन का प्रारम्भ बारह दिसम्बर उन्नीस सौ सडसठ के दिन हुआ था। जो आज तक चल रहा है।”
“यह तो अविश्वसनीय है!”
“यहाँ से दूर एक जामनगर नाम का नगर है वहाँ तो उससे भी तीन वर्ष पूर्व राम धुन का प्रारम्भ हुआ था।”
“इतने वर्षों से रामधुन कभी नहीं रुकी? इससे बड़ा आश्चर्य मैंने कभी नहीं देखा। तुम जो कह रही हो वह क्या सत्य है या कोई किंवदंती?”
“सत्य, शत प्रतिशत सत्य। आओ, मैं तुम्हें उस व्यक्ति से परिचय करवाती हूँ जो इस राम धुन के प्रथम दिवस से आज तक अविरत हो रही राम धुन के साक्षी रहे हैं। इस राम धुन का हिस्सा भी हैं।”
गुल उत्सव से उनका परिचय करवाते हुए बोली, “यह अश्विनभाई है। इस राम धुन के विषय में तुम्हारी जो भी जिज्ञासा है उसको तुम यहाँ प्रकट कर सकते हो।”
“यह राम धुन अविरत चल रही है उस बात पर मुझे संदेह नहीं है।”
“तो अन्य क्या जिज्ञासा है आपकी?” अश्विनभाई ने पूछा।
“इसका प्रारम्भ किसने करवाया? किसके विचार बिज का यह वट वृक्ष है? मैं उसके विषय में जानना चाहता हूँ। मुझे उससे ....।”
“आओ मेरे साथ। मैं उस व्यक्ति के दर्शन करवाता हूँ।”
“क्या वह व्यक्ति साक्षात मुझे मिलेंगे?”
“यदि श्रद्धा हो तो स्वयं ईश्वर भी साक्षात मिलते हैं।”
‘ओह, यह श्रद्धा !’ उत्सव मन ही मन बोला।
अश्विनभाई उसे एक कक्ष में ले गए। उस व्यक्ति के मिलन हेतु उत्सुक उत्सव अधीर हो गया।
“कहाँ है वह?” कक्ष में प्रवेश करते ही उत्सव पूछ बैठा।
“यहीं है, इसी कक्ष में।”
कक्ष के वातावरण ने उत्सव को प्रभावित कर दिया। ‘इस कक्ष की तरंगों में कुछ है, कुछ भिन्न है।’ स्वगत बोल पड़ा।
“इस कक्ष में क्या है यह? क्या उस व्यक्ति की आभा का यह प्रभाव है?”
“हाँ। उस व्यक्ति की उपस्थिति यहाँ सदैव रहती है। यह है वह व्यक्ति जिसने राम धुन का बीज बोया था।” अश्विनभाई ने काँच से मढ़ी एक छवि के प्रति संकेत किया। उत्सव उसे देखते ही विस्मित हो गया।
“यही है क्या?”
“हाँ। यही है। कोई संदेह?”
“वह कहाँ है? बुलाइए उन्हें। मुझे उनसे बात करनी है।”
“यह सम्भव नहीं है क्यों कि वह अपना पार्थिव शरीर त्याग चुके हैं।”
“क्या? कब? यह कैसे हो सकता है?”
“क्यों नहीं हो सकता? प्रत्येक व्यक्ति को अपना शरीर त्यागना पडता है, इनको भी। इसमें कोई अपवाद नहीं है। यह सत्य तो आप जैसे सन्यासी भली भाँति जानते हैं।”
“आपका तात्पर्य है कि यह व्यक्ति मृत है?”
“हाँ।”
“यह मिथ्या है, गुल।”
“क्यों मिथ्या है? इनकी मृत्यु को अनेक वर्ष हो गए हैं।”
“यह सम्भव नहीं है, गुल।यह असम्भव है, असम्भव।”
“क्या प्रमाण है तुम्हारे पास, उत्सव?” गुल ने पूछा।
“इनकी मृत्यु को मैंने अपनी आँखों से देखा है। उनके पार्थिव शरीर का समुद्र में, समुद्र के जल में विसर्जन मैंने स्वयं अपने हाथों से किया है। और आप कह रहे हो कि प्रेम भिक्षुजी महाराज की मृत्यु नहीं हुई है?”
“उत्सव, क्या बात है? तुम जो कह रहे हो उस बात में कुछ तो रहस्य है। मैं जानती हूँ कि तुम बिना किसी आधार के कोई

तर्क नहीं रखते। किंतु प्रेमभिक्षु जी महाराज इस जगत का त्याग कर कब के चले गए हैं यह निर्विवाद सत्य है।"
"क्या कोई मृत व्यक्ति तुम्हें सदेह कभी मिल सकता है? एक बार नहीं, तीन तीन बार? क्या वह तुम्हें मर्गदर्शन दे सकता है?"
"नहीं। कोई मृत व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। यह प्रकृति का नियम है।" अश्विनभाई ने कहा।
"मैं प्रेमभिक्षु जी महाराज को मिल चुका हैं। गुल, तुम्हें स्मरण होगा कि जब मैं द्वारका में आया था तब किसी बाबा ने मुझे कहा था कि तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर इसी नगरी में मिलेंगे। उन्हीं ने मुझे तुम्हारे पास भेजा था। उन्होंने ही कहा था कि पंडित गुल के पास मेरे प्रश्नों का समाधान है। स्मरण है तुम्हें, गुल?"
"भली भाँति स्मरण है मुझे।"
"वह बाबा और कोई नहीं थे, यही थे। प्रेमभिक्षु जी महाराज।"
"क्या बात कर रहे हो उत्सव? यह असम्भव है।" अश्विनभाई ने कहा।
"उत्सव, समुद्र के किस भाग पर वह तुम्हें मिले थे?" गुल ने पूछा।
"जहां अनेक मछुवारें रहते हैं।"
"रुपेण बंदर! उस भाग को रुपेण बंदर कहते हैं।" अश्विनभाई ने आगे कहा, "रुपेण बंदर वही स्थान है जहां प्रेमभिक्षु जी महाराज के पार्थिव शरीर का समुद्र के जल में विसर्जन किया गया था। उनकी इच्छा थी कि उनके शरीर को अग्निदाह ना दिया जाए किंतु समुद्र में प्रवाहित कर दिया जाय जिससे समुद्र के जीव उस शरीर से अपना भोजन प्राप्त कर सके।"
"हे राम। यह कैसा संयोग है! मेरे पर प्रेमभिक्षु जी की कृपा बरस गई। मैं न तो कभी उनसे मिला हूँ, न ही कभी उनके विषय में मुझे कोई ज्ञान है। तथापि मुझ पर उनकी अनुकम्पा कैसे?"
"कारण तो मुझे ज्ञात नहीं है। संतों का चरित्र ही ऐसा होता है कि वह सदैव सुपात्र पर अपनी कृपा बरसाते रहते हैं- अपने जीवन काल में भी तथा जीवन के पश्चात भी। गुल, तुम तो इन बातों से परिचित हो।"
"हाँ, दादा। उत्सव इतना भाग्यवान है कि उसे तीन तीन बार स्वयं प्रेमभिक्षजी के दर्शन हुए, उनसे भेंट हुई, उनका मार्गदर्शन मिला। मैं तो जन्म से ही यहाँ हूँ किंतु मेरे पर उनकी ऐसी कृपा कभी नहीं हुई। मैंने तो उसे जीवित भी नहीं देखा, ना ही जीवन के उपरांत। क्या मैं ऐसी कृपा के योग्य नहीं हूँ?"
"बेटी, तुम पर स्वयं भगवान द्वारिकाधीश की कृपा है। अन्य किसी की कृपा गौण हो जाती है।"
अश्विनभाई के शब्दों से वह संतुष्ट हो गई। उत्सव आश्चर्य में डूबा ही रह गया। उसके सारे तर्क उसे इस स्थिति को समझा नहीं सके।
"उत्सव, चलो अब कहीं अन्यत्र चलें?"
"नहीं गुल, अब मैं कहीं नहीं जाना चाहता। चलो लौट चलें।"

70

लौटकर दोनों समुद्र तट पर आ गए। समुद्र का बर्ताव कुछ भिन्न दृष्टिगोचर हो रहा था। बालक की भाँति वह कुछ कहना चाहता था किंतु उसकी भाषा न तो गुल को, न ही उत्सव को समज आ रही थी।
"उत्सव, तुम नगर भ्रमण अधूरा छोड़कर क्यों लौट आए?" गुल ने अपनी भाषा में मौन तौड़ा। उत्सव ने कोई उत्तर नहीं दिया। गुल ने पुन: पूछा तब उत्सव बोला,"मैं विचलित हो गया हूँ, गुल। जो देखा, जो सुना, जो अनुभव किया पश्चात उसके मन का विचलित होना सहज है ना?"
"उत्सव, तुम तो धैर्य को धारण करके रखो। मानसिक स्थिरता तुम्हारा गुण रहा है। विपरीत परिस्थितियों में भी तुम स्थितप्रज्ञ रहते हो तो इस बात पर विचलित क्यों हो?"
"मन जिस बात को स्वीकार कर रहा है, बुद्धि उसे अस्वीकार कर रही है। वास्तव में जो हुआ है वह सत्य है किंतु विज्ञान उसे मिथ्या कहता है।मन, बुद्धि, विज्ञान, सत्य, मिथ्या आदि के इस द्वंद्व से मैं ....।"
"तुम इस द्वंद्व में क्यों पड़ते हो?"
"तो क्या करूँ?"
"बैठो यहाँ। शांत चित्त से बैठ जाओ।"
उत्सव शिला पर बैठ गया।
"अब इस समुद्र को देखो, उसे सुनो। कुछ कहना चाहता है वह ऐसा तुम्हें प्रतीत नहीं होता?"
"मुझे ऐसा नहीं लगता।"
"उत्सव, भीतर के कोलाहल को शांत करोगे तो बाहर की ध्वनि सुनाई देगी। हो सकता है कि उस ध्वनि में कोई कर्णप्रिय संगीत हो।"
"हो तो यह भी सकता है कि वह भीतर के कोलाहल से भी अधिक कर्कश हो।"
"अवश्य हो सकता है। किंतु इस बात का ज्ञान कब होगा? जब तक तुम उस ध्वनि को सुनोगे नहीं, तुम नहीं जान पाओगे। यदि तुम्हें वह ध्वनि कर्कश लगे तो तुम अपने भीतर के कोलाहल के पास पुन: चले जाना। मैं नहीं रोकूँगी।"
"किंतु ...।"
"कभी तो इस किंतु को छोड़कर शांत होने का प्रयास करो। मैं भी शांत हो जाती हूँ।"
गुल शांत हो गई, मौन हो गई। धीरे धीरे उत्सव ने भी अपने भीतर के कोलाहल को शांत कर दिया। उसे समुद्र की ध्वनि सुनाई देने लगी। उसने उस पर ध्यान दिया। उसे लगा जैसे बांसुरी बज रही हो। वह उस सुरों में आँखें बंद कर खो गया। एक अंतराल के पश्चात उत्सव ने आँखें खोली तब गुल वहीं थी, मौन। क्षितिज में कुछ देख रही थी, निश्चल प्रतिमा की भाँति।
"गुल, भोजन कब मिलेगा?" उत्सव के शब्दों से गुल चकित हो गई।

“भोजन? उत्सव तुम भोजन करना चाहते हो?”
“हाँ, गुल।”
“एक योगी भी भूखा होता है! एक योगी को भी भोजन की इच्छा होती है!”
“नहीं गुल। आज मैं एक योगी की भाँति नहीं किंतु साधारण मनुष्य की भाँति जीना चाहता हूँ।भूख, क्षुधा, तृषा आदि का अनुभव करना चाहता हूँ। उसे तृप्त करने की मनसा रखता हूँ। क्या मुझे भोजन मिलेगा?”
“अवश्य।” गुल घर के भीतर गई, भोजन लेकर आइ। उत्सव ने भूख से ग्रस्त किसी साधारण मनुष्य की भाँति भोजन किया। मुख पर साधारण मनुष्य जैसे तृप्ति के भाव प्रकट हो गए।
“गुल, आज का भोजन अत्यंत स्वादिष्ट था।”
“एक योगी कभी स्वाद की प्रशंसा नहीं करता, उत्सव।”
“मैंने कहा ना कि इस समय मैं योगी नहीं साधारण मनुष्य हूँ। साधारण मनुष्य तो स्वाद की प्रशंसा कर कर सकता है ना?”
“जी, कर सकता है। किंतु आज तुम इस रूप में क्यों हो?”
“मैं जिस बात से विचलित था उस बात का समाधान योगी बनकर मैं खोजूँगा तो भटक जाऊँगा। किंतु साधारण मनुष्य बनकर मैं प्रयास करूँगा तो अवश्य मुझे प्राप्त होगा।”
“सामान्य मनुष्य और योगी में क्या अंतर है, गुल?”
“जहां कोई प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता वहाँ सामान्य मनुष्य ईश्वर पर श्रद्धा रखता है और उसे ईश्वर की लीला मानकर स्वीकार कर लेता है। यही कारण है कि कुछ बातों पर संसार के मनुष्य विचलित नहीं होते।”
“तुम्हारा इस प्रकार साधारण मनुष्य बनना मुझे पसंद आया।” गुल हंस पड़ी, उत्सव भी।
“चलो, साधारण मनुष्य वाला साधारण प्रश्न पुछती हूँ। क्या उसका उत्तर दोगे?”
“प्रयास करूँगा, पूछो।”
“जितना भी नगर भ्रमण किया है उस आधार पर हमारी यह द्वारका नगरी तुम्हें कैसी लगी?”
कुछ क्षण विचार के पश्चात उत्सव बोला, “मैं अनेक नगरियों में भ्रमण कर चुका हूँ। काशी जैसी मोक्ष नगरी में तो अनेक दिनों तक रहा हूँ। वही पंडित जगन्नाथ जी की काशी नगरी। किंतु द्वारका नगरी मुझे सबसे भिन्न लगी। कुछ साम्यता भी है, किंतु भिन्नता अधिक है।”
“विस्तार से कहो, मैं उत्सुक हूँ।”
“इस नगरी में ना तो आसक्ति है ना ही विरक्ति। ना एक तरफ़ मृत्यु है ना दूसरी तरफ़ जीवन। ना कोई मृत्यु की प्रतीक्षा में है ना ही मृत्यु को देखकर पुन: जीवन जी लेने की तीव्र जिजीविषा है। यहाँ ना तो कोई बाल विधवा है ना कोई दुर्दशा से पीड़ित कोई व्यक्ति। नदी तट पर जप, तप, साधना, यज्ञ, समाधि, योग आदि करता कोई मुनि, योगी या योगिनी नहीं है। ना कोई इंद्रियों का दमन करता है न स्वयं को अकारण कष्ट देकर स्वयं पर अत्याचार करता है। तितिक्षा से ग्रस्त कोई व्यक्ति नहीं देखा। ना ही किसी को मोक्ष पाने की शिघ्रता है। ना कोई पाखंड है न कोई ज्ञानी होने का दम्भ करता है।”
“ऐसा किस नगरी में देखा है?”
“सभी अन्य नगरी में देखा है। किंतु बनारस जिसे हम काशी कहते हैं, जो मोक्ष की नगरी मानी जाती है उसमें कुछ विशेष है। मोक्ष की इस नगरी में मरने के लिए लोग दूर दुर से आते हैं। केवल मृत्यु पाने के लिए! ऐसे मनुष्यों से भरी है काशी। लोगों का विश्वास है कि काशी में मृत्यु होने से मोक्ष मिलता है। यही कारण है कि लोग यहाँ मरने की मनसा करते हैं। किंतु, मृत्यु भी कहाँ मिलती है? मिलती है केवल मृत्यु की प्रतीक्षा। इस प्रतीक्षा में उन लोगों ने काशी को मृत्यु की नगरी बना दी है। जो व्यक्ति जीना चाहता है वह भी उन्हें देखकर मृत्यु का विचार करने लगता है, मृत्यु की बातें करने लगता है। लोगों के मुख पर स्थित मृत्यु की प्रतीक्षा के भाव मृत्यु से साक्षात्कार से भी अधिक भीषण लगते हैं। जैसे काशी ने जीना छोड़ दिया हो।”
गुल धैर्य से उसे सुनती रही। अल्प विराम के पश्चात उत्सव बोला, “जो लोग काशी से दूर कहीं अन्यत्र मृत्यु को पाते हैं उसे भी अग्निदाह के लिए काशी लाया जाता है। मणिकर्णिका घाट पर दिन रात अविरत एक साथ अनेक चिताएँ जलती रहती है। चिता का वह अग्नि कभी शांत नहीं होता। अखंड स्मशान !”
“यह तो भयावह है, उत्सव।”
“उससे भी बढ़कर एक और बात है काशी की। सुनना चाहोगी, गुल?”
गुल की मौन सहमती जानकर उत्सव आगे कहने लगा।
“एक विचित्र सी बात है। मृत्यु की इस नगरी पर न जाने कितने कवियों ने, लेखकों ने अनगिनत रचनाएँ रची है। प्रत्येक सर्जक काशी को विषय बनाकर सर्जन करता रहा है। तो नए नए सर्जक की मनसा भी काशी पर ही सर्जन करने की रहती

है। कहानी, उपन्यास, कविताएँ, ज्ञान दर्शन के लेख, नाटक, संगीत, नृत्य, चित्र, चल चित्र आदि जो भी विधाएँ हैं सभी में बनारस पर रचनाएँ अवश्य प्राप्त हो जाएगी।"
"तो इसमें आपत्ति क्या है? विचित्रता कहां है?"
"विचित्रता इसमें नहीं है। क्या काशी में केवल मृत्यु ही है? जहां मनुष्य रहते हैं वहाँ मृत्यु के उपरांत, मृत्यु से पूर्व जीवन होता है। उस जीवन को सर्जक क्यों नहीं देख पाता? क्यों कोई सर्जक जीवन के विषय में नहीं सोचता? सर्जन करता? क्या काशी के उपरांत अन्य किसी नगरी में ऐसा कुछ भी नहीं कि जिसे विषय बनाकर सर्जन किया जाय?"
"संस्कृत साहित्य में उज्जयिनी नगरी से सम्बंधित अनेक रचना प्राप्त है। वर्तमान में मुंबई नगरी पर भी प्रचुर कला सर्जन उपलब्ध है।"
"यह सत्य है, गुल। किंतु मेरा बिंदु भिन्न है। द्वारका नगरी पर कौन सी कला का सर्जन तुमने देखा?"
"कदाचित एक भी नहीं।"
"ऐसा क्यूँ? क्या इस नगरी में इतना सामर्थ्य नहीं है कि उस पर सर्जन न हो सके? काशी में ऐसा क्या है जो प्रत्येक सर्जक उसके पीछे पड़ा है?"
"उत्सव, शांत हो जाओ।आज प्रथम बार तुम्हें किसी बात पर इतना उत्तेजित देख रही हूँ। इतनी स्पृहा क्यों?"
"आज मैं योगी उत्सव नहीं साधारण मनुष्य उत्सव हूँ।"
"जिस प्रकार तुमने काशी का वर्णन किया है उस आधार पर मुझे प्रतीत होता है कि काशी में जीवन से अधिक मृत्यु की छाया विद्यमान है। मृत्यु तथा मोक्ष ही काशी की गतिविधि का केंद्र है। किंतु मेरा प्रश्न द्वारका नगरी पर था। उसका उत्तर दो।"
"द्वारका में जो भी है वह जीवन है, जीवन से जुड़ा है, मृत्यु से नहीं। यहाँ का प्रत्येक जन, जीवन से स्नेह करता है, मृत्यु की प्रतीक्षा नहीं। मोक्ष कभी भी इस नगरी का लक्ष्य नहीं रहा। इस शब्द के मोह से भी यहाँ के जन मुक्त है। ऐसा क्यूँ है, गुल?"
"यह नगरी भगवान कृष्ण की नगरी है। एक राजा की राजधानी है। और राजा भी कैसा! परम ऐश्वर्यवान, परम शक्तिशाली। एक ऐसा राजा जिसने अपने जीवन की प्रत्येक क्षण को पूर्ण रूप से जिया हो, अपनी इच्छानुसार जिया हो। अपने राजा के इस जीवन का प्रभाव आज भी यहाँ है। इस प्रभाव में जीने वाले व्यक्ति मृत्यु एवं मोक्ष की चिंता से मुक्त है। जब तक राजा रहेगा, यह प्रभाव भी रहेगा। अतः यहाँ के कण कण में, व्यक्तियों में जो भी है वह जीवन है, केवल जीवन।"
उत्सव गहन श्वास के पश्चात बोला,"इस जीवन पर सर्जन क्यों नहीं होता? सभी कलाकार केवल मृत्यु को ही देख रहे हैं। मृत्यु के प्रति ही क्यों आकृष्ट है? इस जीवन के प्रति आसक्त क्यों नहीं है? जीवन के प्रति इतनी उपेक्षा क्यूँ?"
"जीवन पर सर्जन करने से पूर्व जीवन जीना पडता है। जीवन जीने का धैर्य, संयम, साहस, संघर्ष इन कलाकारों में कहाँ? वह तो क्षण प्रतिक्षण मर रहे हैं - सहज रूप से अथवा कृत्रिम रूप से। जीवन जीने का तथा जीवन पर सर्जन करने का उनमें सामर्थ्य ही कहाँ?"
"अब मैं कभी कोई पुस्तक लिखूँगा तो जीवन पर लिखूँगा। नृत्य करूँगा तो जीवन से सभर करूँगा। चित्र रचूँगा तो जीवन के रंगों से उसे छलका दूँगा। संगीत सर्जन करूँगा तो उसमें मृत्यु का एक भी करूण स्वर नहीं रखूँगा। कविता करूँगा तो जीवन की ऊर्जा से भरे भाव एवं शब्द होंगे उसमें।"
" यह तो सुंदर विचार है। कब से प्रारम्भ कर रहे हो अपने सर्जन का?"
"अभी तो नहीं।"
"अभी क्या करना चाहते हो?"
"इस क्षण मैं कहीं जाना चाहता हूँ। मैं चलता हूँ। महादेव की संध्या आरती से पूर्व लौट आऊँगा।"
उत्सव समुद्र तट पर चलने लगा। कुछ ही क्षण में वह गुल की दृष्टि क्षेत्र से दूर निकल गया।

71

संध्या आरती सम्पन्न कर जब गुल लौटी तो उत्सव आ चुका था। गुल की प्रतीक्षा कर रहा था।
“गुल, मुझे तुमसे कुछ बात कहनी है। कुछ समय बैठ सकती हो?”
गुल घर के बाहर ही रुक गई, “प्रथम यह कहो कि कहाँ गए थे?”
“वही तो बताना चाहता हूँ, सुनो। मैं रूपेण बंदर गया था। प्रेमभिक्षुजी से मिलने।”
“तुम्हें मिले क्या? मैं भी मिलना चाहती हूँ। तुम बता कर जाते तो मैं भी चलती। मुझे भी ...।”
“गुल, बाबा मुझे नहीं मिले। मैं ने लम्बी प्रतीक्षा की । मैं समुद्र के उस भाग के प्रत्ये क स्थान पर गया । किंतु वह कहीं नहीं मिले।”
“अर्थात् वह वहाँ नहीं है। उन दिनों उनका तुमसे मिलना मिथ्या था, भ्रम ही था, उत्सव।”
“ना भ्रम था, ना मिथ्या था। ना ही कोई स्वप्न था। वह सत्य था, शुद्ध सत्य।”
“कैसा सत्य?”
“वहाँ मैं मछुआरों से मिला। प्रेमभिक्षुजी के विषय में पूछा। प्रथम तो सभी ने मुझे प्रवासी होने पर उत्तर देना टा ल दिया। किंतु जब मैंने अपना अनुभव बताया तो एक एक कर सब अपने अनुभव कहने लगे। उनका कहना है कि प्रेमभिक्षुजी यहाँ के निवासी सभी व्यक्तियों से किसी ना किसी रूप में, कहीं ना कहीं, कभी ना कभी एक बार तो अवश्य ही मिले हैं। सभी ने बाबा के साक्षात्कार को स्वीकार किया है।”
“तुम्हारा अभिप्राय क्या है।”
“इसे मैंने संत कृ पा तथा आशीर्वाद के रूप में स्वीकार कर लिया है।”
“चलो, यह बात यहीं पर पूर्ण हो गई।”
“नहीं गुल। बात यहाँ पूर्ण नहीं हुई है, यहीं से प्रारम्भ हो रही है।”
“अब क्या है , उत्सव? क्या कोई नई बात है?”
“प्रेमभिक्षुजी ने कहा था कि मेरे प्रश्नों के उत्तर तुम्हें, अर्थात् पंडित गुल को देने हैं। तो अब मेरा विश्वास दृढ़ हो गया है कि तुम ही उत्तर दोगे। तुम्हारे अतिरिक्त कोई यह उत्तर नहीं दे पाएगा। और एक बात, मुझे मेरे उत्तर आज ही चाहिए। मैं अब अधिकप्रतीक्षा नहीं कर सकता।”
“अर्थात् तुम वास्तव में एक सा धारण मनुष्य का जीवन जी रहे हो। उसी प्र कार अधीर हो रहे हो। योगी उत्सव को त्याग दिया है तुमने, उत्सव।”
“धन्यवाद, गुल। अब मेरे उत्तर दो, जो तुम्हारे पास है। विलम्ब असह्य हो रहा है।”
“यदि यही नियति है तो यही सही। आज ही सही । किंतु तुम्हा रे प्रश्नों से पूर्व मैं कहना चाहती हूँ कि
तुम यहाँ क्यों आए हो? यदि तुम जीवन, मृत्यु, ज्ञान, धर्म, कर्म, मोक्ष, वेद, वेदांत, दर्शन आदि के विषय में जिज्ञासा लेकर आए हो तो तुम्हारा यहाँ आना सार्थक नहीं है। इसके लिए तु म काशी जा सकते हो, हिमालय जाकर किसी समर्थ ऋषि से मिलो। मेरे पास यहाँ इस हेतु कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। मैं इन विषयों की अधिकारी नहीं हूँ।”
“नहीं, गु ल। इन सभी में से किसी में मेरी रु चि नहीं है। मेरी जिज्ञासा भिन्न है। जिस समय तुम मेरी जिज्ञासा को जानने के लिए सज्ज होजाओ उस समय की प्रतीक्षा में अत्यंत धैर्य से इतने दीनों से समय व्यतीत करता रहा हूँ। किंतु मैं आज मेरी जिज्ञासा तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत करूँगा। यदि तुम उसे संतुष्ट करने की इच्छा नहीं रखोगी तो मैं आज ही द्वारका का त्याग कर दूँगा।”
“प्र श्न मेरी इच्छा का नहीं है, उत्स व। प्रश्न उस उचित योग का है क्यों कि प्रत्येक वस्तु का, प्रत्येक बात का जन्म लेना निश्चित समय पर निर्धारित होता है। उस समय को योग कहते हैं। यदि वह योग, वह संयोग आज, इसी समय बन रहा है तो इसी समय तुम्हारी जिज्ञासा संतुष्ट हो जाएगी। और यदि इस हेतु नियति ने मुझे चुना है तो मेरे माध्यम से ही वह कार्य होगा। किंतु तुम कुछ भी कहो उससे पूर्व तुम्हें एक कार्य करना होगा।”
“गुल, मुझे टालने की कोई नहीं योजना तो नहीं?”
“नहीं, तुम ऐसा क्यों कह रहे हो? ”
“इतने दिनों से में यहाँ हूँ, इतनी बार मैं अपने प्रश्नों के उत्तर के विषय में तुम से बात कर चुका हूँ। किंतु तुमने अभी तक एक बार भी यह जानने की उत्सुकता प्रकट नहीं की कि मेरे प्रश्न क्या है? कलभीजब मैंने मेरे प्रश्न तुम्हारे समक्ष रखना चाहा तब

भी तुमने मुझे द्वारका भ्रमण के नाम पर टाल दिया। अब कुछ और बहाना? वास्तव में तुम चाहती क्या हो? क्या प्रेमभिक्षुजी के वचनों को मिथ्या सिद्ध करना चाहती हो?"
"यह विचार किसी योगी के नहीं हो सकते, उत्सव। निश्चय ही यह जन साधारण उत्सव के विचार है, ना कि उस उत्सव के जो मुझे प्रथम मिलन में मिला था।"
"उससे क्या अंतर पड़ेगा, गुल?"
"इसी लिए तो कहती हूँ कि तुम्हें अपने प्रश्नों को प्रकट करने से पूर्व एक कार्य करना पड़ेगा।"
"कहो, कैसा कार्य?"
"तुम्हें अपने मूल रूप को प्रकट करना होगा।"
"अर्थात्?"
"अपने जीवन के विषय में मुझे बताना होगा। वास्तव में तुम कौन हो? क्या हो? तुम्हारी अवस्था क्या है? तुम्हारे प्रश्न कौन से उत्सव के हैं? यह सभी जानने के पश्चात ही मैं कुछ कर सकूँगी। क्या तुम अपने विषय में बताने को तत्पर हो?"
"यह बात है? मैं मेरे जीवन के विषय में सब कुछ बताने को सज्ज हूँ। क्या तुम सज्ज हो?"
"अवश्य, उत्सव।" गुल ने कहा।
"नहीं, उत्सव। अपने विषय में तुम कुछ नहीं बताओगे। जो भी बताना होगा, मैं बताऊँगा।"
गुल तथा उत्सव ने किसी अन्य व्यक्ति के शब्दों को सुना। दोनों ने दशों दिशाओं में देखा किंतु वहाँ उन दोनों के अतिरिक्त कोई नहीं था।
"गुल, यह कौन बोला?"
"मुझे भी आश्चर्य हो रहा है, उत्सव। कौन हो सकता है?"
पुन: आकाशवाणी हुई, "मैं ही बताऊँगा। तुम चाहो अथवा नहीं किंतु मैं ही यह कार्य करूँगा। तुम्हें मेरे माध्यम से ही देखना होगा।"
"किंतु आप हैं कौन? कहाँ हैं आप? कृपया प्रकट हो जाओ।" दोनों ने हाथ जोड़ विनती की।
"मैं वही हूँ जिसने गुल का जीवन उत्सव के समक्ष रखा था। अब मैं उत्सव का जीवन तुम्हारे समक्ष रखूँगा। चलो, सज्ज हो जाओ। दूर समुद्र के ऊपर आकाश पर ध्यान केंद्रित करो।"

72

दोनों ने अदृश्य ध्वनि की आज्ञा का पालन किया। जिस बिंदु पर दोनों ने दृष्टि रखी वहाँ दृश्य दिखाई देने लगा -
एक विशाल सभागृह भारत भर के विश्व विद्यालयों के प्रतिनिधि छात्रों से पूर्ण भरा हुआ था। प्रत्येक छात्र के मन में चेतना की एक नूतन लहर उठ रही थी। प्रत्येक छात्र स्वयं को उस अभियान का हिस्सा मान रहे थे जो देश में एक क्रांति के लक्ष्य से प्रारम्भ किया गया था। यौवन अपने परम उत्साह पर था। देश विदेश के संचार माध्यमों के प्रतिनिधि भी वहाँ उपस्थित थे। भारत ही नहीं, अन्य कई देशों की दृष्टि इस महा सम्मेलन पर केंद्रित थी। देश विदेश के कई गुप्तचर छात्र के भेष में सभा का हिस्सा बन गए थे।
विदेशों के गुप्तचरों का अपना उद्देश्य था तो देश के गुप्तचरों का अपना। सभी चाहते थे कि अपना अपना उद्देश्य सफल हो और बाक़ी सभी के उद्देश्य विफल हो। जाने कैसी कैसी मनसा भरी थी उन मस्तिष्कों में!
सभा का प्रारम्भ हुआ। औपचारिकताओं के पश्चात दूर सुदूर से आए छात्र प्रतिनिधियों ने ऊर्जा से भरे सूत्रों का उच्चार किया, भाषण दिए। उनके प्रत्येक शब्द पर यौवन उत्तेजित होता था और प्रत्येक यौवन मन में क्रांति के लिए स्वयं को समर्पित कर देने का संकल्प करता था। सभा की ऊर्जा, सभा की चेतना, सभा का यौवन, सभा का वैचारिक स्तर अपने चरम पर आ चुका था। उसी समय एक नव युवक ने मंच पर प्रवेश किया। आयु उसकी केवल उन्नीस वर्ष !अब तक भाषण दे चुके सभी की आयु बाइस तेइस से अधिक की ही थी।
यह युवक सबसे युवा था। मुख पर भिन्न आभा थी। उसकी चाल में यौवन एवं परिपक्वता का अद्भुत संतुलन था। आँखों में तेज था। गाल पर नव स्फुरित दाढ़ी थी। हाथ में उसके तीन पुस्तकें थी। उसके व्यक्तित्व में कोई मोहक तत्व था अतः उसके प्रवेश करते ही सभी का ध्यान अनायास ही उस तरफ़ आकृष्ट हो गया। जो भी उसे देखता था वह अवाक् हो जाता था। उसे देखते ही रह जाता था। क्षणभर में समग्र सभा के आकर्षण का केंद्र बन गया वह युवक। सारा सभागार उस युवक को सुनने के लिए अधीर हो गया, शांत हो गया। उसने अपना स्थान ग्रहण किया। सभी उत्सुकता से उसके शब्दों की प्रतीक्षा करने लगे। वह बोला।
“साथियों। मैं मेरा परिचय केवल एक शब्द में देता हूँ - उत्सव। यही नाम है मेरा। नाम के उपरांत व्यक्ति का जो परिचय होता है उसे उसका चरित्र कहते हैं, व्यक्तित्व कहते हैं। यह व्यक्तित्व, यह चरित्र व्यक्ति के विचारों से स्वतः प्रकाशित होकर विश्व के समक्ष प्रस्तुत होता है। अतः अब मैं जो भी कहूँगा, मेरे जो भी विचार रखूँगा उसके आधार पर मेरा परिचय प्राप्त कर लेना। यह मैं आपके विवेक पर छोड़ता हूँ।
मुझ से पूर्व अनेक नेताओं ने अपनी बात पूर्ण दृढ़ता से रखी है। जिसका सारांश मैं दो चार पंक्तियों में पुनरुक्त करना चाहूँगा। सब का तात्पर्य है कि -
भारत, जिसमें हम सब रह रहे हैं, उस भारत नाम का कोई देश है ही नहीं, ना कभी था। इसमें अनेक राज्यों को बलपूर्वक

जोड़ा गया है और इसे एक राष्ट्र, एक देश के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। होना चाहिए था कि इन सभी राज्यों को स्वतंत्र देश बना दिया जाय तथा उसे भारत नाम के राष्ट्र से मुक्त कर दिया जाय। आप भी चाहते हैं ना कि हमें मुक्ति मिले, स्वतंत्रता मिले?"
एक स्वर में सभा गृह गूंज उठा -
लेकर रहेंगे मुक्ति, हमें चाहिए मुक्ति।
लेकर रहेंगे मुक्ति, हमें चाहिए मुक्ति। ……
समग्र सभा आंदोलित हो उठी। करतल ध्वनि प्रवाहित होने लगी। कुछ क्षण पश्चात उन्माद शांत हो गया। उत्सव ने पुन: कहना प्रारम्भ किया।
"आप का कहना है कि इस देश में ईश्वर के नाम पर, धर्म के नाम पर अफ़ीम पिलाया जा रहा है। ईश्वर, जिसका अस्तित्व ही नहीं है उसके नाम पर मंदिरें हैं। उस में उस तथाकथित ईश्वर की पूजा होती है। मंदिरों में दूषण है। हमारे धर्म ग्रंथ जैसे श्रीमद भगवद गीता, मनु स्मृति, वेद, वेदांग, उपनिषद, दर्शन शास्त्र आदि में मन घड़ंत बातें लिखी गई हैं। हमें उन बातों का अनुसरण करने को बाध्य किया जा रहा है। पूजा, ध्यान, योग आदि सब छलावा है।
हमारे देश में ग़रीबी है, कृषकों तथा श्रमिकों की स्थिति दयाजनक है। यहाँ भूख है। नौकरी एवं व्यवसाय के पर्याप्त अवसर नहीं है। देश में न्याय व्यवस्था जैसा कुछ नहीं है। यहाँ भीड़ का साम्राज्य है। अल्पसंख्यों को भयभीत किया जा रहा है। देश का संविधान भय में है, कोई उसका अनुपालन नहीं कर रहा । देश में जंगल राज है। यही आज की स्थिति है। हमें एक नयी क्रांति करनी है। इन सभी समस्याओं का अंत केवल क्रांति से ही हो सकता है। यही हम चाहते हैं ना?"
उत्सव ने सभा को एक प्रश्न दे दिया। सभी ने उस प्रश्न को पकड़ लिया।
"हाँ, हाँ। हम सब यही चाहते हैं। यही हमारी मनसा है, यही हमारा लक्ष्य है।"
पुन: वही क्रांति के स्वर गूंजने लगे।
लेकर रहेंगे मुक्ति, हमें चाहिए मुक्ति।
लेकर रहेंगे मुक्ति, हमें चाहिए मुक्ति। ……
पुन: कुछ क्षण आंदोलित होने के पश्चात सभागार शांत हो गया।
"मैं इन बातों से सहमत हूँ।" उत्सव ने आगे कहा, "किंतु मेरे कुछ प्रश्न हैं। हमें क्या चाहिए? कैसे चाहिए? किससे चाहिए? इन प्रश्नों के उत्तर के बिना हम अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते। केवल भाषणों से क्रांति नहीं होती। इन लक्ष्यों को पाने के लिए हमने कौन सा पथ निश्चित किया है? इस विषय में कदाचित किसी ने कुछ नहीं कहा। मैं प्रयास करता हूँ। आप कहते हो कि भारत एक देश है ही नहीं। चलो यही सत्य मान लेते हैं। दूसरी तरफ़ कहते हो कि हमारे देश में यह है, वह है, आदि आदि। देश के संविधान का पालन नहीं हो रहा है।
किसी भी क्रांति का प्रथम लक्षण है- लक्ष्य का ज्ञान होना। हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि किसके विरुद्ध क्रांति करना चाहते हैं? क्रांति किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं किंतु किसी व्यवस्था के विरुद्ध, किसी दूषण के प्रति की जाती है। सरकार देश चलाती है। संविधान के अनुसार देश चलाती है। और हमारा यह विश्वास है कि यह सरकार संविधान को नष्ट कर रही है। यदि इसी तर्क को स्वीकार कर लें तो अर्थ यह हुआ कि हम संविधान का पालन कराना चाहते हैं। संविधान का स्वीकार कर रहे हैं हम। संविधान के स्वीकार से स्वतः देश का भी स्वीकार कर रहे हैं हम। हमें कुछ भिन्न सोचना होगा। भिन्न करना होगा। अन्यथा हमें यह कभी नहीं कहना होगा कि भारत एक देश है है नहीं। आप किस बात को स्वीकारते हो?"
उत्सव के प्रश्न से सभा दो हिस्सों में विभाजित हो गई। कुछ समय अव्यवस्था के पश्चात सभा को शांत किया गया। उत्सव मंच पर अभी भी स्थित था।
"मंदिरों में दूषण है।मंदिरों में दूषण कौन करता है? मंदिर जाने वाले भक्त ही ना? आप में से अनेक व्यक्ति मंदिर जाते होंगे। आपके माता पिता, दादा दादी भी मंदिर जाते रहे हैं। क्या आपने कभी कोई दूषण किया? आपके माता पिता, दादा दादी ने दूषण किया?" उत्सव के प्रश्न से सभी मौन थे।
"आपने कभी किसी को मंदिर में दूषण करते देखा है? यदि देखा है तो क्या आपने उसे रोका है? रोकने का साहस दिखाया है? नहीं ना? यह भी एक क्रांति है। क्रांति साहस माँगती है, वीरता माँगती है।
कोई ईश्वर को नहीं मानता। यह उनका व्यक्तिगत विषय है। यह आस्था अन्य से क्यों अपेक्षित है आपको? यदि आप को कोई भोजन नहीं पचता तो आप उसका त्याग करें। किंतु दूसरों को उस भोजन ना खाने के लिए क्यों बाध्य करना है। जो पचा सकता है उसे खाने दो। यह आपकी व्यक्तिगत समस्या है, सार्वजनिक नहीं है।"
उत्सव के शब्द ने सभा के कुछ छात्रों को विचार करने पर विवश कर दिया। तो कथित छात्र नेताओं को प्रतीत होने लगा कि उत्सव उनकी योजना के बिंदुओं को अपने तर्क से काट रहा है। वह विचलित होने लगे।

“आप ईश्वर को नहीं मानते किंतु अल्लाह के अस्तित्व को मानते हो, जीसस को भी स्वीकार करते हो। यह कैसी मान्यता है आपकी? यदि ईश्वर नहीं है तो कोई भी नहीं है।
अल्प संख्यकों पर अत्याचार होने की बात से आपका तात्पर्य देश के मुसलमानों से है। तो इसे स्पष्ट शब्दों में क्यों नहीं कहते? क्रांति करनी है तो स्पष्ट कहने का साहस भी तो रखो। जिसमें ऐसा साहस नहीं है वह क्रांति से बचें। मुझमें यह साहस है, क्या आप में है?”
पुन: सभा गूंज उठी -
लेकर रहेंगे मुक्ति, हमें चाहिए मुक्ति।
लेकर रहेंगे मुक्ति, हमें चाहिए मुक्ति। ...
“इस देश में भूख है, ग़रीबी है, व्यवसाय का अभाव है। सत्य है। इसका उपाय होना आवश्यक है। ग़रीबी क्यों है? भूख क्यों है? व्यवसाय - नौकरी क्यों नहीं है? कारण यही है कि प्रत्येक छात्र पढ़कर बाबू बनना चाहता है। कोई उद्योग का साहस क्यों नहीं करता?
एक बाबू केवल घर के चार सदस्यों का पेट भर सकता है। किंतु एक छोटा सा उद्योग अनेक परिवार को जीवन दे सकता है। हमने कभी अपने व्यवसाय के विषय में सोचा ही नहीं। हमें सब कुछ चाहिए सरकार से। हमें कुछ काम नहीं करना है। और हमें सरकार का, देश का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं है। तथापि हमें सब कुछ चाहिए इस देश से, सरकार से। यह कैसी विडम्बना है हम क्रांतिविरों की?”
कुछ छात्रों ने संकेतों से बात की। उत्सव के मित्रों ने उन संकेतों को पकड़ लिया।
उत्सव अभी भी भाषण दे रहा था, “हमारे धर्म ग्रंथों में मन घड़ंत बातें हैं। किसी विषय का विरोध करने हेतु भी हमें उस विषय का ज्ञान होना चाहिए। उस पर संशोधन कर उसकी त्रुटि खोजनी चाहिए। यदि हमें ही उस विषय पर कोई ज्ञान नहीं है तो हम किस तर्क से उसका विरोध करेंगे? वह विरोध टिकेगा कितना? हम केवल विरोध करना चाहते हैं, विरोध करना नहीं जानते। उसके लिए हमें इन ग्रंथों का ज्ञान होना आवश्यक है। क्या हमने इन ग्रंथों को पढ़ा है? क्या हम जानते हैं कि इन ग्रंथों में क्या है? हम किस बात का विरोध कर रहे हैं?”
उत्सव ने अपने हाथों में रखी गीता तथा उपनिषद की पुस्तक सभा को दिखाई।
सभा उन पुस्तकों को देखे उससे पूर्व ही उत्सव के मित्रों ने उसे पकड लिया, उठाया और दूसरे मार्ग से सभागृह से बाहर ले आए। वहाँ खड़ी एक गाड़ी में उसे बिठा दिया और चलने लगे।
“यह क्या कर दिया आपने? मुझे इस प्रकार कहाँ और क्यों ले जा रहे हो? मुझे मेरी बात पूर्ण करने देते ...।”
“उत्सव, पीछे देखो। एक बड़ी काली गाड़ी हमारे पिछे आ रही है। हमें सर्व प्रथम उस गाड़ी की दृष्टि से कहीं दूर चला जाना होगा। अन्यथा .....।”
“अन्यथा क्या?”
“उत्सव, तुम इस खेल के नए खिलाड़ी हो। इस खेल के नियम तुम्हें ज्ञात नहीं है। तुम जो कह रहे थे वह बातें इन कथित क्रांतिकारियों की योजना से विपरीत है। तुम्हारी बातों से छात्रों में दो हिस्से हो गए हैं। कई छात्र इन तथाकथित नेताओं की मोहिनी से जाग रहे हैं। हो सकता है वह सब इनका साथ ना देकर इस आंदोलन से स्वयं को पृथक कर ले। ऐसा हुआ तो इन नेताओं का व्यापार बंद हो जाएगा। ऐसा वह होने नहीं देंगे। अतः वह तुम्हें मार देना चाहेंगे वह लोग।”
“क्या? ऐसा कैसे कर सकते हैं?”
“ऐसा अनेको बार कर चुके हैं। और उन सभी की मृत्यु का दोष सरकार पर डाल देते हैं यह लोग।”
“ओह, ईश्वर !”
“यह लोग क्रांतिकारी नहीं है किंतु विघटनकारी तत्व हैं। वह सब कुछ कर सकते हैं। तुम बस अपना जीवन बचा लो। अरे, गाड़ी अधिक गति से चलाओ।”
गाड़ी की गति बढ़ गई। उस काली गाड़ी को भ्रमित करने के लिए मित्र ने गाड़ी को जंगल के मार्ग पर मोड़ दी। जंगल में एक स्थान पर रोककर बोले, “उत्सव, इस नदी को देख लो। तुम्हें इस नदी में कूदना है। किसी अन्य स्थल पर चले जाना है। हम तुम्हें गोली मारने का नाटक करेंगे। तुम हमसे बचते हुए नदी में कूद जाना। हमारी गोलियों की ध्वनि सुनकर वह काली गाड़ी इस तरफ़ आएगी। हम कह देंगे कि उत्सव गोली से मर गया, नदी में डूब गया।”
“ओह, मित्र। तुम्हारा धन्यवाद। जीवन रहा तो पुन: मिलेंगे।”
“चलो शीघ्रता से उतरो। भागो।”
उत्सव भागा, नदी में कूद गया। पश्चात तीन गोली चली। वह लोग उत्सव को मृत मानकर लौट गए।

73

नदी के प्रवाह में बहता हुआ उत्सव किसी अज्ञात स्थल पर पहुँच गया। चारों दिशाओं में घना जंगल था। तीन दिन तक उस जंगल में वह भटकता रहा। उसे कोई दिशा नहीं सुझ रही थी। वह जंगल, जैसे अखंड जंगल हो। कहीं कोई छौर नहीं दिख रहा था।

तीसरे दिन सांध्य समय जंगल के मार्ग से जाती हुई साधुओं की एक टोली उत्सव ने देखी। किसी मनुष्य को देखकर वह अल्प मात्रा में भय से मुक्त हुआ। वह उन साधुओं के पीछे पीछे चलता रहा। रात्रि होने पर साधुओं ने एक स्थान पर विश्राम किया। उत्सव उनके सामने प्रकट हो गया, "मुझे ....।"

"वत्स, बैठो। तुम्हें यहाँ चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। सर्व प्रथम भोजन कर लो। पश्चात बातें करेंगे।"

भोजन से उत्सव तृप्त हो गया। "महाराज, मैं कुछ कहना चाहता हूँ।"

"सुनो वत्स, रात्रि हो गई है। तुम अधिक थके हुए प्रतीत होते हो। तुम्हें विश्राम करना होगा।"

"किंतु प्रातः काल से पूर्व आप यहाँ से गमन कर जाओगे तो मैं मेरी बात ....।"

"तुम यदि चाहो तो हमारे साथ चल सकते हो। मार्ग में कहना जो कुछ तुम कहना चाहते हो।"

साधु सभी सो गए, थका हुआ उत्सव भी।

रात्रि के अंतिम प्रहर में साधुओं की क्रियाओं की ध्वनि से उत्सव जाग गया। साधुओं की क्रिया कलापों का अवलोकन करने लगा। सभी ने प्रातः कर्म समापन होने पर मंत्रोच्चार प्रारम्भ किया-

"ओहम मित्राय नम: ।

ओहम सूर्याय नम: ।

ओहम आदित्याय नम: ।"

'यह तो सूर्य का मंत्र प्रतीत होता है। सूर्योदय से पूर्व ही सूर्य वंदना?' उत्सव अपने प्रश्न में था तभी अन्य साधुओं ने यज्ञ की वेदी सज्ज कर ली। कुछ ही क्षणों में यज्ञ आरम्भ हो गया। वेदों की ऋचाओं से देवताओं का आवाहन हुआ, अग्नि को आहुतियाँ दी गई। जंगल की हवा में यज्ञ की सुगंध प्रसर गई।

यज्ञ के पश्चात गुरु ने वेदाभ्यास करवाया। सूर्योदय होते ही साधु उत्तर दिशा की तरफ़ चलने लगे। उत्सव जो अभी तक सारी क्रियाओं को प्रतिमा की भाँति देख रहा था, साधुओं के साथ चल पड़ा। उसे कुछ कहना था उस बात को वह भूल गया। साधुओं के साथ चलता रहा।

अनेक दिवसों की यात्रा के पश्चात साधुओं के साथ उत्सव हिमालय के किसी शिखर पर स्थित किसी आश्रम तक आ गया। यात्रा के समय में उत्सव ने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया। उससे उत्सव की रुचि शास्त्रों के प्रति बढ़ गई। अतः चार वर्ष तक वह उसी आश्रम में रुका, अनेक शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। पश्चात गुरु आज्ञा से वह काशी चला गया।काशी में वह प्रतिदिन गंगा तट पर भ्रमण करता।

ऐसे ही एक दिन भ्रमण करते हुए उसने एक कौतुक देखा। एक विदेशी युवति गंगा के भीतर बैठकर, हाथ में संस्कृत - हिंदी में लिखी श्रीमद् भगवद गीता की पुस्तक लेकर पढ़ रही थी। गंगा का शांत एवं पवित्र प्रवाह उसके तन को स्पर्श करता हुआ बह रहा था। उस स्पर्श से निर्लेप होकर वह गीता जी को पढ़ रही थी। उस दृश्य को देखकर उत्सव निर्लेप ना रह सका, विचलित हो गया।

'एक विदेशी युवति, हाथ में गीता जी, जिसकी भाषा मेरे देश की। मन जिसका गीता में और तन गंगा में ! भारत की संस्कृति के प्रति इस विदेशी की कैसी दृढ़ आस्था? और मेरे ही देश में, मेरे ही धर्म के प्रति इतनी उदासीनता? कुछ तो मोह है इस पुस्तक में, इस नदी में, इस मिट्टी में, इस देश की हवा में जो इस युवति को यहाँ तक खिंच लाया है। किंतु हमारे देशवासी इस मोहक तत्व के मोह से अलिप्त हैं।'

वह उसी तट पर रुक गया। युवति की तपस्या पूर्ण होने की प्रतीक्षा करने लगा। लम्बे अंतराल तक वह युवति गीता जी को

पढ़ती रही। उत्सव की प्रतीक्षा लम्बित हो गई।
'इस प्रकार इतने लम्बे समय की प्रतीक्षा करना भी तपस्या है। इस तपस्या का मुझे कोई सकारात्मक फल अवश्य मिलेगा।'
उत्सव भी उस तपस्या का हिस्सा बन गया। जब युवति की तपस्या पूर्ण हुई तब उत्सव की तपस्या भी सम्पन्न हुई।
युवति गंगा से निकलकर तट पर आइ तो उत्सव ने उससे कहा, "हरे कृष्ण।"
"हरे कृष्ण।" उत्सव को प्रत्युत्तर मिला।
"आप हिंदी एवं संस्कृत पढ़ लेती हैं अतः मैं आपसे हिंदी में ही सीधा सीधा एक प्रश्न पूछता हूँ। ऐसा कौन सा तत्व है जो आप को इस धरती के मोह में यहाँ तक खिंच लाया है?"
"यह तत्व मोह में बांधता नहीं है, मोह से मुक्त कर देता है।"
"वह तत्व क्या है?"
"उसे समग्र संसार कृष्ण के नाम से जानता है।"
"कृष्ण?" उत्सव को विस्मय हुआ।
"हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे ।" बोलती हुई युवति चली गई। उत्सव अचरज से उसे जाते हुए देखता रहा।
जब युवति दृष्टि से दूर हुई तब उत्सव ने स्वयं को कहा, "कोई क्षणिक आवेश में यह युवति अपना देश त्यागकर यहाँ आ तो गई है किंतु ....।" उसने बात को वहीं छोड़ दिया।

74

उत्सव काशी में बस गया था। काशी को अत्यंत निकट से उसने देखा - परखा। उसके भीतर एक सर्जक ने जन्म ले लिया। उसने काशी के जीवन पर पुस्तक लिखना प्रारम्भ किया। प्रतिदिन वह काशी के विविध मंदिरों में तथा विविध तट पर भ्रमण करता। वहाँ जी रहे, वहाँ प्रवासी के रूप में आए व्यक्तियों की चेष्टाओं को वह निहारता, निरीक्षण करता । उससे उसे उन लोगों की जीवन कथा का ज्ञान होता था। रात्रि भर वह उन व्यक्तियों की कथाओं को लिखता रहता।
जैसे जैसे वह काशी के जीवन को लिखता गया वैसे वैसे उसे प्रतीत होने लगा कि
'यहाँ जीवन का नहीं किंतु मृत्यु का अनुभव ही मुख्य है। काशी में जी रहे व्यक्ति जीवन जी रहे हैं या मृत्यु को? मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यहाँ जीवन से अधिक मृत्यु की प्रबलता है। मैंने जीवन को लिखना चाहा है किंतु प्रत्येक बार मेरी लेखनी मृत्यु पर जाकर ही रुकती है। कोई तत्व है जो मेरी लेखनी को जीवन से मृत्यु की तरफ़ ले जाती है। कौन सा तत्व है? मैं अनभिज्ञ हूँ उस तत्व से।'
इसी क्रम में उत्सव ने तीन पुस्तकें सम्पन्न कर ली। स्थानीय प्रकाशक ने उन पुस्तकों को प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। उत्सव ने सम्मति प्रदान कर दी।
लेखन कार्य के लम्बे परिश्रम से मुक्ति हेतु उत्सव, दूर सुदूर गंगा तट पर एकांत के साथ खड़ा था। गंगा यहाँ कुछ चंचल थी। उसका शांत स्वरूप किसी नवयौवना के उन्मुक्त रूप में बदल गया था। यह रूप काशी की गंगा के परिचित रूप से भिन्न

था। उत्सव इस रूप से आकृष्ट हुआ।
वह गंगा के समीप गया, क्षण भर उसे देखा और गंगा के भीतर उतर गया। मनभर गंगा स्नान किया। जब तृप्त हो गया तो तट पर जाकर बैठ गया।
वह अनिमेष दृष्टि से गंगा को देखने लगा। उसके प्रवाह से उत्पन्न कल कल निनाद को सुनने लगा। कुछ समय पश्चात उसने गंगा से कहा, "हे मां गंगे, तुम्हारे तट पर प्रतिदिन मैं आता रहा हूँ। प्रतिदिन मैं किसी ना किसी व्यक्ति के जीवन से जुड़ता रहा हूँ। उनके जीवन की कथाओं को लिखता रहा हूँ। प्रत्येक कथा मैं जीवन से प्रारम्भ करता रहा किंतु अंत उसका मृत्यु से होता रहा। ऐसा क्यों? कोई उत्तर दे सको तो दो। इसी लेखन के कारण मेरे मन एवं मस्तिष्क में मृत्यु के विचार ही प्रभावी रहे हैं। अब यह सारी कथाएँ पुस्तक के रूप में प्रकाशित होगी। इन पुस्तकों का नाम भी मैंने 'मृत्यु के रूप' रखा है। आपके इस पुत्र उत्सव ने ठीक किया ना?"
"नहीं, यह ठीक नहीं है।" किसी ने उत्सव के प्रश्न का प्रतिभाव दिया।
'किसी स्त्री का स्वर? क्या मां गंगा स्वयं उत्तर दे रही है?' उत्सव ने मन ही मन तर्क करते हुए स्वर की दिशा में देखा। सम्मुख उसके वही विदेशी युवति खड़ी थी जिसे कुछ महीनों पूर्व गंगा के भीतर गीताजी को पढ़ते हुए उत्सव ने देखा था, उससे कुछ बातें की थी। उसे देखते ही उत्सव सहसा खड़ा हो गया, आश्चर्य से बोला,"आप यहाँ? क्या आपने मेरी बात सुनी है?" युवति ने एक मोहक स्मित के साथ उत्तर दिया, "उत्सव, यह ठीक नहीं है।"
"आप को मेरा नाम कैसे ज्ञात हुआ? और मैंने क्या ठीक नहीं किया?"
"आपका नाम? अभी अभी तो आपने स्वयं बताया था अपना नाम। आप मां गंगा को पूछ रहे थे कि 'आपके इस पुत्र उत्सव ने ठीक किया ना'?'"
"ओह। ठीक है, ठीक है।"
"किंतु आपने मृत्यु पर लिखा वह ठीक नहीं है।"
"क्यों?"
"मृत्यु, जीवन का अंतिम एवं अटल अंत है यह सब को विदित है। किंतु मृत्यु से पूर्व जीवन होता है। आपके लिए इस जीवन का कोई महत्व नहीं है? केवल मृत्यु की ही महिमा है?"
"है, जीवन की महिमा है। किंतु मैं क्या करूँ? सभी कथा का वास्तविक अंत मृत्यु से ही हुआ है। अतः वाकदेवी स्वतः मृत्यु को लिखाती गई। इसमें मेरा क्या दोष?"
"आपका ही दोष है, उत्सव। आप जब से इस नगरी में आए होंगे तब से आपने प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में मृत्यु को ही खोजा है। क्यों की आपको आपकी प्रत्येक कथा का अंत चाहिए था। काशी की कथा हो तो प्रत्येक कथा का अंत मृत्यु से अधिक रुचिकर क्या हो सकता है। अतः वही करना तुमने पसंद किया है। जीवन को खोजने से जीवन मिलता, किंतु आपको अपनी कथाओं का अंत नहीं मिल पाता। आपके दर्शन शास्त्र ने आपको मृत्यु की खोज पर ही ध्यान केंद्रित करा दिया।"
"दर्शन शास्त्र?"
"मुझे ज्ञात है कि आपने दर्शन शास्त्र पढ़ा है। पूरा काशी इस बात को जानता है। प्रत्येक दर्शन मोक्ष की बात करता है, मोक्ष का मार्ग बताता है। तो सहज ही है कि वह शास्त्र का ज्ञाता मोक्ष के बहाने मृत्यु को ही खोजता रहेगा। किंतु तुम प्रयास करते तो जीवन भी मिल जाता।"
"जीवन है कहाँ इस नगरी में? मुझे तो यहाँ के प्रत्येक कण में, प्रत्येक क्षण में तथा गंगा की प्रत्येक जल कणिका में मृत्यु ही दिखता है।"
"गीता को पढ़ो, कृष्ण को पढ़ो। प्रत्येक क्षण जीवन का अनुभव होगा। दर्शन शास्त्र अपने स्थान पर उचित ही है। वह मोक्ष का मार्ग बताते हैं किंतु जीवन जीने से, जीवन को देखने से तो इन शास्त्रों ने कभी नहीं रोका।"
"आपने गीता पढ़ी है। कृष्ण से भी आप परिचित हो। आप ही बताएँ कि जीवन कहाँ है? कैसा है? हाँ, आपका नाम क्या है?"
"अब मेरा नाम कालिन्दी है। मेरा नाम ही प्रमाण है कि ....।"
"अर्थात् भारत आकर आपने अपना नाम बदल दिया। कालिन्दी से पूर्व क्या नाम था आपका?"
"कालिन्दी नाम रखने के पश्चात उस नाम का कोई महत्व नहीं रहता।"
"नाम बदलने से क्या होता है?"
"जब काम बदल जाता है तो नाम भी बदल जाता है।" कालिन्दी ने स्मित किया और अपने अधरों पर बांसुरी रखी।
"आपके पास बांसुरी भी है? मुझे तो ज्ञात ....।" उत्सव आगे कुछ कहे उससे पूर्व कालिन्दी के अधरों ने बांसुरी पर मधुर

तान छेड़ दी। वह उसे बजाती रही, उसके प्रत्येक सुर में जीवन की गति का अनुभव उत्सव को होता रहा। गंगा के प्रवाह ने भी उस सुर से अपना सुर मिला दिया। गंगा के प्रवाह के सुर भी बदल गए। उत्सव ने अपनी आँखें बंद कर ली। सुर बजते रहे, वह सुनता रहा। जीवन का अनुभव करता रहा।
उत्सव ने जब आँखें खोली तो सम्मुख उसके ना कालिन्दी थी, ना ही बांसुरी थी। उसने प्रत्येक दिशा में देखा, वहाँ कोई नहीं था। किंतु उत्सव किसी भी दिशा में देखता था, उसे वहाँ जीवन दिख रहा था। गंगा का चंचल प्रवाह भी उत्सव को जीवन की अनुभूति करा रहा था।

“मैं मेरी पुस्तकें अभी प्रकाशित नहीं करवाना चाहता। मुझे वह लौटा दीजिए।”
“क्यों? क्या हो गया?”
“मुझे प्रतीत हुआ है कि कुछ लिखना छुट गया है। मैं उसे लिखना चाहता हूँ। जब तक मैं वह लिख ना लुं तब तक वह पुस्तकें अपूर्ण रहेगी। मैं उसे पूर्ण करना चाहता हूँ। कृपया मुझे वह सब लौटा दें।”
“ठीक है, जैसी आपकी इच्छा। मेरी कामना है कि आप शीघ्र ही इन्हें पूर्ण कर हमें इन्हें प्रकाशित करने का अवसर प्रदान करेंगे।”
प्रकाशक ने हस्तप्रतें लौटा दो।
अपनी पुस्तकों की हस्तप्र तें लेकर उत्सव गंगा के उस तट पर गया जहां उसने कालिन्दी से बांसुरी सुनी थी। उसे बांसुरी की उसी धुन का स्मरण हो गया। उसे वह अनुभव पुन: होने लगा।
वह धीरे धीरे गंगा की तरफ़ बढा, भीतर गया, सभी पुस्तकें उसने गंगा के प्रवाह में बहा दी।
“तेरा तुझ को अर्पण।” गंगा को प्रणाम कर वह तट पर आ ग या।
चलते चलते किसी उत्तरवाहिनी के एक बिंदु पर जाकर वह रुक गया। जब मनुष्य जो कर रहा है उस कार्य करते करते रुक जाय तो विचार प्रारम्भ हो जाते हैं। उत्सव के विचार भी प्रारम्भ हो गए।
‘मैंने मृत्यु की सभी गाथाएँ गंगा में बहा दी किंतु इससे आगे क्या? मुझे क्या करना चाहिए? क्यों करना चाहिए? कैसे करना चाहिए? कोई मार्ग क्यों नहीं दिख रहा? कुछ भी समझ नहीं आ रहा है।’ उसके मन में प्रश्न उठ रहे थे, अनेक विचार भी चल रहे थे। ऐसे विचार जिसका एक दूसरे से सम्बंध था भी, नहीं भी। उत्सव ने उन विचारों को नियंत्रित करने का प्रयास नहीं किया। उसे आने दिया।
‘यह गं गा इतनी डरी सी क्यों है? कितना धीरे धीरे बह र ही है। जैसे कोई उसे बलात् धकेल रहा हो। वह अपनी इच्छानुसार नहीं बह रही। किसी विशाल बोज के नीचे दबी हुई लग रही है।’
वह गंगा के समीप गया, “हे गंगे , तुम तो उत्तरवाहिनी हो ना? क्यों? क्यों तुमने अपनी सहज दक्षिणवाहिनी गतिका इस स्थान पर त्याग कर दिया? समग्र जगत को मोक्ष देने हेतु? मोक्ष?
तु म जन जन को मोक्ष देने के उत्तरदायित्व के निरर्थक भार तले अपना मूल चरित्र खो बैठी हो। अपने साथ मृत व्यक्तियों की राख लिए, अस्थि लिए तुम उत्तर की तरफ़ बह रही हो। क्यों? किसने दिया तु म्हें यह दायित्व? या स्वयं स्वीकार लिया है तुमने? यह मनुष्य तो स्वार्थी है। तुमने उसे अपने जल से जीवन दिया किंतु मनुष्य ने मृत होकर भी तुम्हें मोक्ष नाम के दायित्व से बांध रखा है। और तुम, बिना किसी विरोध के इस दायित्व का वहन किए जा रही हो। युगों से !
क्या तुमने कभी विरोध करने की इच्छा, विद्रोह करने की इच्छा की? क्यों नहीं की? करोड़ों व्यक्तियों की अस्थियाँ लेकर तुम उत्तर दिशा में जाति हो जहां स्वर्ग होता है ऐसा माना जाता है। यह बताओ कि अब तक तुमने कितने व्यक्तियों की अस्थि को स्वर्ग तक पहुँचाया? कदाचित किसी को नहीं।
तो यह दम्भ कैसा? क्या तुम इस दम्भ को त्याग नहीं सकती? क्यों इस अनावश्यक भार को वहन कर रही हो? त्याग दो इस दम्भ को। विद्रोह कर दो, एक बार । केवल एक बार। पश्चात यह मनुष्य कभी तुम्हें ऐसे किसी अनावश्यक दायित्व में बांधने का साहस नहीं करेगा। बस, तुम साहस कर दो, एक बार। केवल एक बार। क्या है इतना साहस तुम में?”
“मुझ में नहीं है किंतु क्या तुम में है यह साहस?”
“मु झ में? कैसा साहस? बात तुम्हारे साहस की हो रही है।”
“तुम में, उत्सव तुम में? मेरी बात कर रहे हो किंतु अपनी बात भी कर लिया करो।क्या तुम में साहस है मेरे इस तट को त्यागने का? नहीं ना? तुम ही तो मेरे तट पर जीवन से मुक्ति के लिए ही आए हो ना? तुम अपनी इस मनसा को त्या गने का साह स रखते हो? यदि साहस है तो मेरे इस तट को त्याग कर दि खाओ। अन्यथा व्यर्थ उपदेश मुझे ना सुनाओ। तुमसे कहीं अधिक ज्ञानी मेरे तट पर रह चुके हैं।”
उ त्सव ने जो शब्द सुने उसे पकड़ने के प्रयास में उसने सभी दिशाओं में देखा। कोई नहीं था।
“कौन कह रहा है यह सब? मेरी अंतरात्मा या स्वयं गंगा?”
“तुम अपना ज्ञान मुझे ही दे रहे थे ना? तोमेरे अतिरिक्त तुम्हें उत्तर कौन दे सकता है? मैं ही बोल रही हूँ, गंगा। उत्तरवाहिनी गंगा । मोक्षदायिनी गंगा। मोक्ष केदायित्व से थकी हुई गंगा।”
“हे मां गंगे। मुझे क्षमा करो। मन की व्या कुलता में मैं ना जाने क्या क्या कह गया ! मैं मार्ग से भटक गया हूँ। मुझे मार्ग

दिखाओ।" उत्सव ने गंगा को नमन किया।
"मार्ग ही तो दिखाया था मैंने। तुमने उस संकेत को समझा कहाँ है?"
"कब? कहाँ? कैसा मार्ग? कैसा संकेत?"
"मैं स्वयं तो मनुष्य रूप धारण नहीं कर सकती। किंतु मैं किसी मनुष्य के माध्यम से तुम्हें मार्ग दिखा चुकी हूँ। वही मेरा संकेत भी है।"
"आप? आप स्वयं?" उत्सव विचारने लगा। स्मरण करने का विफल प्रयास करता रहा।
"कुछ समय पूर्व मैंने ही तुम्हें बांसुरी सुनाई थी, वत्स।"
"बांसुरी? आपने? वह तो ... कालिन्दी थी।"
"उसे मैंने ही तुम्हारे पास भेजा था।"
"तो वह आपका संकेत था?"
"और नहीं तो क्या?"
"किंतु ....।." उत्सव रुक गया।
"किंतु से आगे भी कुछ बोलो, उत्सव। मैं तुम्हारे मन के सभी संशय को निरस्त कर दूँगी। कहो, उत्सव कहो।"
"मैं मान लेता हूँ कि कालिन्दी ही आपका संकेत है। किंतु वह तो कृष्ण भक्त है। गीता पढ़ती है। जीवन की बातें करती है। स्वयं जीवन से भरपूर है। वह इस मृत्यु नगरी काशी में क्या कर रही है? वह यहाँ कैसे?"
"वह तुम्हें मार्ग दिखाने आइ थी। तुम इस मृत्यु नगरी में हो तो उसे भी यहाँ ही आना पड़ेगा ना?"
"ओह। किंतु उसने क्या संकेत दिया? कौन सा मार्ग दिखाया? मुझे कुछ स्पष्ट नहीं हो रहा है।"
"अरे मूर्ख। संकेतों को समझने का ज्ञान भी रखो। केवल शास्त्रों का ज्ञान होना पर्याप्त नहीं होता है।"
"मेरी सहायता करो।" उत्सव ने हाथ जोड़ विनती की।
"उस युवति का नाम ही संकेत है। स्मरण है वह नाम?"
"कालिन्दी।"
"इस नाम से क्या संकेत मिलता है, उत्सव? अब तुम स्वयं सोचो, समझो। इससे आगे मैं तुम्हारी सहायता नहीं करूँगी।"
उत्सव ने गंगा के प्रवाह को देखा। वह बह रहा था। उसमें से उत्पन्न हुए सभी शब्द शांत हो गए थे। अब केवल उसके बहने का निनाद ही शेष था वहीं।
उत्सव विचार करता रहा, संकेत को समझने का प्रयास करता रहा।
'अब जो भी करना है, मुझे स्वयं करना होगा। गंगा ने तो अपनी बात रख ली। और अब मौन हो गई। मुझे संकेत का अर्थ निकालना होगा, मार्ग ढूँढना होगा।'
"कालिन्दी ..., कालिन्दी ...., कालिन्दी।" कालिन्दी के नाम का जाप करता हुआ उत्सव गंगा के तट पर चलता रहा, चलता रहा, चलता रहा।
एक अंतराल के पश्चात वह सहसा रुक गया। उत्सव के मन में एक चेतना प्रकट हो गई। तन में नई ऊर्जा प्रवाहित हो गई।
"ओह। कालिन्दी के पास जाने का संकेत दिया है उसने। कालिन्दी अर्थात् यमुना। यमुना अर्थात् मथुरा, वृंदावन, व्रज, नंद, बरसाना, गोवर्धन। अर्थात् कृष्ण ! ओह, कृष्ण । कृष्ण। तुमने मुझे बुलाया है। यदि यही नियति है तो मैं आ रहा हूँ तेरे द्वार पर, कृष्ण।"
उत्सव ने मथुरा जाने का निश्चय कर लिया। मथुरा अर्थात् कृष्ण। कृष्ण अर्थात् जीवन। अर्थात् आनंद। कृष्ण से जुड़ने पर आनंद भी, जीवन भी। अखंड आनंद, अनंत आनंद। उत्सव के मन में उमंग का संचार होने लगा।

76

उत्सव का चित्त प्रसन्नता से भर गया। मृत्यु से पूर्व जो जीवन होता है उसे वह अनुभव करने जा रहा था अतः मन में अनेक तरंगें उठ रही थी। वाराणसी की वीथियों में संध्या ढल चुकी थी। भगवान सदाशिव के दर्शन हेतु भक्तों की भीड़ थी। नगर में उत्साह दिख रहा था। उत्सव को प्रथम बार वाराणसी के जीवन में ऊर्जा का दर्शन हुआ।
'यहां मृत्यु से पूर्व का जीवन भी है, मोक्ष भले ही हो। वाराणसी के जीवन को आज में नूतन दृष्टि से देख रहा हूँ। अनुभव कर रहा हूँ। मृत्यु तथा मोक्ष के लक्ष्य के कारण मैंने कभी इस जीवन पर ध्यान ही नहीं दिया। मुझे इस जीवन को तटस्थता से ही देखना होगा। एक एक व्यक्ति के भावों का अनुभव करना होगा।'
उत्सव सभी का अवलोकन करने लगा।
'कितने जीवन से भरे हैं यह सभी। यदि यहां भी जीवन है तो मुझे मथुरा जाने की क्या आवश्यकता?' उत्सव ने स्वयं को प्रश्न किया। उत्तर भी स्वयं ने ही दिया, 'आज तक जहां तुम्हें जीवन दृष्टिगोचर नहीं था वहाँ तुम्हें आज जीवन दिख रहा है? तुम्हारे मन में इस नगर के प्रति आसक्ति भी प्रकट हो रही है, उत्सव?'
'नहीं, नहीं। आसक्ति नहीं है मुझे। किंतु ....।'
'किंतु कुछ नहीं। तुम्हें मथुरा जाना होगा। यही तुम्हारी नियति है।'
'यहां भी तो ....।"
'यहां तुम जो देख रहे हो वह क्षणिक है, स्थायी नहीं। यहां जीवन की जो ऊर्जा तुम देख रहे हो वह प्रवासियों के कारण है, जो आभासी है। यहां तो मृत्यु ही शाश्वत है। शाश्वत जीवन का अनुभव करने हेतु तुम्हें इस नगरी का त्याग करना होगा। मथुरा जाना होगा।'
उत्सव ने इन शब्दों को मन का आदेश मान लिया। सभी तर्क त्याग दिए। मथुरा जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। वह वीथिका में चलने लगा। मिष्टान्न की एक दुकान पर रुका, "कुछ मीठा खिला दो।"
दुकानदार उत्सव की वेश भूषा देखकर बोला , "महाराज, यहां नि:शुल्क कुछ नहीं मिलेगा। धन तो हैं ना आपके पास?"
उत्सव हंस दिया। उसने धोती में से पाँच सौ रुपए निकालकर दुकानदार के सम्मुख रख दिए। दुकानदार को अपने बर्ताव पर क्षोभ हुआ।
"क्षमा करना मेरी धृष्टता को, महाराज। क्या खाओगे?"
"कुछ भी।"
एक पात्र में उसने मिठाई उत्सव को दी। उत्सव मिठाई लेकर चलने लगा।
"महाराज, रुको।" उत्सव ने उसे प्रश्नभरी दृष्टि से देखा।
"महाराज, मुझे पैसे नहीं चाहिए। आप इसे ले लो।"
"अरे भाई, रख लो। नि:शुल्क खाना नहीं चाहिए।"
"महाराज, आप तो ....।"
"अरे छोडो, उसे रख लो।" उत्सव ने स्मित दिया।
"किंतु महाराज, यह तो इसके मूल्य से कहीं अधिक है। बाक़ी पैसे तो लेते जाओ।"
"कोई बात नहीं तुम उसे रख लो।"
"यह तो अनुचित है। मैं नहीं रख सकता।"
"यदि कभी कोई साधु तुम्हारी दुकान पर आ जाए और मीठा खाने की इच्छा प्रकट करे तो इस बची राशि में से उसे खिला देना।"

एक मोहक स्मित देते हुए उत्सव वहाँ से चल दिया।

77

वाराणसी से मथुरा जानेवाली गाड़ी के एक डिब्बे में उत्सव चड गया। वातायन वाली अपनी बैठक पर बैठ गया। वातायन से गाड़ी से बाहर के जगत को देखने लगा। समय पर गाड़ी चल दी। उसका ध्यान अभी भी बाहर के विश्व पर था। उसे ज्ञात ही नहीं रहा कि बाक़ी सभी सहयात्री अपना स्थान ग्रहण कर चुके थे तथा सभी यात्री उत्सव को ही देख रहे थे।
उत्सव को तथा उसके कपड़ों को देखकर यात्रियों ने आध्यात्मिक चर्चा प्रारम्भ कर दी। सभी अपनी अपनी सीमित विद्वता का प्रदर्शन करते हुए अपना अपना पक्ष रखने लगे। किसी बात पर यात्री दो भागों में बंट गए। यात्री चाहते थे कि उत्सव

का ध्यान अपनी तरफ़ आकृष्ट करें तथा उसे भी उस चर्चा में जोड़ें। इस हेतु उन्होंने प्रयास किए किंतु उत्सव का ध्यान उन बातों पर नहीं था। वह क्षितिज में कहीं देख रहा था, कृष्ण के विचार में मग्न था।
“सुनो, हमारे इस विवाद का उचित उत्तर यह महाराज ही दे सकेंगे। क्यों ना हम इससे पूछते हैं?”
“यही उत्तम उपाय है।” दूसरे यात्री ने सहमति प्रकट की।
“महाराज, प्रणाम।” एक ने उत्सव को कहा। उत्सव ने स्मित से उत्तर दिया।
“प्रभु, आप सन्यासी हो, ज्ञानी भी प्रतीत होते हो। तो क्या आप हमारे एक प्रश्न का उत्तर देकर संशय का समाधान करोगे?”
उत्सव पुन: हंस पड़ा।
“अपने मुझे प्रभु कहा! सन्यासी कहा तथा ज्ञानी भी कहा।”
“सत्य तो कहा।”
“सत्य कुछ नहीं होता। केवल भ्रमणा होती है। हमारा दृष्टिकोण ही स्वयं सत्य - असत्य का निर्णय कर लेता है। छोड़ो उसे। आप कुछ पूछना चाहते थे।”
“हमारे मध्य चर्चा चल रही है। आपने भी सुनी होगी।”
“कैसी चर्चा? क्षमा करना, मैं आपकी चर्चा को सुन नहीं पाया।”
“ऐसा कैसे हो सकता है? आप यहीं हो, आपकी उपस्थिति में ही हम चर्चा कर रहे थे। आपने कैसे नहीं सुना?”
“हाँ, मैं था तो यहीं तथापि कहीं और था। क्या आप अपना प्रश्न मुझे बता सकते हो?”
“एक पक्ष कहता है कि मनुष्यों का मोक्ष होता है। दूसरा पक्ष कहता है कि मोक्ष जैसा कुछ भी नहीं होता। आपका क्या विचार है?”
“मोक्ष? कौन जानता है कि मोक्ष क्या है? यह सब अत्यंत दार्शनिक एवं गहन विषय वस्तु है। किंतु यह सर्व विदित है कि यदि मोक्ष है तो वह मनुष्य की मृत्यु के उपरांत ही प्राप्त होता है।”
“मृत्यु से पूर्व मोक्ष कहाँ सम्भव?”
“जिसने मृत्यु प्राप्त कर ली उसे मोक्ष मिलेगा या नहीं?”
“वह तो वही व्यक्ति बता सकता है जो मृत्यु को प्राप्त कर चुका है।”
“मृत व्यक्ति कैसे बता सकता है?”
“आज तक किसी मृत व्यक्ति ने नहीं बताया कि उसे मोक्ष मिला है या नहीं।”
“तो जीवित व्यक्ति भी कैसे बता सकता है?” उत्सव ने कहा।
“ऐसे में क्या करें? शास्त्र क्या कहते हैं?”
“शास्त्र कहते हैं कि मृत्यु से पूर्व जीवन होता है। होता है ना?” उत्सव ने तर्क रखा।
“हाँ, होता है।” सभी ने एक साथ कहा।
“वह जीवन के हम सभी साक्षी हैं। किंतु हम में से कौन जानता है कि जीवन क्या है? क्या हमने जीवन को जाना है? जीवन को पूर्ण रूप से जिया है? जीवन का पूर्ण आनंद लिया है?”
“नहीं। हम तो मृत्यु के विचारों में, मोक्ष की अभिलाषा में ही जीवन व्यतीत कर रहे हैं।”
“और वाराणसी आकर मोक्ष को प्राप्त कर लेंगे ऐसी भ्रमणा पाल लेते हैं।”
“तो हमें क्या करना चाहिए?”
“जीवन की प्रत्येक क्षण का आनंद लेना चाहिए। सुख में भी, दु:ख में भी।”
“ऐसा एक सन्यासी कह रहा है? “
“हाँ।”
“आपने संसार क्यों त्याग दिया?”
उत्सव के लिए यह प्रश्न अनपेक्षित था। उसे तत्काल उसका उत्तर नहीं मिला तो वह स्मित देकर मौन हो गया। इस प्रश्न का उत्तर स्वयं के भीतर खोजने लगा।
“आपने उत्तर नहीं दिया, महाराज।”
“क्या आप सभी मथुरा जा रहे हो?” उत्सव के इस प्रश्न का उत्तर सभी ने ‘हाँ’ में दिया।
“तो मथुरा पहुँचने से पूर्व आपके प्रश्न का उत्तर दूँगा।”
“जैसा आप उचित समझो।”
उत्सव मौन हो गया। बाहर गति करते प्रतीत हो रहे, स्थिर पदार्थों को देखने लगा। अपने भीतर उस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास करता रहा। गाड़ी चलती रही। उत्सव ने आँखें बंद कर ली।सहयात्री अपनी प्रवृति करते रहे।

कुछ समय पश्चात एक यात्री ने धीरे से कहा, “बड़ा सन्यासी का भेष पहने हुआ है किंतु ज्ञान तो कुछ है ही नहीं।”
“ऐसे ही ढोंगी लोग साधु बन जाते हैं।”
“और उसके पश्चात उसके पास यह भी उत्तर नहीं कि वह क्यों संसार त्यागकर साधु बन गया।” ऐसी अनेक बातें करते रहे सहयात्री। वह यह मान रहे थे कि उत्सव सो चुका है। उत्सव सोया नहीं था, केवल आँखें बंद कर रखी थी। सभी की बातें सुनकर वह मन ही मन हँसता रहा।
समय के एक पड़ाव पर गाड़ी मथुरा के समीप आ गई। उत्सव कृष्ण के विचारों से उत्साहित था। तभी किसी ने पूछा, “महाराज, अब तो मथुरा आने वाला है। आपने प्रश्न का उत्तर देने का वचन दिया था।”
“मुझे स्मरण है मेरे वचन का।”
“तो कहो, आपने संसार क्यों त्याग दिया है?”
“जीवन को बचाने के लिए मैंने संसार त्याग दिया था।”
“तो अब जीवन की बातें क्यों कर रहे हो?”
“जो भी शेष है उस जीवन को जीने के लिए।”
“तो आप क्या सन्यास का त्याग कर रहे हो?”
“सन्यास भी जीवन ही है। उसका त्याग क्यों करूँ?”
“तो जीवन कैसे जी सकोगे?”
“मृत्यु से पूर्व सभी क्षण जीवन ही है।”
“किंतु यह सन्यास ....?”
“जो जीवित है उसका जीवन होता है। क्या सन्यासी, क्या संसारी। सन्यासी का कोई जीवन नहीं होता क्या? यदि जीवन के अर्थ को जानते होते तो यह प्रश्न नहीं करते।”
किसी के पास प्रतितर्क नहीं था।
गाड़ी मथुरा स्थानक पर रुकी। सभी गाड़ी से उतरने की प्रवृति में व्यस्त हो गए। उत्सव भी उतर गया।

78

समीर की एक तरंग उत्सव को स्पर्श कर चली गई। उस स्पर्श में उत्सव ने कुछ अनुभव किया। वह उस अनुभव को समझे उससे पूर्व दूसरी तरंग आकर स्पर्श कर चली गई। उस तरंग ने भी वही अनुभव करवाया। एक एक कर तरंगें आती रही, उत्सव को स्पर्श कर चली जाती रही। प्रत्येक स्पर्श में कुछ अनूठा था जो उत्सव ने इससे पूर्व कभी अनुभव नहीं किया था। उत्सव उस अनुभूति को समझ नहीं पाया। उसने पढ़े सभी ग्रंथों का ज्ञान भी उस अनुभव को समझाने में विफल रहा। उसने प्रयास त्याग दिए, बस अनुभव करता रहा।
उस अनुभव के आदी होने तक उत्सव स्थानक पर ही रुका रहा। गाड़ियों से उतरते प्रवासियों को देखा। प्रत्येक प्रवासी उत्साह से भरा प्रतीत हुआ। प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न था। प्रत्येक प्रवासी के मुख पर कृष्ण का नाम था। कोई नंदलाल की जय बोल रहा था तो कोई कृष्ण कन्हैया लाल की। कोई माखन चोर की तो कोई रणछोड़ की जय कर रहा था। प्रत्येक व्यक्ति मुक्त विचरण कर रहा था, सभी बंधनों से मुक्त, सभी भार से मुक्त।
उन सभी को देखकर अनायास ही उत्सव भी बोल पड़ा, “हरे कृष्ण । हरे कृष्ण।”
वह इस मंत्र को जपने लगा। जैसे जैसे वह उसे जपता गया, उसे समीर के उन स्पर्शों का अर्थ समज में आने लगा।
‘हरे कृष्ण, हरे कृष्ण।’ जपता हुआ उत्सव मथुरा नगरी में प्रवेश कर गया। यमुना के तट पर आ गया। उसके प्रवाह को देख मन ही मन बोला, ‘यमुना! गंगा की सहोदरी यमुना। कितना भिन्न रूप है इसका, काशी की गंगा से। निर्बाध बह रही यमुना। मुक्त यमुना। तुम्हारे पर क्या कोई दायित्व का भार नहीं?’
‘कृष्ण को तमस भरी, वर्षा की उस रात को मथुरा से गोकुल ले जाने के दायित्व निर्वाह के पश्चात मैं किसी भी दायित्व से मुक्त हो गई हूँ।’ यमुना ने प्रत्युत्तर दिया और अपनी गति से बहती रही।
उत्सव ने यमुना में स्नान कर रहे भाविकों को देखा। स्नान का आनंद तथा भक्ति का भाव उनके मुख पर स्वतः प्रकट था। अनेक भक्त तट पर बैठे थे। वह सभी यमुना के दर्शन मात्र से ही संतुष्ट थे। उत्सव ने अन्य दिशा में देखा। एक बिंदु पर उसकी दृष्टि रुक गई।
विदेशी भक्तों का एक समूह वहाँ कृष्ण का कीर्तन कर रहा था। नृत्य कर रहा था। मृदंग, ढोल, मंजीरें बज रहे थे। कृष्ण नाम संकीर्तन के साथ सभी नाच रहे थे।
सभी नृत्यकार एक विशेष रूप से नाच रहे थे। उन सभी का ध्यान केवल कीर्तन, संगीत एवं नृत्य पर ही था। अन्य जगत से वह अनभिज्ञ थे। नृत्य में मग्न, नृत्य में ही खोये हुए।
‘यह कैसा नाच? इतनी तल्लीनता? इतना समर्पण। इतना भाव। इतनी ऊर्जा। यह नृत्य, यह नाच अजोड है। यह भी इस नदी, इस भूमि का प्रभाव ही होगा। विदेशी भक्त किसी लज्जा से मुक्त कृष्ण भक्ति में नाच रहे हैं। इनमें सभी विदेशी ही हैं। कोई भारतीय क्यों नहीं? भारतीय भक्तों को भी साथ साथ नाचना नहीं चाहिए? इस नृत्य में भारतीयों को लज्जा आ रही है? लज्जा क्यों? कहते हैं कि भक्ति में पूर्ण समर्पण होता है। भक्ति के मार्ग में यदि लज्जा शेष है तो अर्थ यही है कि समर्पण पूर्ण नहीं है। यह भक्तों का समर्पण, भक्ति, अभी अपूर्ण प्रतीत होती है।’
‘उत्सव, तुमने अन्य भक्तों का कितना त्वरित एवं सरलता से न्याय कर लिया। किंतु क्या तुम अपना न्याय कर सकते हो?’
‘अर्थात्?’
‘तुम स्वयं भी तो दर्शक बनकर देख रहे हो। तुममें भी लज्जा शेष बची है।’
‘मेरे में? मैं कहाँ भक्त हूँ?’
‘तो यहाँ क्यों आए हो?’
‘वह तो कालिन्दी ने कहा था ....।’

‘कालिन्दी। नृत्य कर रहे भक्तों में अनेक युवतियाँ भी है। वह सभी कालिन्दी की भाँति कृष्ण प्रेम में समर्पित होकर, अपने देश का त्याग कर यहां आइ हैं। इतना समर्पण है तुम में?’
‘मैं तो ….।’
‘सभी तर्कों को छोड़कर कृष्णमय हो जाओ। जाओ उस नृत्य समूह के साथ नृत्य करो।’
अपने मन के आदेश का अनुसरण करता हुआ उत्सव नृत्य समूह में जुड़ गया। नाचने लगा। नाचता रहा। उसके तन में, उसके मन में नई ऊर्जा बहने लगी। वह सब कुछ भूल कर नाचता रहा। संगीत के सुरों को सुनता रहा, कीर्तन करता रहा, नाचता रहा।
धीरे धीरे संगीत मंद होने लगा। तथापि उत्सव नाचता रहा, कीर्तन करता रहा। कुछ समय पश्चात संगीत सुनाई देना बंद हो गया। उसके चरण रुक गए, नृत्य थम गया। उसने आँखें खोली। चारों तरफ़ देखा, वहाँ कोई नहीं था। तट पर वह एक मात्र था। नृत्य समूह कहीं दूर चला गया था।
स्वयं को अकेला पाकर क्षणभर वह चकित रह गया। पश्चात वह हंस पड़ा। हंसने लगा। खूब हंसा, हँसता रहा। हंसते हंसते थक गया तब तट पर बैठ गया। तन शांत हो गया, मन अभी भी नृत्य कर रहा था। आनन्दमय था। निर्मल आनंद, अखंड आनंद।

79

रात्रि भर उत्सव यमुना तट पर बैठा रहा। ब्राह्म मुहूर्त में उसने यमुना में स्नान किया और चल पडा। भगवान द्वारिकाधीश जी के दर्शन किए। पश्चात कृष्ण जन्म स्थल के दर्शन किये। गोकुल गया।
प्रत्येक स्थल के तरंगों का उसने अनुभव किया। उसने उसे ऊर्जा, उत्साह तथा चेतना से भर दिया। इस अनुभव की प्रसन्नता के साथ वह वृंदावन आया। स्थानीय निवासियों से वृंदावन के विषय में अनेक जानकारी प्राप्त की। और चल पड़ा कृष्ण की रासलीला का जहां स्थान है। निधि वन !
निधि वन में प्रवेश करते ही उसने अनेक वृक्षों को देखा वह क्षणभर रुक गया।
‘यहाँ के वृक्ष युग्म में हैं। प्रत्येक युग्म में एक श्याम है तो दूसरा गौर। यह कैसी रचना है प्रकृति की? क्या यह कोई चमत्कार है?’
उत्सव ने इस रहस्य के विषय में किसी से पूछा। उत्तर मिला, “यह वृक्ष स्वयं ही ऐसे उगे हैं। सभी वृक्ष पाँच हज़ार वर्ष से भी पुरातन हैं। श्याम वृक्ष कृष्ण का प्रतीक है तो गौर वृक्ष गोपियों का।”
उत्तर सुनकर उत्सव के मन की जिज्ञासा तीव्र हो गई। निधि वन की वायु में रहे अनोखे आकर्षण ने उसे अपनी तरफ़

खींचा। पूरे निधि वन का दर्शन करने पर उसने निश्चय कर लिया, 'मैं यहीं रुकूँगा।'
एक वृक्ष की छाँव में वह बैठा। कृष्ण का स्मरण करते हुए आँखें बंद कर निधिवन का अनुभव किया। अंत में वह ध्यानवस्था में पहुँच गया।
संध्या समय किसी ने उसे जगाया, "चलो। अब यहाँ से आपको जाना होगा।"
ध्यान भंग होते ही उत्सव ने कहा, "मैं कहीं नहीं जाना चाहता। मैं यहीं रुकना चाहता हूँ। यहाँ बैठकर ...।"
"अब आप यहाँ नहीं रह सकते, महाराज। कोई भी यहाँ संध्या समय के पश्चात नहीं रह सकता। रात्रि में सारा निधिवन मनुष्यहीन होता है।"
"ऐसा क्यों?"
"क्यों कि रात्रि में स्वयं कृष्ण यहाँ रासलीला करेंगे।"
"मैं उसे ही देखना चाहता हूँ।"
"यह सम्भव नहीं है क्यों कि यही यहाँ का नियम है। रातभर यहाँ रुकने की किसी को अनुमति नहीं है। मुझे भी नहीं।"
"किंतु ....।"
"महाराज, क्या आप भगवान की रासलीला में व्यवधान बनना चाहते हो?"
उसके इस प्रश्न ने उत्सव की सभी बातों का खण्डन कर दिया। विवश होकर वह उठा, निधिवन छोड़कर बाहर आ गया। रात्रि वहीं व्यतीत की।
रात्रिभर वह उस दिशा में देखता रहा जहां कृष्ण रासलीला करते हैं ऐसा उसे बताया गया। उसने उस दिशा में एक प्रकाश पुंज होने का अनुभव किया। उसने उसे देखा। उसमें किसी आकृति को देखा। शीघ्र ही प्रकाश ने विराट रूप धारण कर लिया। उस प्रकाश में उत्सव ने आँखें बंद कर ली।
उत्सव ने जब आँखें खोली तब प्रभात का प्रथम प्रहर हो चुका था।
"रात्रिभर जिस प्रतीक्षा में निधिवन के बाहर मैं रुका था वह घटना के समय में ही मैं गहन निद्राधीन हो गया। हे कृष्ण, यह तुम्हारी लीला ही थी न? तुम रासलीला के साथ ऐसी लीला भी करते रहते हो। ठीक है, जैसी तुम्हारी इच्छा।" उत्सव वहाँ से चला गया।

80

उत्सव जहां खड़ा था वह गोवर्धन परिक्रमा का प्रारम्भ बिंदु था। इस यात्रा के विषय में किसी ने उसे कहा था,
“यह बाईस किलोमीटर लम्बी गोवर्धन परिक्रमा का विशेष महत्व है। दिवस रात्रि चलती रहती है। अब यहाँ तक आ गए हो तो परिक्रमा करके ही जाना।”
उस बात को मानते हुए उत्सव ने गोवर्धन परिक्रमा करने का निश्चय कर लिया। मन में थोड़ी श्रद्धा, थोड़ी जिज्ञासा, थोड़ा कौतुक लेकर वह परिक्रमा के प्रारम्भ बिंदु पर आ गया।
‘बाईस किलो मीटर का अंतर, सीधे एवं सरल मार्ग पर। यदि एक घंटे में छः किलोमीटर चलूँगा तो भी चार घंटे में सम्पन्न हो जाएगी।’ मन में गणना करने के पश्चात वह चलने लगा।
उत्सव युवा था, योगी था, ब्रह्मचारी था, हिमालय के पहाड़ों में चलने का अनुभव रखता था अतः उसकी गति द्रुत थी। वह चलता जा रहा था, भक्तों को देखते जा रहा था। भक्त भी उसे ही देखते थे क्यों कि वह सबसे अधिक गति से चल रहा था। सब को पीछे छोड़ता जा रहा था।
दस बारह मिनट चलने पर उसने एक दृश्य देखा। दो पुरुष एवं दो स्त्री, मार्ग पर दंडवत करते करते परिक्रमा कर रहे थे। वह क्षणभर रुका। उनकी चेष्टाओं को देखने लगा।
उन चार व्यक्तियों के साथ चार और व्यक्ति थे जो एक एक के सहायक के रूप में साथ चल रहे थे। सहायक मार्ग पर एक कम्बल बिछा देता था। भाविक उस पर लेटकर दंडवत करता था। उठ जाता था। तब तक सहायक उस कम्बल से आगे दूसरा कम्बल लगा देता था। भाविक उस नए कम्बल पर दंडवत करता था। सहायक पिछला वाला कम्बल उठाकर उसे आगे बिछा देता था। भाविक उस पर दंडवत करता था।
इस प्रकार चारों भक्तों की दंडवत परिक्रमा आगे बढ़ रही थी। उत्सव उस परिक्रमा को देख रहा था। वह परिक्रमा अत्यंत मंथर गति से चल रही थी। उसका ध्यान सहायक पर पड़ा, उसने चरणों में पादुका नहीं पहनी थी। उत्सव ने भाविक को देखा। उसने भी नहीं पहनी थी।
उत्सव सोचने लगा,’इतना कष्ट क्यों भोग रहे हैं यह यात्री?’ उसे कोई उत्तर नहीं सूझा। वह उन्हें वहीं छोड़ आगे बढ़ गया। किंतु मन का प्रश्न पीछे खींच रहा था। दो मिनट चलते ही वह दंडवत कर रहे परिक्रमावासियों के पास लौट आया।
“आप कुछ समय विश्राम कर लीजिए। सहायक के रूप में मैं काम कर लेता हूँ।” उत्सव ने प्रस्ताव रखा।
“नहीं महाराज, यह सम्भव नहीं है। आप के इस प्रस्ताव से हमें प्रसन्नता हुई। इससे हमें एक नयी ऊर्जा मिली है। प्रतीत होता है कि आप के रूप में कृष्ण हमारी परीक्षा लेने आया है। किंतु क्षमा करें कृष्ण। हम आपका सहयोग नहीं ले सकते। धन्यवाद।” सहायक ने हाथ जोड़े।
‘मैं कृष्ण? इस रूप में मैं इनकी परीक्षा लेने आया हूँ? बड़े ही चतुर हैं तेरे भक्त, तेरी ही भाँति, कृष्ण।’ सहायक की बात पर

वह हंस पड़ा। उसने हाथ जोड़े, स्मित के साथ उनसे विदाय ली।
वह परिक्रमा मार्ग पर चलता रहा, सबको पीछे छोड़ता हुआ वह आगे बढ़ गया। दंडवत परिक्रमा करते अनेक श्रद्धालुओँ को उत्सव ने परिक्रमा मार्ग पर देखें।
'इस प्रकार परिक्रमा करने में कितना समय लग सकता है?' वह गणना करने लगा। किंतु उसका गणित उस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका।
"आप यह दंडवत परिक्रमा कितने समय में पूर्ण कर लोगे?" उत्सव ने किसी भाविक से पूछा।
"यदि सब कुछ सामान्य रूप से चलता रहा तो दस से बारह महीनों में यह पूर्ण हो जाएगी।"
"क्या कुछ असामान्य भी घट सकता है इस परिक्रमा में?"
"सम्भव है। इस प्रक्रिया में शरीर का साथ देना अत्यंत महत्वपूर्ण है। कुछ दिवसों के पश्चात शरीर थक जाता है। अत्यंत पीड़ा करने लगता है। ऋतु परिवर्तन भी होता है। कुछ भी हो सकता है। जो सामान्य नहीं है।"
"एक वर्ष तक आप अपने परिवार से, अपने कार्यों से दूर कैसे रह पाओगे?"
"श्रद्धा। श्रद्धा ही हमसे यह सब सम्भव करवाती है। जय श्री कृष्ण। जय श्री कृष्ण। राधे राधे।"
उसने उत्सव को उत्तर दे दिया। उत्सव भी कृष्ण नाम जपता हुआ मार्ग पर आगे बढ़ गया।
मार्ग में उसने अनेक दंडवत परिक्रमावासियों को देखा। प्रथम बार देखने पर जो घटना उत्सव को आश्चर्य लगी थी वह घटना अब उसे सहज लगने लगी।
'मन भी कैसा है? बातों को कितनी सहजता से तथा शीघ्रता से स्वीकार कर लेता है?' अधरों पर स्मित लिए वह आगे बढ़ता गया।
आगे मार्ग में उसने एक और नया कौतुक देखा। एक व्यक्ति अपने कम्बल पर बार बार दंडवत कर रहा था, एक ही स्थान पर। दंडवत के पश्चात वह आगे नहीं बढ़ रहा था। कम्बल पर एक बड़ी रुद्राक्ष की माला पड़ी थी। जब भी वह दंडवत करता था, एक सहायक उस माला के एक रुद्राक्ष को आगे कर देता था। उत्सव ने माला का निरीक्षण किया। "कितने रुद्राक्ष हैं इस माला में?" उत्सव ने सहायक से पूछा।
"पूरे एक सौ आठ।"
"अर्थात् एक ही स्थान पर वह एक सौ आठ बार दंडवत करेंगे?"
"हाँ। जब एक सौ आठ बार पूर्ण हो जाएगा तब वह एक कम्बल आगे बढ़ जाएँगे।"
"इस स्थिति में, इस प्रकार बाईस किलोमीटर की परिक्रमा पूरी करेंगे?"
"हाँ।"
"क्या?" उत्सव चकित रह गया।
"इसमें चकित होने की क्या बात है? इस मार्ग पर आपको ऐसे अनेक परिक्रमावासी मिलेंगे।"
"यह बात इतनी सहज है? आपके लिए अवश्य होगी। किंतु मैंने ऐसा कभी नहीं देखा।"
"हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।" सहायक ने सस्मित उत्तर दिया।
"इस प्रकार परिक्रमा करते करते अत्यंत समय लग जाएगा।"
"ज्ञात है हमें। लगने दो जितना समय लगे। किंतु परिक्रमा इसी प्रकार पूर्ण करनी है।"
"आप के अनुसार कितना समय लग सकता है?"
"ऐसी कोई गणना नहीं की है हमने और ना ही ऐसी कोई इच्छा है।"
"ऐसे तो पूरा जीवन व्यतीत हो जाएगा।"
"तो क्या हुआ?"
"इसी परिक्रमा मार्ग पर ही जीवन का ....।" उत्सव ने आगे के शब्द रोक दिए।
उस सहायक ने उत्सव के नहीं बोले गए शब्द को पूरा करते हुए कहा, "जीवन का अंत हो गया तो? यही पूछना चाहते हो ना?"
उत्सव ने सहमति में स्मित दिया। सहायक आगे बोला, "यही तो मनसा है कि इस मार्ग पर ही जीवन का अंत हो जाए। इससे सुंदर मृत्यु क्या होगी, महाराज? ऐसा जिसके साथ होता है उसकी मृत्यु महोत्सव बन जाती है।"
"हरे कृष्ण, हरे कृष्ण।" उत्सव अनायास ही बोल पड़ा। उत्सव के पास अन्य कोई शब्द नहीं थे बोलने के लिए, ना ही ऐसी कोई इच्छा थी उसकी। कृष्ण नाम जपता हुआ वह किसी एक वृक्ष की छाँव में बैठ गया।
उत्सव ने आँखें बंद कर ली। परिक्रमा के मार्ग पर जो घटनाओं का उत्सव साक्षी बना उससे वह विचलित हो गया। उसे स्मरण हो आया कि कुछ ही समय पूर्व उसने अपनी परिक्रमा के समय की गणना की थी।

'मैं सोचता था कि चार घंटे में परिक्रमा पूर्ण कर लूँगा। और यहाँ भक्तों को ऐसी किसी गणना में कोई रुचि नहीं है। पूरा जीवन इस मार्ग पर व्यतीत हो जाए, मृत्यु मिल जाए तो भी कोई चिंता नहीं।
मेरे पास कोई दायित्व नहीं है जिसके कारण मुझे परिक्रमा पूर्ण करने की शीघ्रता हो। तथापि मैं चार घंटे में इसे पूर्ण करने की मनसा रचता हूँ। एक सन्यासी ऐसी गणना में लग जाता है। यह सभी भक्त में से कोई कोई भी मेरी भाँति सन्यासी नहीं है। सभी समाज से जुड़े, परिवार से जुड़े गृहस्थ प्रतीत हो रहे हैं। तथापि उन्हें कोई शीघ्रता नहीं है। तो मैं क्यों शीघ्रता मैं हूँ? मैं क्यों इस परिक्रमा को चार घंटे में पूर्ण करना चाहता हूँ?' अपने ही प्रश्नों के उत्तर उत्सव के पास नहीं थे।
उसने निश्चय कर लिया, 'मैं इस प्रकार बावरा बनकर परिक्रमा नहीं करूँगा। यदि मेरा उद्देश्य कृष्ण का अनुभव करना है तो मुझे अपने उतावलेपन को त्यागना होगा, स्थिर होना होगा। यहाँ के प्रत्येक कण से जुड़ना होगा, प्रत्येक क्षण में उतरना होगा।'
उत्सव वहीं रुक गया, गति को विराम दे दिया।
चार घंटों में परिक्रमा पूर्ण करने की मनसा रखते हुए चलने वाला उत्सव चार वर्ष होने पर भी परिक्रमा पूर्ण नहीं कर सका।

81

इन चार वर्षों में उसने अठारह किलोमीटर का मार्ग पूर्ण कर लिया था। दण्डवत परिक्रमावासियों के साथ वह चलता रहा, उनकी सहायता करता रहा। उसे परिक्रमा पूर्ण करने की कोई शीघ्रता न थी। प्रत्येक परिक्रमा वासी उत्सव से अवश्य मिलता था, क्षण भर के लिए भी। वह सब से स्नेह से मिलता, कृष्ण नाम जपता और
परिक्रमावासियों का उत्साह वर्धन करता।
इस प्रकार के व्यवहार से परिक्रमावासियों के लिए उत्सव चर्चा का, आकर्षण का तथा सम्मान का केन्द्र बन गया। लोग तो यह भी कहने लगे कि इस मार्ग पर भविष्य में एक मंदिर बनेगा, उत्सव मंदिर। जो उत्सव के स्मरण में बनेगा। किंतु उत्सव को ऐसी बातों से कोई अंतर नहीं पड़ता था। वह तो बस अपनी धुन में व्यस्त रहता था।
विगत चार वर्षों में उत्सव ने कृष्ण का परिचय प्राप्त कर लिया । कृष्ण से सम्बंधित प्रत्येक घटना का संज्ञान ले लिया। कृष्ण के व्यक्तित्व के सभी पक्षों को जान लिया। कृष्ण चरित्र की यह यात्रा उसे आनन्दमय लगी।
एक दिन उत्सव को सूचना मिली कि मार्ग सुने पड़े हैं, कोई परिक्रमा नहीं कर रहा। केवल दण्डवत परिक्रमावासी ही मार्ग पर थे। मार्ग पूर्णत: निर्जन था, शांत था। इस स्थिति में उसके पास करने को कुछ नहीं था तो विचार करने बैठ गया।
'कितनी दृढ़ श्रद्धा है भक्तों के मन में कि मृत्यु भी यदि इस मार्ग पर मिल जाए तो भी सहर्ष मृत्यु का स्वीकार है। मृत्यु से ना तो भयभीत हैं, ना ही विचलित। और यदि मृत्यु नहीं भी आइ तो भी उसका तथा शेष जीवन का सहज स्वीकार है। मृत्यु से पूर्व कितनी श्रद्धा से, कितनी आस्था से, जीवन जी रहे हैं। मृत्यु की तरफ़ गति करते जीवन में कितनी ऊर्जा, कितनी चेतना, कितना उत्साह है। यहाँ मृत्यु भी उत्सव है, महोत्सव है।
मृत्यु की प्रतीक्षा तो मुमुक्षु काशी में भी कर रहे हैं। किंतु कितनी दयनीय अवस्था में? आस्था हीन, श्रद्धा हीन, उत्साह हीन, चेतना हीन। जैसे किसी परम्परा को निभा रहे हो, बिना किसी कारण।
मृत्यु की अभिलाषा दोनों स्थान पर है किंतु कितना अंतर है दोनों प्रतीक्षा में ! एक ही लक्ष्य किंतु मार्ग भिन्न, यात्री भिन्न।'

उत्सव ने आँखें बंद कर ली।
'यह अंतर, यह भिन्नता क्यों है? दो भिन्न नदियों के कारण? जिस के तट पर दोनों नगरी बसी हैं। अथवा दो भिन्न विचारधाराओं के कारण? कदाचित यही कारण होंगे।
किंतु सबसे बड़ी भिन्नता दोनों स्थानों के आराध्य देवताओं में प्रतीत हो रही है। एक कृष्ण है तो दूसरे महादेव।
महादेव त्यागी, महादेव विरक्त , महादेव निलकंठ।
कृष्ण योगेश्वर, कृष्ण रास रासेश्वर, कृष्ण विषनाशक।
कृष्ण में आसक्ति है, अपने भक्तों को वह अपनी तरफ़ अनायास ही आकृष्ट करते हैं। कृष्ण का चरित्र अनेक आयामों से पूर्ण है। कृष्ण के चरित इतने वैविध्य पूर्ण हैं कि किसी एक चरित्र में उसे व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। व्यक्तित्व की यही भिन्नता, यही विविधता भक्तों को आकर्षित करती है।
किंतु कृष्ण चरित्र के साथ अनेक प्रश्न भी उठते हैं। मुझे उन प्रश्नों का उत्तर खोजना चाहिए।'
'यदि उत्तर पाना है तो यहाँ बैठे बैठे कुछ प्राप्त नहीं कर पाओगे।'
'तो कहाँ जाऊँ?'
'घूमो। पूरे भारत वर्ष में जाओ। जहां भी कोई योग्य व्यक्ति मिले उसे पूछो। उससे उत्तर पाओ।'
'क्या भारत भ्रमण से उत्तर मिल जाएँगे?'
'यहाँ बैठे रहने से मिल जाएँगे?'
'मैं नहीं जानता।'
'तो निकल पड़ो।' उत्सव ने विचार यात्रा को रोक दिया। भारत यात्रा का निश्चय कर लिया। उठा और निकल पड़ा अपनी वास्तविक यात्रा पर।

82

क्षितिज के बिंदु पर चल रही उत्सव की जीवन यात्रा को दर्शाता पटल सहसा अदृश्य हो गया। गुल ने प्रश्नार्थ दृष्टि से उत्सव को देखा। उस प्रश्न का उत्तर केवल उत्सव के पास था।
“आगे क्या हुआ, उत्सव?”
“पश्चात तीन वर्ष तक भारत भ्रमण करता रहा। अनेक विद्वानों से मिला, अनेक नगरों में गया। मेरे प्रश्न मैं रखता, सभी अपनी मति अनुसार मुझे समझाने का प्रयास करते रहे। इस प्रक्रिया में कभी कभी वह स्वयं जो समझते थे उसे भी भूलने लगे। मुझे उत्तर चाहिए थे और वह समझाने लगते। किसी के पास उत्तर नहीं थे। इसी कड़ी में मैं यहाँ आ गया, तुम्हारे पास, गुल।”
“उत्सव, तुम्हारी जीवन यात्रा के पड़ावों को देखा। क्रांति के प्रति तुम्हारे दृष्टिकोण को समझा। क्रांति के वास्तविक अर्थ को जाना। प्रथम तुम एक बात बता दो कि उस विध्यार्थी क्रांति का क्या हुआ? पश्चात कहो कि कौन से प्रश्न हैं तुम्हारे? कैसे उत्तर की अपेक्षा है तुम्हें?”
“क्रांति? वह क्रांति नहीं छलावा है, षड्यंत्र है, देस के विरुद्ध प्रपंच है। जो आज भी चल रहा है। चलता ही रहेगा।केवल छद्म युद्ध हो रहा है और जनता को भ्रमित करने का प्रयास किया जा रहा है। किंतु अब जनता में भी जागृति दिख रही है। प्रपंच विफल होते जा रहे हैं किंतु नए नए रचे भी जा रहे हैं। ऐसी क्रांति से मेरा मोह भंग हो गया है।” उत्सव क्षणभर रुका। उसके शब्दों में जैसे एक भार था, एक पश्चाताप था।
“उत्सव, देश के लिए कुछ ना कर पाने की ग्लानि तुम्हारे मुख पर स्पष्ट प्रकट हो आइ है। चलो, उस विषय को छोड़ो। रखो अपने प्रश्न।”
“प्रतीत होता है कि आज समय ने उस क्षण को जन्म दे ही दिया है कि मैं मेरे प्रश्नों को तुम्हारे समक्ष रखूँ।”
“और ऐसी क्षण तीव्र गति से आगे निकल जाए उससे पूर्व कह दो।”
“मेरे प्रश्न अनंत हैं किंतु मुख्य प्रश्न हैं -

- कृष्ण कौन है?
- उसका मूल चरित्र क्या है?
- कभी महायोद्धा प्रतीत होता है तो कभी युद्ध क्षेत्र को छोड़कर भागता रणछोड़ ।
- कभी युगपुरुष तो कभी अपने ही कुल का विनाश न रोक सकने वाला ।
- कृष्ण सामान्य पुरूष है? महा मानव है? ईश्वर है?
- महायोद्धा होने पर भी विश्व के सबसे भीषण युद्ध -महा भारत के युद्ध को ना लड़ना? तथापि केवल सारथी बनकर कुरुक्षेत्र में जाने वाला कृष्ण इसी युद्ध में क्षण क्षण में व्याप्त प्रतीत होता है।
- युद्ध प्रत्यक्ष ना लड़ने पर भी समग्र युद्ध पर केवल उसका ही नियंत्रण ?
- युद्ध टालने के लिए स्वयं महाराज धृतराष्ट्र के समीप दूत बनकर जानेवाला कृष्ण, युद्ध में एक भी शत्रु पर वार नहीं करने वाला कृष्ण। और विडम्बना है कि सारे युद्ध का दायित्व, कारण केवल कृष्ण?
- कृष्ण जैसे युगपुरुष की मृत्यु इतनी साधारण?
- अपने द्वारा स्थापित द्वारिका नगरी को समुद्र में डूबने से क्यों नहीं बचा पाया कृष्ण?
- राधा नाम सत्य है या कल्पना? कृष्ण चरित्र में कहीं भी राधा का उल्लेख नहीं है तो राधा के नाम पर इतना भ्रम क्यों? कृष्ण के चरित्र को क्यों राधा नाम की कल्पना से जोड़ा जाता है?
- योगेश्वर होते हुए भी सोलह हज़ार एक सौ आठ रानियाँ? कृष्ण विषयों के, इंद्रियों के दास थे?
- गोकुल त्याग के पश्चात कृष्ण ने कभी बंसी नहीं बजाई। तथापि वह मुरली मनोहर?

- गोकुल त्याग के पश्चात कभी रासलीला नहीं रचाई तथापि रास रासेश्वर?
- एक बार गोकुल त्यागने के पश्चात कभी गोकुल लौटा ही नहीं। क्यों?
- जन्म विचित्र अवस्था में होता है। बाल्यकाल तथा तरुण अवस्था विवाद, विषाद तथा स्वयं की रक्षा में व्यतीत हो जाता है। क्षण क्षण षड्यंत्रों से बचता है। एक बालक पर यह कैसा अत्याचार?
- कृष्ण कूटनीतिज्ञ था? कपटी था? मायावी था? भ्रमित करनेवाला था?
- भीष्म,कर्ण, द्रोण, घटोत्कच, जयद्रथ आदि योद्धाओं का नष्ट करने का एक मात्र मार्ग युद्ध ही था?
- कभी गोपियों का चीरहरण करनेवाला कृष्ण द्रौपदी के चीर पूरता है। कितना विरोधाभास है?
- गोपियों की मटकी फोड़ता कृष्ण? माखन चुराता कृष्ण? कितना सत्य है इन बातों में? कृष्ण जैसा व्यक्तित्व चोर भी हो सकता है?
- जिसे कभी देखा नहीं ऐसी यौवना रूक्षमणि के छोटे से पत्र को पाकर उसका अपहरण कर लेता है। स्वयं विवाह कर लेता है। अपने पौत्र अनिरुद्ध की रक्षा हेतु स्वयं शिव से युद्ध कर लेता कृष्ण।

कृष्ण के विषय में प्रश्न करते करते उत्सव थक गया। रेत पर ही बैठ गया। गुल कुछ कहे उससे पूर्व एक स्वर सुनाई दिया, “यह सभी प्रश्न मेरे भी है। मुझे भी इन सबका उत्तर चाहिए, समाधान चाहिए।”
उत्सव तथा गुल ने एक दूसरे को देखा। मुड़कर देखा तो एक आकृति दिखाई दी। गुल के सम्मुख आ गई।
“तू....म ।” गुल उसे देखकर आगे कुछ नहीं बोल पाई।
“हाँ गुल, मैं। प्रश्नों के उत्तर मिलेंगे ना मुझे?”
आश्चर्य एवं प्रसन्नता के कारण गुल के मुख से एक भी शब्द नहीं निकल पाया। उत्सव स्थिति का आकलन करने की चेष्टा करता रहा, विफल हो गया।
“तुम मौन क्यों हो, गुल?” गुल ने अभी भी कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।
“उत्सव, तुम ही इसे पूछो ना। मुझसे तो यह बात ही नहीं कर रही है।”
“मैं?” उत्सव अचरज में पड़ गया।
“हाँ उत्सव। तुम्हारी बात वह नहीं टालेगी।”
“किंतु, मैं .... तो ....।”
“उत्सव। मैं केशव।”
“केशव? तुम केशव हो? इतने वर्षों पश्चात? कहाँ थे? क्या करते थे? सहसा यहाँ कैसे? कितना चिर विरहकाल दिया है तुमने गुल को? इस बात का संज्ञान है तुम्हें?”
“तो तुम मेरे विषय में सब कुछ जानते हो?”
“हाँ, केशव।सब कुछ ।”
“किसने, गुल ने बताया यह सब?”
“नहीं, समय की किसी क्षण ने मुझे पूरी कथा बता दी है। अरे, यह सब छोडो। यह बताओ कि तुम कब आए?”
“मैं तो यहाँ तब से खड़ा हूँ जब से तुम्हारी कथा चल रही है। मैंने भी तुम्हारे जीवन की कथा को देखा है।”
“अर्थात् तुम भी मेरे जीवन के विषय में जान चुके हो।”
“हाँ, अवश्य।”
“वाह रे केशव। वाह रे उत्सव। अभी अभी तो मिलन हुआ है आप दोनों का। और आप दोनों इस प्रकार बातें कर रहे हो जैसे बाल्यकाल से सखा हो। और इन सब में आप दोनों मेरा ही विस्मरण कर बैठे। मैं भी यहाँ उपस्थित हूँ यह स्मरण रहे आप दोनों को।” केशव को देख जन्मे सुखद आघात से स्वस्थ होकर गुल ने कहा।
“तो तुम ...।”
केशव आगे बोले उससे पूर्व ही गुल ने कहा, “समय अधिक हो गया है। मुझे हमारे लिए भोजन की व्यवस्था करनी है। मैं तो चली। आप दोनों बातें करो। मैं शीघ्रता से भोजन तैयार कर लाती हूँ।”
गुल चली गई। उत्सव तथा केशव तट पर बैठे बैठे समुद्र को देखते रहे, सुनते रहे।

83

“भोजन तैयार है, आ जाओ तुम दोनों।” गुल ने पुकारा।
उत्सव उठा। केशव ने रोका।
“बैठो। आज भोजन यहीं करेंगे। भोजन यहाँ लेकर आओ। आज हम समुद्र की साक्षी में, मद्धम चाँदनी में, तट की रेत पर, शीतल समीर के साथ भोजन करते हैं। ”
“ठीक है। जैसी तुम्हारी मनसा। किंतु किसी एक को मेरी सहायता करनी होगी।”
केशव सहायता हेतु आगे बढ़ा। उत्सव ने रोका, “केशव, तुम यात्रा से आए हो, विश्राम करो । मैं जाता हूँ।” केशव रुक गया।
शीघ्र ही समुद्र तट पर, ऊष्मा से तप्त रेत पर, समुद्र की लहरों से कुछ अंतर पर, श्वेत चाँदनी में, समुद्र की मधुर ध्वनि के साथ सभी भोजन करने लगे। भोजन करते करते कोई किसी से कुछ नहीं बोला।
भोजनोपरान्त केशव बोला, “जिस गुल को छोड़कर मैं गया था वह अब इतना मधुर, इतना स्वादपूर्ण भोजन बना लेती है ! यह जान कर मन प्रसन्न हो गया।”
“प्रशंसा के लिए धन्यवाद, केशव। किंतु भोजन के पश्चात इस तट की शीतल लहरों में सो नहीं जाना। मैं अभी आती हूँ। मुझे तुमसे कितनी सारी बातें करनी है। तुम जागोगे ना?”
“मैं भला कैसे सो सकता हूँ? मुझे भी अनेक बातें करनी है।”
गुल चली गई। उत्सव के मन में विचार ने जन्म ले लिया, ‘वर्षों के पश्चात केशव गुल से मिल रहा है। इस स्थिति में मेरा यहाँ क्या काम? मैं कहीं और चला जाता हूँ। दोनों निर्बाध बातें कर सके इस हेतु मुझे कहीं चले जाना चाहिए।’ उत्सव ने निश्चय कर लिया।
“केशव, मुझे कहीं जाना है। मैं चलता हूँ। आप दोनों बातें करो। कल मिलेंगे।” उत्सव जाने लगा।
“क्यों? क्या तुम्हें मेरी बातें सुनने में कोई रुचि नहीं है? और इस रात्रि के समय तुम्हें कौन सा ऐसा काम आ पड़ा है कि मित्रों को छोड़कर चले जा रहे हो?”
“केशव, वर्षों की प्रतीक्षा के पश्चात तुम गुल से मिल रहे हो। इस मिलन में मैं बाधा नहीं बनना चाहता। इस लिए मैं …।”

“तुम बाधा नहीं हो हमारे लिए किंतु तुम बहाने अच्छे बना लेते हो। बैठो यहाँ पर। कहीं नहीं जाना है तुम्हें। और तुम्हें यहाँ रोकने पर बाध्य कर सकुं इतना अधिकार तो है ना तुम पर मेरा?”
“केशव सत्य कह रहा है, उत्सव।” गुल ने कहा। उत्सव रुक गया।
एक युवति, दो युवक। तीनों यौवन से युक्त। समुद्र का तट, चाँदनी, शीतलता, मंद मंद समीर, रेत, रात्रि, असीम आकाश के नीचे। इस अवस्था में भटक जाना किसी के भी लिए सहज होता है। किंतु, नहीं।
भटक जाए ऐसे कहाँ है यह गुल, केशव और उत्सव? तीनों के भीतर कृष्ण के उपरांत अन्य कोई विषय, कोई चरित्र, कोई प्रश्न कहाँ थे? कृष्ण नाम का सूत्र, कितना अद्भुत !
“केशव, इतने वर्षों तक कहाँ थे? क्या कर रहे थे? और अब सहसा द्वारका का स्मरण?” गुल ने वार्तालाप का प्रारम्भ करते हुए प्रश्न कर दिए।
“यदि मैं पूरी कथा सुनाने लगा तो अनेक रात्रि इसी प्रकार वार्तालाप में ही व्यतीत हो जाएगी।”
“मुझे स्वीकार है।” गुल ने कहा।
“इसका कोई अर्थ नहीं है, गुल। और यदि हमने ऐसी बातों में व्यर्थ ही अनेक रात्रि गंवा दी तो हमारे प्रश्नों के उत्तर कब दोगी? वैसे भी इन प्रश्नों के उत्तर के लिए उत्सव ने चिर प्रतीक्षा की है। अतः मैं संक्षिप्त में कुछ महत्वपूर्ण बातें बताता हूँ। ठीक है ना?”
गुल तथा उत्सव ने सम्मति दी।
“मुंबई से शिक्षा प्राप्त कर मैं अमेरिका चला गया। यह तो आप जानते ही हैं। वहाँ की अवकाश संशोधन संस्था नासा में वैज्ञानिक के रूप में मैंने कार्य प्रारम्भ किया। मैं मेरे कार्य से प्रसन्न था, संतुष्ट भी था। मेरी क्षमता, मेरे कौशल्य एवं मेरी कार्यनिष्ठा के कारण मुझे शुक्र ग्रह पर जाने वाले अवकाश यान के अभियान दल का सदस्य चुना गया। तीन वर्ष के कार्य के फल स्वरूप हमने उचित साधन सामग्री तैयार कर ली। अंतत: उस यान को शुक्र पर भेजनी की तिथि निश्चित कर दी गई।
इन वर्षों में मेरे अमेरिका निवास के समय अमेरिका देश की संस्कृति के कारण मुझे व्यसन, मदिरापान, व्यभिचार, भ्रष्टाचार आदि अनेक प्रलोभनों का प्रतिकार करना पड़ा। अनेक षड्यंत्रों का भी प्रतिकार करना पड़ा। इस संघर्ष की अवस्था में हमारे देश के, गुरुकुल के संस्कारों ने मुझे प्रबल बल दिया और मैं इन सभी से बच गया।”
“यह तो चमत्कार है, केशव।”
“यही सत्य है। सत्य चमत्कार से भी प्रचंड होता है।”
“यही हमारे संस्कारों की शक्ति है। हैं ना केशव? हैं ना गुल?”
“अवश्य। आगे कहो। मैं अधीर हो रही हूँ।”
“इस अवकाश यान से जुड़ी एक घटना मैं बताता हूँ। यान सफलतापूर्वक छोड़ा गया। पश्चात मेरा दायित्व था धरती से उस यान का संचालन तथा नियंत्रण करना। मेरे साथ अनेक साथी भी थे।
एक रात्रि मेरे साथ अन्य तीन व्यक्तियों का दल उस यान का निरीक्षण कर रहा था। यान को छोड़े सात दिन हो चुके थे।सब कुछ योजनानुसार चल रहा था। सब कुछ सामान्य था। अतः सब निश्चिंत थे। बाक़ी सदस्यों ने कहा कि इतने दिनों के परिश्रम के कारण वह थके हुए हैं। कुछ समय तक सोना चाहते हैं। कहते हुए निद्राधीन हो गए। मैं अकेला जगता रहा। यान का निरीक्षण एवं संचालन करता रहा।
कुछ समय पश्चात यान ने संकेत भेजे। निश्चय ही वह संकेत आनेवाली समस्या के थे। मैंने उसे समझा, साथी सदस्यों को जगाया। किंतु सभी मदिरा पान कर सोए थे। अचेत पड़े थे। उन्हें जगाना व्यर्थ था, उनका जागना भी व्यर्थ था। मैंने स्थित एवं मति अनुसार यान को नियंत्रित करने का प्रयास किया। किंतु सब व्यर्थ !
क्षण प्रतिक्षण यान मेरे नियंत्रण से बाहर जा रहा था। वह अस्थिर हो गया। संतुलन खोने लगा। अपनी नियत भ्रमण कक्षा से भटकने लगा। मेरे सभी प्रयास विफल हो रहे थे।
यान की स्थिति को समझ कर मैंने दल के अन्य सदस्यों का सम्पर्क करने का प्रयास किया किंतु अज्ञात कारण वश संचार की सभी व्यवस्था निष्क्रिय हो गई थी। मेरे लिए कोई सहायता उपलब्ध नहीं रही।
मैं था, अस्थिर यान था एवं विवशता थी। हारकर मैं रो पड़ा। रोते रोते मुझे ईश्वर का स्मरण होने लगा, द्वारिकाधीश का स्मरण हो गया। उसे हृदय से प्रार्थना की, विनती की।
मैं प्रार्थना करता रहा, विनती करता रहा, यान को नियंत्रित करने के सभी उपाय करता रहा। ईश्वर के स्मरण से, प्रार्थना से, विनती से मेरे भीतर श्रद्धा जन्मी। नयी ऊर्जा का संचार होने लगा। मैं पुन: उन सभी प्रयासों में लग गया जो यान नियंत्रित करने के लिए करने होते हैं। मेरी दृष्टि यान की गतिविधि पर स्थिर थी।

कुछ समय पश्चात सहसा यान की बाहरी सतह पर किसी के हाथ होने का आभास हुआ। मैंने पुन: देखा। हाथ ही थे किसी के। तत्क्षण यान स्थिर हो गया। मैंने प्रसन्न होकर नियंत्रण कक्ष में देखा। सब कुछ सामान्य हो गया। मैंने पुन: उस बाहरी सतह को देखा। वहाँ अब कुछ नहीं था। केवल ब्रह्मांड था। यान अपनी निर्धारित कक्षा में भ्रमण करने लगा। पूर्ववत् कार्य करने लगा।
दूसरे दिन जब रात्रि की घटना का विश्लेषण हो रहा था तब एक साथी एक मुद्रित अंश लेकर आया। सभी ने उसे देखा। उसमें यान को स्थिर कर रहे दो हाथ वाला दृश्य भी मुद्रित हो गया था वह सभी ने देखा। सभी ने मुझे उस विषय में, उसके रहस्य के विषय में पूछा। किंतु मेरे पास उसको व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं थे। मैं मौन रहा।"
"तो तुम इस का श्रेय द्वारिकाधीश को देना चाहते हो?"
"अवश्य, उत्सव। और किसका हाथ उस ब्रह्मांड में हो सकता है?"
"किंतु, केशव। तुम इस घटना से पूर्व तक द्वारिकाधीश का विस्मरण कर चुके थे। तुम कृष्ण को भूल गए थे।"
"यह सत्य है कि मुझे कृष्ण का विस्मरण हो गया था। किंतु उस क्षण के पश्चात एक भी क्षण बिना कृष्ण स्मरण की व्यतीत नहीं की मैंने।"
"सत्य तो यह भी है कि उस क्षण तक तुम्हें द्वारका, द्वारिकाधीश, गुरुकुल आदि का स्मरण नहीं था। तो तुम मेरा स्मरण करते होंगे ऐसी कल्पना करना व्यर्थ ही है, केशव।"
"यह सत्य को मैं स्वीकार करता हूँ, गुल।"
"केशव, यही हमारी मित्रता है? यही ...।"
"विस्मरण हेतु क्षमा प्रार्थी हूँ, गुल।"
"गुल, केशव को क्षमा कर दो।"
"उत्सव, तुम भी?"
"हाँ गुल। केशव में सत्य कहने का, सत्य का स्वीकार करने का साहस है। इस आधार पर क्षमा का अधिकार है केशव का।"
"अर्थात् तुम दोनों पुरुष एक पक्ष में हो गए। मैं क्षमा करनेवाली नहीं हूँ।" गुल रुष्ट हो गई।
"गुल, आज मेरा मन तेरे साथ लड़ाई करने का नहीं है। लड़ाई कल सूर्योदय के पश्चात कर लेंगे। चलेगा ना?"
केशव की इस बात ने गुल के कृत्रिम क्रोध को पिघला दिया। वह हंस पड़ी।
"चलेगा। किंतु वचन दो कि कल तुम मुझ से लड़ाई अवश्य ही करोगे।" उत्सव और केशव दोनों हंस पड़े।
"एक अन्य घटना सुनाता हूँ। वास्तव में उसने ही मुझे द्वारका बुलाया है।"
"कौन है वह? भगवान द्वारिकाधीश?" गुल ने पूछा।
"नहीं गुल। वह व्यक्ति तुम हो, गुल तुम हो।"
"नहीं, केशव। वह ना तो द्वारिकाधीश है ना ही गुल है।"
"तो कौन है वह?"
"इस प्रश्न के उत्तर से पूर्व हमें कहीं जाना होगा।"
"कहाँ?"
"चलो मेरे साथ।"
"अभी? इस रात्रि में?"
"गुल, रात्रि की चिंता क्यों करती हो? हमें जहां जाना है वहाँ तक का मार्ग इस चाँदनी में हमें स्पष्ट रूप से दिखाई देगा। है ना केशव?"
"हाँ उत्सव।"

84

तीनों चलने लगे। चाँदनी मार्ग प्रशस्त करती रही। केशव सब को संगम घाट पर लेकर आया। स्मशान के समीप वह रुक गया।
“आप दोनों यहीं रुको, मैं अभी आता हूँ।”
कुछ अंतर केशव अकेला चला। पश्चात वह रुक गया। उसने जो देखा उसने उसे अचंभित कर दिया।
“ओह ... हो ...।”
स्मशान की इस नीरव रात्रि में इन शब्दों को सुनकर गुल एवं उत्सव दौड़कर केशव के समीप आ गए।
“क्या हुआ, केशव?”
“इस तट को देखो। यहाँ पर पड़े इन पत्थरों को देखो। यह पत्थर यहाँ कब लगे?” केशव ने प्रश्न किया। उत्तर नहीं मिला। वह आगे बोला, “मैं जब इस तट को छोड़कर गया था तब रेत से भरा तट था, यह पत्थर नहीं थे ना? गुल?”
“नहीं केशव। यह पत्थर तब नहीं थे। कुछ मास पूर्व ही यह पत्थर लगाए गये हैं। यह तंत्र की व्यवस्था है। इसमें इतना व्यथित होने जैसा क्या है?”
“है, गुल है। यही तो ...।”
“केशव, तुम विस्तार से कहो कि बात क्या है? किस कारण तुम इन पत्थरों से विचलित हो। गुल, हमें प्रथम पूरी बात जाननी होगी। बिना कारण विचलित होनेवालों में केशव नहीं है।”
“उत्सव। गुल। मुझे ज्ञात था कि यह सब होनेवाला है, हो रहा है। किंतु मैं कुछ नहीं कर सका।”
“क्या नहीं कर सके?”
“मैंने कुछ करने की चेष्टा ही नहीं की। मुझे कुछ करना चाहिए था किंतु मैं निष्क्रिय रहा। यह सब मेरा दोष है। मेरा, केवल मेरा।”
“तुम स्वयं को दोष देते ही रहोगे या कुछ बताओगे भी?”
“एक रात्रि की बात है। मुझे स्वप्न आया कि मैं इसी स्थान पर, मैं जहां इस समय खड़ा हूँ वहीं, खड़ा था। सम्मुख मेरे अरबी समुद्र था। अपनी लहरों में मग्न था। मैं उसे देखने में मग्न था। तभी सहसा समुद्र के भीतर से कोई आकृति मेरे समक्ष प्रकट हो गई। वह धुंधली थी अतः मैं जान नहीं सका कि वह क्या है?
मैंने पूछा, “कौन हो तुम? स्पष्ट रूप से अपना मुख दिखाओ।”

"यह नहीं हो सकता। किंतु इतना जान लो कि मैं समुद्र हूँ। इतना पर्याप्त है तुम्हारे लिए।"
"समुद्र? क्यों मेरा परिहास कर रहे हो?"
"नहीं, मैं सत्य कह रहा हूँ।"
"समुद्र इस प्रकार प्रकट कहाँ होता है?"
"स्मरण करो, राम के सम्मुख मैं प्रकट हुआ था। मेरे भीतर से लंका जाने का मार्ग प्रशस्त करने के लिए।"
"किंतु मैं राम नहीं हूँ। ना ही मुझे लंका या अन्यत्र कहीं जाना है ।"
"मुझे संज्ञान है इस बात का। किंतु तुम्हें मेरा विश्वास करना होगा। मैं समुद्र ही हूँ और आज मुझे तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है।"
"चलो, क्षणभर मान लेता हूँ। कहो, क्या कहना है?"
"मेरे इस तट को प्रशासन बांध देना चाहता है। बड़े बड़े पत्थरों की एक लम्बी चौड़ी भिंत मेरे तथा नगर के मध्य बांध देना चाहते हैं। इस प्रकार तो मैं बंदी बन जाऊँगा। मुझे बंदी बनाने से रोक लो। पत्थरों की भिंत बनाने से रोक लो। मुझे बचा लो। बस यही मेरी प्रार्थना है।"
"किंतु मैं क्या कर सकता हूँ? यह तो प्रशासन ...।" मेरे शब्द अपूर्ण ही रहे। वह आकृति पुन: समुद्र में विलीन हो गई। कई क्षण तक मैं उस बिंदु को देखता रहा, जब तक मेरा स्वप्न चला।
जागते ही मैंने स्वप्न का स्मरण किया तो मैं स्वयम् पर ही हंस पड़ा। 'कैसे कैसे स्वप्न देखता है यह मन !' और उसे स्वप्न मानकर उसे वहीं छोड़ दिया। मैं आपने कार्य में व्यस्त हो गया।"
केशव क्षणभर रुका। कुछ चरण वह समुद्र की तरफ़ बढ़ा। पत्थरों की उस भिंत को देखने लगा।
"वह स्वप्न," केशव ने आगे कहा, "केवल उसी रात्रि आया था ऐसा नहीं है। प्रत्येक रात्रि, अविरत दस बारह रात्रि, वह स्वप्न आता रहा। स्वप्न की पुनरावृत्ति ने मुझे विचलित कर दिया, विचार करने के लिए विवश कर दिया। मुझे विश्वास हो गया कि समुद्र वास्तव में मेरी सहायता चाहता है। मुझे सहायता करनी चाहिए। आवश्यक कार्य पूर्ण कर, अवकाश लेकर मैं इसी कारण यहाँ चला आया। मुझे आने में विलम्ब हो गया। किंतु अब मैं क्या सहायता करूँ? कुछ भी तो शेष नहीं रहा।"
"तो इस समुद्र ने तुम्हें यहाँ बुलाया है ! समुद्र के आमंत्रण पर श्रीमान केशव द्वारका आए हैं। ऐसा ही है ना उत्सव?"
"गुल, यह समय इन बातों का नहीं है। समुद्र के प्रति केशव की भावना को समझो, निष्ठा को समझो। केशव, हमें प्रशासन से इस विषय पर बात करनी होगी। हम अभी भी कुछ कर सकते हैं।"
"कल सब से प्रथम हमें यही कार्य करना होगा, उत्सव।"
रात्रि गति कर गई । पूर्वाकाश में गोमती नदी पर सूर्योदय के लिए आकाश ने तथा दिशाओं ने मंच सज्ज कर लिया । सूर्योदय हुआ। उससे ऊर्जा प्राप्त कर तीनों, गुल-केशव-उत्सव, लौट आए।

"सब व्यर्थ। प्रकृति पर मानव का यह कैसा आक्रमण? हम उसे उसकी नैसर्गिक अवस्था में भी नहीं रहने देते हैं। ऐसा करने

का अधिकार हमें किसने दिया?" केशव बोले जा रहा था।
उत्सव ने उसे रोका, "कुछ कहोगे कि क्या हुआ? यूँ ही बोले जा रहे हो।"
"प्रशासन अंधा, बहेरा होता है ऐसा सुना था। किंतु असंवेदनशील भी होता है यह देख लिया।"
"अर्थात् वह समुद्र की मुक्ति हेतु सम्मत नहीं हैं। यही ना, केशव?"
"हाँ, गुल। हाँ, उत्सव। समुद्र की निर्बाधता को बांध दिया है और उसके लिए उनके पास असंख्य कारण है।"
"असंख्य? इन कारणों में कोई तथ्य, कोई तर्क भी है क्या?"
"तर्क?" केशव हंसने लगा, "प्रशासन की दृष्टि में सबसे तर्कपूर्ण जो कारण है वह मैं आप दोनों को बताता हूँ।"
"हंसते भी हो और तर्कपूर्ण भी बताते हो?" गुल ने पूछा।
"सुनी। आप दोनों भी जब सुनोगे तो आप भी हंसते रह जाओगे।"
"कहो, कहो।मैं तो अधीर हो रहा हूँ। गुल, तुम?"
"वह कहते हैं कि आज हमने जिस प्रकार समुद्र के तट को सीमाओं में बांधा है ऐसा द्वारिकाधीश ने अपने समय में बांध लिया होता तो द्वारका नगरी समुद्र में कभी नहीं डूबती। अपने ऐसे तर्क पर वह अधिकारी हंसने लगा।"
"वह क्यों हंसने लगा?"
"अपनी मूर्खता पर।"
"और हम उसकी मूर्खता पर।" तीनों हंसने लगे।
"यदि इस प्रकार समुद्र को बांधने से समुद्र को रोका जा सकता तो विश्व में अनेक नगर समुद्र के प्रकोप से बच जाते। कई संस्कृतियों को नष्ट होने से बचाया जाता।" उत्सव ने कहा।
"जिस दिन समुद्र ने यह निश्चय कर लिया कि किसी नगर को अपने भीतर समा लेना है उस दिन समुद्र ऐसी सभी सीमाओं को अपनी एक ही प्रचंड लहर से तोड़ देगा। ऐसी सीमाएँ कभी समुद्र को रोक नहीं पाती।" केशव ने कहा।
"ऐसी मूर्खता से लड़ें भी तो कैसे?" गुल ने पूछा।
"हम प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर अपना पक्ष रखेंगे। साथ साथ उस अधिकारी की मूर्खता को भी प्रकट करेंगे। कोई न कोई स्तर पर कोई तो हमारी बात ....।"
केशव की बात उत्सव ने काटते हुए कहा, "यह भारत है, केशव। यहाँ ऐसा कुछ नहीं होगा। यहाँ के व्यवहार इतने भ्रष्ट हैं कि यदि कल को वह समुद्र को बेच भी दे तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए।"
"यह क्रांतिकारी विद्यार्थी नेता उत्सव कह रहा है?"
"नहीं, केशव। उत्सव सत्य कह रहा है। वह सारी व्यवस्था को भली भाँति जानता है, जो सडी हुई है, जिसमें कोई संवेदना नहीं बची है।"
"तो क्या करें? कर्म किए बिना, प्रयास किए बिना उसे भूल जाएँ?"
उत्सव तथा गुल के पास कोई उत्तर नहीं था।
"मैं अपने यथा सम्भव प्रयास करता रहूँगा।"
यह बात उस क्षण से तीनों के मध्य समाप्त हो गई किंतु केशव के लिए अभी जीवंत थी। उसने अनेक स्तर पर इस बात को उठाया। अपना पक्ष रखा। कहीं कहीं तो स्वप्न में समुद्र ने जो कहा था वह भी सुनाया। किंतु, सब व्यर्थ। कहीं से कोई सकारात्मक संकेत नहीं मिले, किसी ने इस बात को गम्भीरता से नहीं लिया।
"यह कैसा देश है? कैसा प्रशासन है? हमारी क्रिया की कोई प्रतिक्रिया भी नहीं दे रहा है। यहाँ तक कि प्रधान मंत्री कार्यालय ने भी कोई उत्तर नहीं दिया। प्रकृति की तरफ़ जितने असंवेदनशील है यह प्रशासन उतना ही असंवेदनशील हमारी बातों के प्रति भी है। हम ऐसे कैसे हो सकते हैं? क्या यह देश वास्तव में स्थितप्रज्ञ हो गया है। किसी को कोई बात से अंतर ही नहीं पड़ता।"
"केशव, हमारे कारण ही उस अधिकारी का द्वारका से स्थानांतरण हो गया है।" गुल ने कहा।
"यह हमारा उद्देश्य नहीं है, गुल। अधिकारी बदलने से स्थिति तो नहीं बदली। सोच नहीं बदली। सभी एक ही डाल के पंखी होते हैं।"
"केशव, तुम अपने सभी प्रयास कर चुके हो। आगे भी करते रहना। किंतु हमें हमारे मन की जिज्ञासा तथा उसके समाधान पर भी ध्यान देना होगा।"
"उत्सव, यह भी आवश्यक है। गुल, हमारे प्रश्नों पर तुम तो ध्यान दोगी ना? या तुम भी प्रशासन के अधिकारी की भाँति ....।"
"बस करो, केशव। प्रशासन अधिकारी में तथा मुझ में तुम्हें कोई अंतर नहीं दिख रहा?" गुल रुस गई।
केशव तथा उत्सव को छोड़कर समुद्र की तरफ़ चली गई। केशव उत्सव ने एक दूसरे को देखा। दोनों वहीं बैठे रहे। गुल के

लौटने की प्रतीक्षा करने लगे।
कुछ क्षण तक गुल समुद्र की तरफ़ चलती रही। सहसा पीछे मूडी। देखा तो दोनों वहीं अपने अपने स्थान पर बैठे थे। वह लौटकर आइ और बोली, "तुम दोनों मुझे मनाने क्यों नहीं आए?"
"गुल, रुषने मनाने के स्तर से तुम कहीं ऊपर उठ चुकी हो। तुम्हें ऐसी बातों की आवश्यकता कैसे होने लगी?"
केशव के इस उत्तर से गुल हंस पड़ी।
"गुल, तुम मिथ्या क्रोध करना जानती हो?"
"नहीं, उत्सव।"
"तो ऐसी बातों का त्याग कर दो। और हमारे प्रश्नों का समाधान करो, गुल।"
"नहीं केशव, केवल गुल कहने से काम नहीं होगा। इसे पंडित गुल कहो। है ना पंडित गुल?"
"केशव, इतने दिनों तक धीर गम्भीर रहने वाला उत्सव तुम्हारे संग में व्यंग करने लगा है। ऐसे संग का प्रभाव ठीक नहीं है, उत्सव।"
अपने शब्दों पर गुल हंस पड़ी। केशव तथा उत्सव ने हंसने में गुल का साथ दिया।

86

समुद्र की साक्ष्य में गुल एक बड़ी शिला पर बैठी थी। रात्रि का अंतिम प्रहर चल रहा था। केवल तीन व्यक्ति थे उस क्षण तट पर। अन्यथा तट शून्य था। समुद्र पूर्ण चेतना से भरा था। तट तक लहरों को ले जाने का दायित्व पूरे उत्साह से निभा रहा था। कृष्ण पक्ष की पंचमी का चंद्र अपनी ज्योत्सना से तट की रेत को शीतलता दे रहा था। ज्योत्सना की किरणें उत्सव तथा केशव के मुख को कांतिवान कर रही थी तो गुल के मुख को ओजस्वी एवं ऊर्जावान बना रही थी। समुद्र से आता शित समीर मन को प्रसन्न कर रहा था। वातावरण को सुंदर बना रहा था।
गुल शिला पर बैठी थी तो उत्सव- केशव रेत पर बैठे थे, गुल के समीप। जैसे शिष्य अपने गुरु के चरणों में बैठे हो।
गुल शिला पर बैठना नहीं चाहती थी किंतु कुछ क्षण पूर्व जो हुआ उसने गुल को शिला पर बैठने के लिए विवश कर दिया।
चलो उस क्षण में चलते हैं।
"गुल, यह स्थल एवं यह समय निर्धारित करने का कोई उचित कारण है क्या?"
"आप दोनों को प्रश्नों के उत्तर चाहिए, और वह भी मुझ से ही चाहिए। हैं ना?"
"हाँ।"
"हाँ।"
"अर्थात् तुम दोनों ने मुझे गुरु बना दिया।"
"इस बात पर हमें कोइ संशय नहीं है।"
"तो गुरु की बात को गुरु की आज्ञा मानना होगा। गुरु के निर्णय पर संदेह नहीं किया करते।"
"जैसी आज्ञा, गुरु जी।"
"हमें हमारे प्रश्नों के उत्तर किसी भी अवस्था में मिलें, हमें स्वीकार है।"
"तो चलो मेरे साथ।"
गुल समुद्र की तरफ़ चलने लगी। दोनों उसका अनुसरण करने लगे। रात्रि के उस कालखंड की शांति में समुद्र की ध्वनि के साथ रेत पर चल रहे छः चरणों की ध्वनि घुल गई।
समुद्र में महावेल चल रही थी। तरंगों की ध्वनि इसी कारण प्रचंड थी। चलते चलते गुल पानी के भीतर गई, रुक गई। उत्सव, केशव भी रुक गए।
"गुल, तुम इस पानी में हमें उत्तर दोगी?"
"उससे तो रेत पर बैठना उचित रहेगा।"
"देखो, गुरु कौन है? आप या मैं?"

“तुम।”
“तुम।”
“तो मैं जो कहती हूँ वही करो। गुरु की आज्ञा का पालन करो कोई संशय ना रखो।”
गुल के ओष्ठों ने स्मित किया। गुल ने समुद्र में डुबकी लगायी। स्नान किया। उत्सव केशव उसे देखते रहे। संकेतों से एक दूसरे को पूछते रहे कि गुल क्या करना चाहती है।गुल ने स्नान पूर्ण किया। देखा तो दोनों प्रतिमा की भाँति खड़े थे।
“तुम दोनों अभी भी खड़े क्यों हो?”
“गुरुजी, आपने तो कोई आज्ञा ही नहीं दी।”
“हम आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा में हैं।”
“अरे, शिष्यों। मैंने स्नान किया है तो आपको भी स्नान करना है ऐसा स्पष्ट शब्दों में बोलना पड़ेगा क्या?”
दोनों ने कुछ भी बोले बिना शीघ्र ही पानी में डुबकी लगा ली, स्नान करने लगे। गुल तट पर चली गई, दोनों समुद्र से बाहर आ गए।
गुल जहां खड़ी थी उस स्थान से कुछ अंतर पर एक शिला थी। उसे देखकर केशव समीप गया और बोला, “गुरुजी, आप इस शिला पर आसन ग्रहण करें।” गुल तथा उत्सव ने उस शिला को देखा। वह भी वहाँ आ गए।
“इस शिला पर एक ही व्यक्ति बैठ सकता है।”
“और वह व्यक्ति है पंडित गुल। गुरुजी गुल। आइए, बैठिए।”
“और आप दोनों?”
“हम यहाँ रेत पर, गुरुजी के चरणों में बैठेंगे।”
“उत्सव, केशव। यह कैसा उपहास है? “
“हम तो गुरु को गुरूपद दे रहे हैं। “
“अरे? मैं तो वैसे ही स्वयं को गुरु गुरु बोल रही हूँ। मैं कोई गुरु बुरु कहाँ?”
“नहीं, गुल। जो मनुष्य के किसी भी संदेह का समाधान करे, प्रश्नों के उचित उत्तर दे उसे गुरु ही कहते हैं। अतः आप हमारे इस प्रयोजन के लिए, इस समय गुरु ही हैं। तो आप अपना आसन ग्रहण कर शिष्यों पर अनुग्रह करें।” उत्सव की इस बात ने गुल को विवश कर दिया। उसने गुरुपद ग्रहण कर लिया। दोनों रेत पर बैठ गए।
शिला पर बैठी गुल के वस्त्र भीगे थे। केश खुले थे। समुद्री समीर में केश तालबद्ध लहरा रहे थे। चंद्र की ज्योत्सना गुल के ललाट पर पड़ रही थी। जिससे प्रतीत हो रहा था कि जैसे गुल ने ललाट के मध्य में शुभ्र तिलक किया हो। मुख पर पड़ रहे चंद्र रश्मि वदन की आभा को निखार रहे थे। गुल की पीठ समुद्र की तरफ़ थी तो दृष्टि में द्वारिकाधीश का मंदिर।
गुल ने सर्व प्रथम अपने गुरु महादेव भड़केश्वर को नमन किया। पश्चात द्वारिकाधीश को वंदन किया। मुड़कर समुद्र को प्रणाम किया। दोनों शिष्यों ने गुल का अनुकरण किया। गुल ने पद्मासन कर लिया, आँखें बंद कर ली। दोनों ने भी वही किया। दोनों ने अपनी समग्र इंद्रियों को गुल के शब्दों पर केंद्रित कर दिया। गुल ने कहना प्रारम्भ किया।
“हम हमारे प्रश्नों के उत्तर क्यों चाहते हैं? किसी निष्कर्ष पर आने के लिए? अथवा स्वयं को चतुर एवं बुद्धिमान सिद्ध करने के लिए? सम्भव सभी प्रयासों के पश्चात भी यदि हमें उत्तर नहीं मिलते तो हम उसे स्वयं का, हमारी बुद्धि का, हमारे ज्ञान का पराभव मानने लगते हैं।
ऐसे दो चार प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलने पर हम परास्त हो जाते हैं। हमें हमारी बौधिक क्षमता पर संशय होने लगता है। यदि हम ऐसा कर रहे हैं तो यह स्वीकार कर लो कि प्रश्नों के जन्म के साथ ही हम परास्त हो गए हैं, उत्तर मिले या ना मिले।”
“तो क्या हमें उत्तरों को प्राप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहिए?”
“केशव, प्रश्नों के उत्तर सरल होते हैं। हमें प्रयास करने ही चाहिए। निरंतर प्रयास करते रहना चाहिए। किंतु उस समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारे प्रश्नों के उत्तरों का उद्देश्य क्या है? अंतिम लक्ष्य क्या है? क्या प्राप्त उत्तर हमारे उद्देश्य की दिशा में हमें अग्रसर कर रहे हैं? ऐसा तो नहीं कि उन उत्तरों से हम किसी अन्य दिशा की तरफ़ आकृष्ट हो जाएँ और हम हमारे लक्ष्य का विस्मरण कर दें अथवा लक्ष्य को ही बदल दें। यदि ऐसी स्थिति बनती है तो वह उत्तर हमारे लिए लाभप्रद नहीं है।”
“तो क्या हमें मन में जन्म ले रहे प्रश्नों का वध कर देना चाहिए।?”
“नहीं उत्सव। प्रश्नों का जन्म लेना अत्यंत सहज प्रक्रिया है। मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति के मन में भी प्रश्न जन्म लेते हैं। हम तो साधारण मनुष्य हैं। हमारे मन में जन्म ले रहे प्रश्नों को जन्म लेने से कौन रोक सकता है? उसे जन्म लेने दो। उसे प्रवाहित होने दो। हमें उसे मारना नहीं है। यहाँ हमें हमारी भूमिका निष्ठा से निभानी होगी। हमारी बुद्धि का प्रयोग करना है जो बुद्धि क्षमता की कसौटी भी है।”

“वह कैसे?”
“इस स्थिति में हमें चयन के सिद्धांत का प्रयोग करना होगा।”
“क्या है यह सिद्धांत?”
“सरल है। हमारा मन क्षण प्रतिक्षण अनगिनत विचार करता रहता है। इन विचारों में अनगिनत प्रश्न भी छिपे होते हैं और उत्तर भी। यदि मन के विचार करने की गति से, उत्पन्न सभी प्रश्नों की सूची बनाकर उसके उत्तर खोजने का प्रयास करेंगे तो पूरा जीवन व्यतीत हो जाएगा। किंतु उत्तर नहीं मिल पाएँगे।”
“ऐसा क्यों?”
“क्यों कि विचार करने की मन की क्षमता असीमित है।। अतः इस स्थिति में हमें चयन के सिद्धांत का आश्रय लेना पड़ेगा। हमें उन प्रश्नों का चयन करना होगा जो हमारे लिए उपयुक्त हैं। जो उपयुक्त नहीं होते हैं ऐसे प्रश्नों की संख्या अधिकतम होती है। ऐसे प्रश्नों को त्याग दो। तभी शेष उपयुक्त प्रश्नों पर ध्यान केंद्रित किया जा सकता है।”
“बिना काम के कौन से विचार होते हैं? कुछ उदाहरण दो।”
गुल ने कुछ क्षण सभी दिशाओं में देखा, विचार किया और कहा।
“इस व्योम को देखो।” गुल ने गगन की तरफ़ संकेत किया, “सुंदर चंद्रमा विहार कर रहा है ! है ना?”
“हाँ, गुल।”
“हाँ, सुंदर है।”
“इस समय उसे देखकर आप दोनों के मन में कौन से प्रश्न जन्म लेते हैं ? आप मुझे बताएँगे। किंतु आप केवल एक ही प्रश्न मेरे सम्मुख रखेंगे जो आपके अनुसार सबसे महत्व रखता है।”
दोनों शशांक को देखने लगे। विचार करने लगे। कुछ क्षण पश्चात उत्सव बोला,“मेरे मन में जन्मे अनेक प्रश्नों में से एक प्रश्न जो मुझे हो रहा है वह है कि चंद्र की ज्योत्सना के कारण नभ में स्थित असंख्य तारों को मैं नहीं देख पाया। चंद्र को ऐसा अधिकार क्यों है?”
“केशव, तुम्हारे मन के प्रश्न को प्रकट करो।”
“धरती से चंद्रमा इस समय जिस अंतर पर है उस अंतर को यदि कुछ प्रतिशत घटाया अथवा बढ़ाया जाये तो उसका धरती पर प्रभाव क्या होगा?”
“और यदि ऐसा करें तो चंद्र की ज्योत्सना की कांति में क्या अंतर पड़ेगा?” उत्सव ने नए प्रश्न को रख दिया।
“ऐसे प्रश्न सहज है। केशव, तुम अवकाश विज्ञानी हो तो तुम्हारा प्रश्न भी उसी विषय से जुड़ा है। उत्सव का दृष्टिकोण भिन्न है, रुचि भिन्न है अतः उसका प्रश्न भी भिन्न है।” गुल एक क्षण रुकी, “किंतु यह बताओ कि क्या आपके मन में केवल यही एक प्रश्न ने जन्म लिया था?”
“नहीं, अनेकों प्रश्न जन्मे थे। किंतु तुमने कहा था कि केवल एक ही प्रश्न बताना है।”
“उन अनगिनत प्रश्नों में से यही प्रश्न क्यों? अन्य कोई प्रश्न भी बता सकते थे आप दोनों।”
“बाक़ी प्रश्नों को छोड़ दिया।”
“जो मुझे महत्वपूर्ण लगा वही प्रश्न को मैंने ....।”
“यह प्रश्न चुनने की समग्र प्रक्रिया ही चयन का सिद्धांत है।”
“ओह, गुल।” दोनों एक साथ बोल पड़े।
“अब इन दोनों प्रश्नों का क्या करना है, गुल?”
“उत्सव, तुम्हारा प्रश्न था कि चंद्र किरणों के कारण तारें वहाँ होते हुए भी हम तारों को देख नहीं सकते हैं। चंद्र को यह अधिकार किसने दिया? यह प्रश्न तुम्हें किस दिशा में ले जा रहा है? यह प्रश्न से तुम किस लक्ष्य को सिद्ध करना चाहते हो? यदि उत्तर मिल जाए तो तुम्हें क्या प्राप्त होगा?”
“ना दिशा, ना लक्ष्य। मुझे किसी भी बात का संज्ञान नहीं है। बस मन में प्रश्न जन्मा और पुछ लिया।”
“इसी कसौटी पर तुम भी अपने प्रश्न को परखो, केशव।”
“मेरे लिए भी यही है। ना दिशा, ना लक्ष्य।”
“तो इन प्रश्नों के साथ हमें क्या करना चाहिए? इसे पकड़े रखना चाहिए? या ...?”
“उसे छोड़ देना चाहिए।” दोनों ने कहा।
कुछ क्षण तीनों मौन हो गए।

87

चंद्र ने अपनी स्थिति बदल ली । वह व्योम में कुछ अंतर आगे बढ़ गया । अब उसकी ज्योत्सना उत्सव तथा केशव को प्रकाशित कर रही थी जिनसे उनके मुख देदीप्यमान हो रहे थे। समग्र तट पर चंद्रिका व्याप्त थी। तट की रेत पर वह स्थिर थी। जैसे नितांत श्वेत चादर। वही चंद्रिका समुद्र की लहरों के साथ गतिमान थी, चंचल थी, उन्मुक्त थी।
चाँदनी के दोनों भिन्न भिन्न रूप देखकर गुल के मन में कुछ मनसा जागी। वह शिला से उठी। चाँदनी से धवल हुए तट की रेत पर चलने लगी। उत्सव-केशव भी उसके साथ चलने लगे। बिना किसी प्रश्न के, बिना किसी संवाद के, बिना किसी संशय के वह गुल के साथ चलते रहे।
चलते चलते गुल समुद्र की लहर के सम्मुख आकर रुकी। समुद्र में नर्तन कर रही चाँदनी को मनभर देखती रही। केशव तथा उत्सव ने भी वही किया।
प्रत्येक लहर के साथ चाँदनी भी समुद्र से तट तक यात्रा करती थी। लहर के साथ ऊपर उठती थी। प्रत्येक लहर में चाँदनी इस प्रकार घुल जाती थी कि देखने वाले तीनों को चाँदनी तथा लहर में कोई भिन्नता दृश्यमान नहीं हो रही थी। जैसे चाँदनी के रंग से ही लहर का रंग बना हो ! यह कहना असम्भव था कि चाँदनी में लहर स्नान कर रही है या लहर में चाँदनी स्नान कर रही है। प्रकृति के इस समन्वय से लहर तथा चाँदनी एकरूप हो गए।
लहरों के साथ दौड़कर तट पर आती चाँदनी लहरों के साथ पुन: समुद्र में विलीन हो जाती थी। लहर तथा चाँदनी की इस क्रीड़ा देखकर तीनों के मन अलौकिक अनुभूति का अनुभव कर रहे थे।
अनेक लहरों की क्रीड़ा के पश्चात सहसा एक उद्धत लहर ने अपनी सीमा लांघ कर गुल के शरीर को स्पर्श कर लिया। उस स्पर्श ने गुल का समुद्र के साथ रचा तादात्म्य भंग कर दिया। उसने उस उद्धत लहर को देखा। समुद्र में विलीन होने के लिए वह लौट रही थी। गुल को उस लहर में किसी नटखट बालक के मुख पर होती है वैसी प्रसन्नता के दर्शन हुए। उसे बाल कृष्ण का स्मरण हो आया। गुल ने उत्सव, केशव को देखा। दोनों स्थिर नयनों से गुल को ही देख रहे थे।
दोनों स्थिर थे, प्रतिमा की भाँति। गुल ने ऊपर देखा। चंद्र अस्त होने की अवस्था में था। उसकी चाँदनी मंद हो रही थी। एक अत्यंत सूक्ष्म प्रकाश पूर्व दिशा से अपने अस्तित्व को प्रकट कर रहा था। तमस तथा प्रकाश के मिश्रण का अनूठा क्षण था वह। प्रकाश तथा तमस के मध्य कोई संघर्ष नहीं, कोई द्वंद्व नहीं, कोई युद्ध नहीं। दोनों एक दूसरे को आलिंगन दे रहे थे। इस आलिंगन में दोनों एक दूसरे में इतने मिश्रित हो गए थे कि प्रकाश में तमस विलीन है या तमस में प्रकाश यह निश्चित करना कठिन हो गया। दोनों के मध्य भेद कर पाना सम्भव नहीं था।
तमस् शासन समाप्त होने वाला था, प्रकाश का राज्योदय होने वाला था। सत्ता परिवर्तन, सत्ता हस्तांतरण की वह प्रक्रिया पूर्ण सहजता से हो रही थी।
उस दृश्य को देखकर गुल, केशव तथा उत्सव के मन प्रसन्न होने लगे। इसी प्रसन्नता में गुल चल दी, जाकर उसी शिला पर बैठ गई जहां उसे गुरूपद देकर उत्सव तथा केशव ने बिठाया था।
गुल के पीछे दोनों भी यंत्रवत शिला के समीप जाकर खड़े रह गए।
“गुल, इस अंतराल के पश्चात, इस अनूठे अनुभव के पश्चात भी हमारे प्रश्न अनुत्तर ही रहे हैं।”
“हाँ, गुल।” उत्सव की बात का केशव ने समर्थन कर दिया।
“ऐसा प्रतित होता है कि प्रकृति के इस रूप को देखकर पंडित गुल किसी अन्य अवस्था को प्राप्त कर चुकी है अतः हमारे प्रश्नों का उसे विस्मरण हो गया है, केशव।”
“तुम भी यही मान रहे हो ना, केशव जो अभी उत्सव ने कहा?”
उत्सव ने मौन रहना ही उचित समझा।
“नहीं उत्सव। मुझे विस्मरण नहीं हुआ है।”
“तो उत्तर क्यों नहीं दे रही हो?”
“कैसे देगी? उसके पास कोई उत्तर ही नहीं है।”

“अर्थात् मैंने यहाँ इतने दिनों तक रुककर व्यर्थ ही समय नष्ट किया।”
“यदि तुम्हें ऐसा प्रतीत हो रहा हो तो तुम हमें छोड़कर जा सकते हो, उत्सव।”
“चला तो जा सकता हूँ, गुल। किंतु मुझे उस बाबा के वचनों का स्मरण हो रहा है कि केवल पंडित गुल ही मेरी जिज्ञासा संतुष्ट कर सकती है, प्रश्नों के उत्तर दे सकती है। बाबा के वचनों को मिथ्या मानने का साहस नहीं है मुझ में।”
“बाबा? गुल? उत्सव? आप दोनों किस बाबा की बात कर रहे हो?”
“मैं प्रेमभिक्षु जी महाराज की बात कर रहा हूँ, केशव। क्या तुम उसे जानते हो?”
“क्यों नहीं? गुरुकुल के मेरे निवास काल में मैं उनसे अनेक बार भेंट कर चुका हूँ। तुम उनसे कब, कहाँ मिल चुके हो, उत्सव?”
“केशव,मैं उनसे तीन बार मिल चुका हूँ। उन्होंने मुझे कहा था कि मेरे प्रश्नों के उत्तर पंडित गुल देगी और तुम देख रहे हो ना कि गुल क्या कर रही है। बाबा के वचनों को मिथ्या कर रही है।”
“गुल, यदि यह सत्य है तो तुम्हें उत्तर देने ही होंगे। उत्सव इसी कारण यहाँ आया है, आकर रुका हुआ है।”
कुछ क्षण सभी मौन हो गए। गुल के प्रतिभाव की प्रतीक्षा दोनों करने लगे। गुल ने अपना समय लिया। आँखों में स्मित के साथ बोली, “मैं कैसे उत्तर दूँ? मैं दे ही नहीं सकती इन प्रश्नों के उत्तर।”
“क्यों?” दोनों ने एक साथ पूछा।
“क्यों कि इन प्रश्नों के कोई उत्तर नहीं होते हैं।”
“ऐसा कैसे हो सकता है, गुल? केशव, तुम ही कहो कि कोई प्रश्न बिना उत्तर के होता है क्या?”
“विज्ञान की मानें तो प्रकृति सर्व प्रथम उत्तर को जन्म देती है, तत् पश्चात मनुष्यों के मन में प्रश्न का सर्जन करती है। बिना समाधान दिए, प्रकृति किसी भी संशय को जन्म नहीं देती। यह बात को स्वयं गुल भी स्वीकार करेगी। हैं ना गुल?”
“हाँ, मैं स्वीकार करती हूँ। किंतु यह सत्य सीमित रूप से सत्य है।”
“तो असीमित सत्य क्या है, गुल?”
“किसी भी प्रश्न के या तो कोई उत्तर नहीं होते या अनेक उत्तर होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने दृष्टिकोण से भिन्न भिन्न उत्तर खोज लेता है। उसे ही अंतिम एवं एक मात्र सत्य मान लेता है।
जब हम किसी प्रश्न का एक उत्तर खोज लेते हैं तब उसी उत्तर में से कई नए प्रश्न जन्म ले लेते हैं। उन नए प्रश्नों के उत्तर खोजने लग जाते हैं। जो हमें किसी अन्य प्रश्नों- उत्तरों की माया में डाल देते हैं। प्रश्न तथा उत्तर के इस चक्र में पड़कर मनुष्य अपने लक्ष्य से भटक जाता है, जैसे तुम भटक रहे हो, उत्सव।”
“मैं तुम्हारे पास आकर भटक गया हूँ?”
“प्रतीत तो यही हो रहा है, उत्सव।”
“कैसे?”
“तुम्हें स्मरण है, तुम्हारा लक्ष्य क्या था? क्या है?”
“मैं कृष्ण को पाना चाहता था, चाहता हूँ।”
“यदि यही लक्ष्य है तो तुम्हें क्या अंतर पडता है कि कृष्ण महायोद्धा थे या रणछोड़? मनुष्य थे या महामानव? या ईश्वर? महाभारत के युद्ध में कृष्ण क्या कर रहे थे वह जान लेने से कृष्ण प्राप्ति में कितनी सहायता होगी? युद्ध के लिए कृष्ण उत्तरदायी हो अथवा ना हो। योगेश्वर कृष्ण हो या साधारण मृत्यु को स्वीकार करनेवाला कृष्ण हो।
ऐसी अन्य सभी बातों को जानने से तुम्हारे कृष्ण प्राप्ति के लक्ष्य तक जा रहे मार्ग में कितना लाभ होगा?”
“मैं नहीं जानता।”
“तो क्यों इन प्रश्नों का भार उठा रहे हो? क्यों उसे पकड़े रखा है? तुम नहीं जानते किंतु सत्य यह है की यह प्रश्न तुम्हारे लक्ष्य के मार्ग की बाधा बने हुए हैं। तुमने इन बाधाओं को ना केवल आमंत्रण दिया है, अपितु तुमने उसे आलिंगन भी दे रखा है। ऐस आलिंगन जो छूटते नहीं छूट रहा तुमसे। इस प्रकार तुम कभी कृष्ण को नहीं पा सकोगे। तुम उससे मुक्त क्यों नहीं हो जाते हो?”
“मुझे तो बस अल्प ज्ञान प्राप्त करना था इसी कारण मैं ...।”
“हाँ, गुल। उत्सव उचित तो कह रहा है।”
“उत्सव, ज्ञान का होना आवश्यक है। ज्ञान, अल्पज्ञान, अतिज्ञान, अज्ञान, अनुचित ज्ञान, तथा अर्धज्ञान आदि के अंतर को समझने का विवेक होना आवश्यक है। ज्ञान की सीमा से परे भक्ति होती है। ईश्वर का साक्षात्कार भक्ति से होता है, ज्ञान से नहीं।”
“किंतु, गुल। मेरे प्रश्नों के उत्तर अनेक साधु, संत एवं ज्ञानियों ने दिए हैं। उनका क्या?”

“वह सभी ज्ञानी हैं, भक्त नहीं। उन सभी ने प्रश्नों के उत्तर नहीं दिए हैं, केवल उत्तर देने की चेष्टा मात्र की है।”
“ऐसा कैसे हो सकता है, गुल? मैं भी जानने को उत्सुक हूँ।”
“केशव, तुम भी सुनो। उत्सव, क्या उन सभी उत्तरों में से कोई भी उत्तर पूर्ण था? स्पष्ट था? अंतिम था?”
“यदि ऐसा होता तो मैं यहाँ तक आता ही क्यों?”
“इसका अर्थ यही हुआ कि वह सभी उत्तर अपूर्ण थे। तो उन लोगों ने उत्सव को उत्तर देने की चेष्टा क्यों की होगी, गुल?”
“जिन के उत्तर नहीं होते हैं उनके भी उत्तर देना व्यर्थ चेष्टा नहीं है तो क्या है? सभी ने अपनी अपनी मति अनुसार कुछ ना कुछ उत्तर दिए हैं। जब कोई ऐसी चेष्टा करता है तब वास्तव में वह स्वयं को ज्ञानी सिद्ध करने की चेष्टा ही करता है। हमें ऐसी चेष्टाओं से बचना चाहिए।
“तो अब मुझे क्या करना चाहिए, गुल? तुमने मुझे विकट दुविधा में डाल दिया है।”
“गुल, उत्सव को दुविधा में तुमने डाला है, मार्ग भी तुम्हें ही दिखाना होगा। है ना उत्सव?”
“मार्ग भी मिलेगा।” कुछ क्षण सब कुछ विस्मरण कर, आँखें बंद कर गुल विचारने लगी।
समुद्र की ध्वनि मंद हो गई थी। पूर्वाकाश में सत्ता परिवर्तन होने पर प्रकाश का शासन हो गया था। सूर्य के आगमन में कुछ ही क्षण शेष रह गए थे।

88

उत्सव तथा केशव व्याकुल थे, चिंतित थे, दुविधा में थे। गुल शांत, स्थिर तथा निर्लेप थी।
सूरज की प्रथम रश्मि ने अवनी को स्पर्श किया। दूसरी ने समुद्र को, तीसरी ने गुल को, चौथी ने केशव को , पाँचवीं ने उत्सव को स्पर्श किया। छठी ने तट को स्पर्श किया। धरती पर चेतना का संचार होने लगा।
गुल ने आँखें खोली, "केशव, तुम बांसुरी बजाओ।"
"मेरे पास बांसुरी नहीं है, गुल।"
"जाओ, मेरे कक्ष में एक बांसुरी है जो तुमने मुझे दो थी। स्मरण है ना तुम्हें?"
केशव बांसुरी लेने चला गया।
"मेरे लिए क्या आज्ञा है, गुल?"
"तुम नर्तन करो, उत्सव।"
"कैसा नर्तन, गुल?"
"जैसा कृष्ण ने गोपियों के साथ किया था। जैसा चैतन्य महाप्रभु ने किया था। जैसा प्रेमभिक्षुजी ने किया था। जैसा तुमने मथुरा में किया था।"
"हाँ, कर सकता हूँ।"
"जब केशव बांसुरी बजाए तब तुम नर्तन करना।"
"और तुम क्या करोगी, गुल?" उत्सव तथा केशव ने एक साथ पुछ लिया।
"मैं कीर्तन करूँगी, कृष्ण नाम का कीर्तन।"
केशव ने अपने ओष्ठों पर बांसुरी रखी। उसमें प्राण फूंके। निर्जीव वेणु जीवंत हो गई। सुमधुर सुर बोलने लगी बांसुरी। गुल कीर्तन करने लगी।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
उत्सव के चरणों ने स्वयं ही नृत्य की शरण ले ली। वह नाचने लगा। समग्र विश्व का, स्वयं का विस्मरण कर नाचने लगा। इसी प्रकार गुल कीर्तन करने लगी, केशव वेणु बजाता रहा।
संगीत, नर्तन तथा कीर्तन के त्रिविध कर्म ने समुद्र के तट पर नए वृंदावन का सर्जन कर दिया। एक अलौकिक उत्सव को प्रकट कर दिया। समुद्र पर बहता समीर, समुद्र की लहरें, सूर्य के अयांश, महादेव की ध्वजा आदि सभी उस उत्सव में सम्मिलित हो गए।
द्वारका निवासियों ने समुद्र की दिशा से आ रहे नर्तन-कीर्तन-संगीत के त्रिविध ध्वनि को सुना। किसी अकथ्य आकर्षण से द्वारका निवासी समुद्र की तरफ़ जाने लगे। कुछ ही क्षणों में नगरजनों का समुद्र अरबी समुद्र के तट पर आ गया। सभी उस उत्सव का आनंद लेने लगे। कीर्तन करने लगे।
एक बालक उस उत्सव में जुड़ गया। नाचने लगा। उसे देख कुछ अन्य व्यक्ति भी नर्तन करने लगे। उन्हें देखकर और भी लोग जुड़ने लगे। देखते देखते सभी नगरजन उत्सव में जुड़ गए, कीर्तन करने लगे, नर्तन करने लगे।
समुद्र भी विशेष आनंद में नर्तन करने लगा। बांसुरी की ध्वनि से अपनी ध्वनि मिलाने लगा। लहरें नर्तन करने लगी। मनुष्य के इस समुद्र को भेंटने के हेतु से अरबी समुद्र की कुछ लहरें तट की सीमा तोड़कर उन्हें भिगोने लगी। उत्सव चलता रहा।
समय के किसी बिंदु पर सहसा संगीत एवं कीर्तन रुक गया। नाच रहे नगरजन रुक गए। सबने समुद्र की तरफ़ देखा।
एक विशाल दिव्य आकृति समुद्र के भीतर समा रही थी। उस आकृति ने अपने आलिंगन में गुल, केशव तथा उत्सव को ले लिया था। क्षण भर में वह आकृति उन तीनों को लेकर समुद्र में विलीन हो गई।
कोई नहीं जानता कि वह विशाल दिव्य आकृति के रूप में कौन था। कोई यह भी नहीं जानता कि समुद्र में विलीन होने के पश्चात गुल, केशव तथा उत्सव का क्या हुआ।
किंतु नगरजन तो कह रहे हैं कि वह आकृति के रूप में स्वयं समुद्र ने उन तीनों को अपने भीतर समा लिया है। तो कोई यह भी कह रहा है कि स्वयं भगवान कृष्ण आकर उन तीनों को लेकर गए और समुद्र में डूबी हुई सुवर्ण नगरी द्वारका में तीनों को स्थान दिया है और तीनों वहीं रह रहे हैं।
किंतु सत्य कोई नहीं जानता। मैं भी नहीं। हाँ, मैं भी नहीं।

मैं केवल इतना जानता हूँ कि उस दिन के पश्चात भड़केश्वर महादेव के मंदिर वाले समुद्र के तट पर प्रत्येक प्रभात में सूर्योदय के समय आज भी नर्तन, कीर्तन तथा बांसुरी की ध्वनि सुनाई देती है। कई भाग्यवान व्यक्तियों ने उसे सुना है, देखा है। कई भाग्यवान उस तट पर अनायास ही नृत्य भी करने लगते हैं।
आप पुछ रहे हो ना कि क्या मैंने देखा है? मैंने सुना है?
मेरा उत्तर है, "मैं इतना भाग्यवान कहाँ?। हाँ, कभी कभी मैं अनायास ही उस तट पर चला जाता हूँ और नर्तन करने लगता हूँ।"

****सम्पन्न***